14,1

2 Sets

नववर्षाङ्क

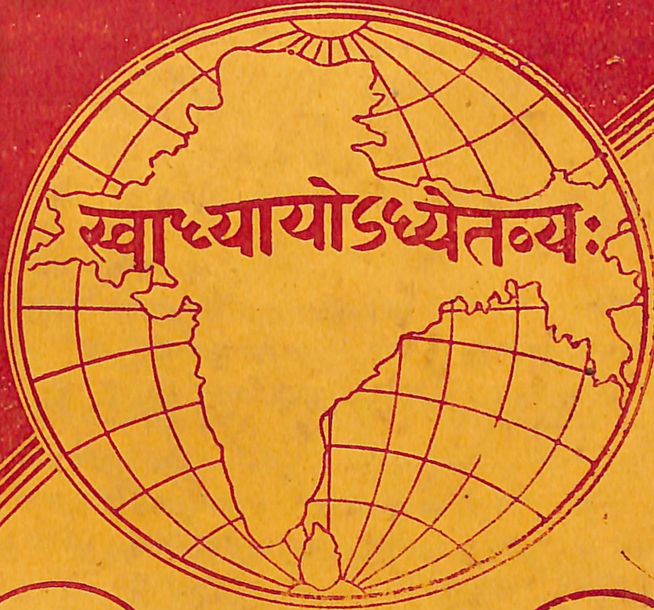
श्रीः

श्रीस्वाध्याय

शरदङ्क

वर्ष
१४
सं० २०११

संख्या
१
आश्विन



वार्षिक
मूल्य
४)

इस अङ्क
मूल्य २)रु०

संस्थापक—
श्रीमान् अमृतवाग्भव आचार्य

सम्पादक—
श्री पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी

श्रीस्वाध्यायके नियम तथा उद्देश्य

उद्देश्य—

समस्त संसारको हितकी ओर ले जाना तथा ऐहलौकिक और पारलौकिक मोक्ष (स्वातन्त्र्य) प्राप्त कराना 'श्रीस्वाध्याय' का मुख्य उद्देश्य है।

संचालकगणोंके नियम

संरक्षक—

जो महानुभाव ३००) तीन सौ रुपयेसे अधिक प्रतिवर्ष सहायता देंगे वे 'श्रीस्वाध्याय' के संरक्षक माने जायेंगे।

सहायक—

(२) जो सज्जन ५१) रु० से ३००) रु० तक प्रतिवर्ष सहायता देंगे, वे 'श्रीस्वाध्याय' के सहायक माने जायेंगे।

'श्रीस्वाध्याय' आश्विन शुक्ला १०, पौषशुक्ला १०, चैत्र शुक्ला १० और आषाढ़ शुक्ला १० को प्रकाशित होता है। इसका वार्षिक मूल्य ४।) और एक प्रतिका १।~) एक रुपया पांच आना है।

(३) जिन सज्जनोंके लेख श्रीस्वाध्याय-सदन की ओरसे प्रार्थना-पूर्वक मँगवाये जायेंगे वे अवश्य प्रकाशित होंगे, अन्य लेख यदि गवेषणापूर्ण मौलिक और उपयोगी समझे जावेंगे तो यथा समय प्रकाशित हो जावेंगे, अन्यथा नहीं।

(४) लेख, कविता, चित्र, समालोचनार्थ पुस्तकों की दो-दो प्रतियाँ और विनिमय (परिवर्तन) की पत्र पत्रिकाएँ सम्पादक 'श्रीस्वाध्याय' सोलन (शिमला) के पते से भेजने चाहिएँ।

(५) लेख, कविता आदि प्रकाशनार्थ सामग्री स्पष्ट अक्षरोंमें कागजके एक ओर ही लिखी होनी चाहिए।

(६) किसी लेखके प्रकाशित करने या न करने उसे घटाने बढ़ाने तथा लौटाने न लौटानेका सम्पूर्ण अधिकार सम्पादकको है। अस्वीकृत लेख डाक व्यय प्राप्त होने पर ही लौटाये जा सकेंगे।

ग्राहकोंके नियम

'श्रीस्वाध्याय' के स्थायी ग्राहक वर्षारम्भके प्रथमाङ्कसे (आश्विनमासकी विजयादशमीसे) ही बनाये जाते हैं, चाहे वे मूल्य कभी भेजें। यदि विजयादशमीका 'नववर्षाङ्क' समाप्त हो जावे या कोई ग्राहक अवधि समाप्त होने पर पीछे विशेषांक न लेना चाहें तो बीचमें किसी भी समय से ग्राहक हो सकते हैं। ऐसी स्थितिमें उनसे वार्षिक मूल्य ४।) रु० न लेकर वर्ष-समाप्ति (आषाढ़) तकके शेष अङ्कोंका मूल्य ही लिया जायेगा। 'नववर्षाङ्क' के बिना तीन अङ्कों या नौ मासका मूल्य ३।) रु० और एक अङ्क का मूल्य १।~) मनी आर्डर द्वारा पेशगी आना चाहिए। वी० पी० मंगवाने पर उक्त मूल्यमें रुपया आने वी० पी० रजिस्ट्री खर्चके अधिक बढ़ जायेंगे। वर्षारम्भ से स्थायी ग्राहक बनकर पूरी फाइल मंगवाने में ही ग्राहकोंको विशेष लाभ है।

मूल्य भेजते समय मनीआर्डरके कूपन पर अपना नाम तथा पूरा पता और ग्राहक संख्या स्पष्ट अक्षरोंमें लिखना चाहिए। यदि ग्राहक संख्या स्मरण न हो और पुराने ग्राहक हों तो मनीआर्डर के कूपन पर 'पुराना' शब्द और नये ग्राहक हों तो 'नया' शब्द नामके साथ अवश्य लिख देना चाहिये। वार्षिक मूल्य वा एक अङ्कके मूल्यका नोट या टिकट लिफाफे में कदापि न भेजें।

'श्रीस्वाध्याय' का नमूना बिना मूल्य किसीको नहीं भेजा जाता। जिन सज्जनोंके जवाबी पत्र या उत्तरके लिए टिकट आवेंगे उन्हींका तत्काल उत्तर दिया जावेगा। 'श्रीस्वाध्याय' प्रकाशित होनेकी तिथि (शुक्ला दशमी) को प्रत्येक ग्राहकके नाम बड़ी सावधानी से भेज दिया जाता है। यदि किसी ग्राहक के पास कोई अङ्क न पहुँचे तो उसके प्रकाशित होनेकी तिथिसे १५ दिनके अन्दर हमें सूचना देनी चाहिए। बादकी शिकायत पर कोई ध्यान नहीं दिया जाएगा।

व्यवस्थापक—

श्रीस्वाध्यायसदन, सोलन (शिमला)

श्रीः

श्रीस्वाध्याय

संस्थापक तथा प्रधानाध्यक्ष—

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र महामहिम आचार्य

श्री १०८ मान् अमृतवाग्भवजी महाराज



संरक्षक—

धर्ममार्त्तण्ड राजासाहब श्री१०५ मान् दुर्गासिंहजी बहादुर सी० आई० ई०, सोलन

सहायक—

श्री १०५ मती स्व० माँजी महारानी साहिबा [सिरमौरीजी] बघाटराज्य।

श्री ला० शिवचरणदासजी म्यु० कमिश्नर, सोलन।

आयुर्वेदमहोपाध्याय श्री पं० गोवर्द्धन शर्माजी छांगाणी, सीतावर्डी, नागपुर।

श्रीमान् हीरालाल मोतीलालजी पुजारा, ध्रांगध्रा (सौराष्ट्र)

श्रीमान् पं० लक्ष्मीकान्तजी शर्मा, चीफ रेवेन्यू अकाउण्टेण्ट, भरतपुर।

श्रीमान् स्व० पं० चतुर्भुजजी राजपुरोहित ताल्लुकेदार, भरतपुर।

श्रीमान् भाई चूहरमल्लजी मुन्जाल, चूहरमल्ल एण्ड को०, कटरा बड़ियां, देहली।

श्री नरेन्द्रनाथजी 'मोहन' मैनेजिङ्ग डायरेक्टर डायर मीकन ब्रूरीज लिमिटेड, सोलन ब्रूरी।

श्रीमान् बा० भागीरथलालजी मिलऑनर, लहरागागा [पटियाला-राज्यसंघ]

श्रीमान् ला० अमरनाथजी रईस, न्यूअमरटाकीज, अजमेरीगेट, दिल्ली।

श्रीमान् लाला श्यामलालजी मित्तल, अनूपशहर [उत्तरप्रदेश]



सम्पादक और व्यवस्थापक—

श्री पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी ज्योतिषाचार्य

प्रकाशक—

श्रीस्वाध्यायसदन, सोलन (हिमाचलप्रदेश)

विषय-सूची

चौदहवें वर्षमें पदार्पण

त्वमग्ने पुरुरूपो विशेविशे वयोदधासि प्रत्नथा पुरुष्टुत ।
पुरूण्यन्ना सहसा विराजसि त्विषिः सा ते तित्विषाणस्य नाधृषे ॥

इस जगत्की विभिन्न वस्तुओंको रूप और आकार देने वाला परम पिता परमात्मा है। 'श्रीस्वाध्याय' का जन्म उसी मंगलमय प्रभुकी इच्छाका फल है। 'श्रीस्वाध्याय' के संस्थापक और संचालकोंने सदा गीताके इस कथनमें विश्वास किया है कि इस जगत्का प्रेरक हेतु परमात्मा है, वह सब हृदयोंमें व्याप्त है और सबको चलाता है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन ! तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

इसीके अनुसार 'श्रीस्वाध्याय' के जीवनको प्रभुकी इच्छा और उन्हींका संकेत माना है। अपनेको उन्होंने 'निमित्तमात्रं भव' बनानेका प्रयत्न किया। अब 'श्रीस्वाध्याय' अपने जीवनके तेरह वर्ष पूर्ण करके चौदहवें वर्षमें प्रवेश कर रहा है। आज जीवनके बीते इन तरह वर्षों पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तब हमको स्वयं इस महान् साहस पर आश्चर्य होता है। पिछले एक युगके झंझावातोंमें भी यह दीपक जगमगाता रहा तो यह प्रभुकी इच्छा ही है, हमारी अपनी शक्ति और अपना सामर्थ्य नहीं। इसलिए आज चौदहवें नववर्षमें प्रथम चरण रखते हुए हमारा हृदय श्रद्धा एवं भक्तिसे परम प्रभुके पावन चरणोंमें नत है।

इस लोकमें ज्ञानके समान दूसरी और कोई वस्तु पवित्र नहीं है—'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' इस धारणा और विश्वाससे 'श्रीस्वाध्याय'की स्थापना पूज्यपाद श्री १०८ आचार्य अमृतवाग्भवजी महाराजने की थी। विगत तेरह वर्षोंका अतीत जीवन इस बातका साक्षी है कि श्रीस्वाध्याय'ने ज्ञानालोकमें जन जनके मार्गको आलोकित करना, जनताके ज्ञान क्षितिजको विस्तृत करना और 'जैसा पिण्डमें है वैसा ही ब्रह्माण्डमें है' इस सत्यको उद्भासित करना इसका जीवनव्रत रहा है। महामहिम आचार्य-चरणोंकी कृपा और संरक्षणमें पत्रने इस जीवन-व्रतको यथाशक्ति निबाहनेका प्रयत्न किया है। भविष्यमें भी वह अपने जीवन-सम्बल आचार्य-चरणोंके पथप्रदर्शनमें इस जीवन-व्रतको पूरा करनेका विश्वास हृदयमें रखकर नये वर्षमें पदार्पण कर रहा है।

अतीत पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो हमें अपने

कार्यों की सफलता पर सन्तोष होता है। आज हिन्दी संसारमें ज्योतिषके प्रति रुचि बढ़ रही है। कुछ पत्रों को छोड़ कर जिनकी संख्या अंगुली पर गिनी जा सकती है सब हिन्दी और अंग्रेजी पत्र साप्ताहिक एवं दैनिक भविष्यफल सोत्साह और सहर्ष प्रकाशित करने लगे हैं। 'श्रीस्वाध्याय' की सामग्री एवं बढ़ती हुई लोकप्रियतासे प्रभावित होकर केवल ज्योतिष विषयक कुछ पत्र-पत्रिकाएं भी हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला आदि भाषाओंमें प्रकाशित होने लगी हैं। यह प्रारब्धकी बात है कि उनमें से कुछ तो थोड़े समयमें ही कालकवलित हो गई और कुछ केवलमात्र व्यक्ति-विशेषकी तेंजी मन्दीके क्रोड़पत्र (रिपोर्ट वा पैम्फलेट) रूपमें निकल रही हैं। प्रधानमंत्री द्वारा की गई ज्योतिश्शास्त्रकी निन्दा भी इसके प्रचार और विस्तारको रोक नहीं सकी। "यह अन्धविश्वासका फल है, यह कोई विज्ञान नहीं है" यह धारणा बदलती जा रही है और इसकी सचाई एवं वैज्ञानिकता पर आस्था और विश्वास बढ़ता जा रहा है। इसका कुछ श्रेय श्रीस्वाध्यायको भी है, इसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यह सफलता ही इस बातका प्रमाण है कि 'श्रीस्वाध्याय'का जीवन और उसका अस्तित्व आवश्यक है

किन्तु, इसका यह अर्थ नहीं है कि 'श्रीस्वाध्याय' ने अपने सामने जो उद्देश्य रखे थे वे पूर्ण हो गए और वह आज तक मिली सफलतासे सन्तुष्ट है। आज भी विश्व-विद्यालयोंमें ज्योतिर्विज्ञान (अन्तरिक्ष-विद्या वायुशास्त्र वृष्टिविज्ञान भूगर्भशास्त्रादि) को अन्यान्य विषयोंके समान स्वतन्त्र स्थान नहीं मिला है। अभी तक ज्योतिष विषयक अन्वेषणके लिए किसी भी केन्द्रीय संस्थाकी स्थापना नहीं हुई है। आज भी ज्योतिष-शास्त्रका अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति पर आरम्भ नहीं किया गया और आज भी ज्योतिष कुछ अर्धशिक्षित स्वार्थी धूर्त दुकानदारोंके हाथमें है, जिसके कारण शास्त्रका गौरव घट रहा है। डाक्टरी और वकालतके व्यवसायके लिए— जिनका शरीर और अर्थसे सम्बन्ध है सरकारी प्रमाणपत्र वा लाइसेन्स लेना आवश्यक समझा जाता है, पर ज्योतिष के लिए - जिसका मन और आत्मासे सम्बन्ध है किसी प्रकारकी शिक्षा और लाइसेंसकी आवश्यकता नहीं मानी जाती। राज्य संचालनमें ज्योतिर्षियोंका जो प्रभाव एवं स्थान होना चाहिए वह आज उसको प्राप्त नहीं है, क्योंकि अखिल-भारतीय संस्थाका अभाव है। 'श्रीस्वाध्याय' का प्रयत्न होगा कि वह इन विषयोंकी ओर जनता और सरकार तथा विद्वानों और ज्योतिषियोंका ध्यान खींचे। अन्तरिक्ष खगोल और त्रिस्कन्ध ज्योतिषका अध्ययन जब तक हमारे विश्व-विद्यालयोंमें नहीं होगा तब तक इन शास्त्रों का अध्ययन और अध्यापन वैज्ञानिक पद्धतिसे न होगा और न इसकी और अधिक प्रगति ही हो सकेगी। इसके लिए ज्योतिष-जगत्की ओरसे संघटित प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है। 'श्रीस्वाध्याय' न तो किसी सम्प्रदाय वा दल-विशेष का ही पत्र है और न व्यावसायिक लाभके दृष्टिकोणसे ही यह आरम्भ किया गया। विश्वरूप-भगवान्, जनता-जनार्दन एवं भारतीय प्राचीन विज्ञानकी सेवाके सदुद्देश्यसे ही इसका प्रकाशन हो रहा है।

विकास-वादके इस युगमें अधिकांश पत्रकारोंने अपने कर्तव्यको बिल्कुल ही भुला दिया है। वे जनताके हितका ध्यान न रखकर रुचिकी ओर भागते हैं। अपने नैतिक बल से जनताको अपने पीछे चलानेमें असमर्थ हो वे स्वयं जनता के अनुयायी बन अपना संकुचित स्वार्थ-साधन करनेमें जुटे हुए हैं। आज पत्रकार-कला दलबन्दीसे सम्बद्ध है। कांग्रेसी पत्र कांग्रेसका दोष न दिखाकर उसका सर्वथा समर्थन करते हैं। धार्मिक पत्र धर्मका वास्तविक रूप न बताकर कांग्रेस की निन्दामें ही अपना कर्तव्य माने बैठे हैं। समाजवादी पत्र दूसरोंको दोषी बताते हुए अपनी भूलोंको कभी स्वीकार नहीं करते। ऐसी दशामें जनताका मार्ग-दर्शन क्या होगा? यही कारण है कि किसी समयका पत्रकारोंका पवित्र सेवा-कार्य आज व्यवसाय एवं स्वार्थ-साधनकी कठ-पुतली बन गया है। 'श्रीस्वाध्याय' ने कभी भी अपने पाठकोंको अहितकर मार्ग नहीं दिखाया। आर्य-राष्ट्रवादका 'श्रीस्वाध्याय' ने सदा प्रचार किया है। जहां हम अपनी राष्ट्रिय सरकारका समर्थन करते हैं, वहां हमने उसकी त्रुटियों पर भी बराबर प्रकाश डाला है और भविष्यमें भी हितकी बात कहनेमें 'श्रीस्वाध्याय' कभी पीछे नहीं रहेगा।

'श्रीस्वाध्याय' के इस बाल्यकालमें जिनका हमें सर्वाधिक संरक्षण प्राप्त हुआ, जिनकी कृपासे पत्रका सम्वर्द्धन हुआ उनमें श्री १०८ आचार्यचरणोंके अनन्तर सोलनके महाराज धर्ममार्तण्ड राजर्षि श्री १०५ दुर्गासिंहजी महोदय का बहुत बड़ा हाथ है। जन्मकालसे आज पर्यन्त यदि उक्त राजर्षिका संरक्षण 'श्रीस्वाध्याय' को प्राप्त न होता

तो आजकी स्थिति तक भी हम पहुँच पाते या नहीं यह भी संदिग्ध है। श्रीस्वाध्याय सदन-संस्थाके वर्तमान अध्यक्ष दैवज्ञ-दिवाकर महामनीषी श्री पं० गोविन्दजी मिश्र महोदयका सहयोग भी संस्थाकी स्थापनाके प्रारम्भसे लेकर अब तक सबसे अधिक रहा है। इस त्रिगुणात्मिका शक्तिके सहारे ही 'श्रीस्वाध्याय' पत्र तथा संस्था उत्तरोत्तर उन्नत हो रहे हैं। वर्तमान सहायकोंमें श्रद्धेय वैद्यराज श्री पं० गोवर्द्धन शर्माजी छांगाणी, श्री पं० विद्याधरजी राज-पुरोहित (सुपुत्र स्व० श्री पं० चतुर्भुजजी राजपुरोहित) श्री हीरालाल मोतीलालजी पुजारा, श्री पं० लक्ष्मीकान्त जी, श्री भाई चूहरमल्लजी मुंजाल, श्री ला० शिवचरण दासजी, श्री नरेन्द्रनाथजी 'मोहन' और श्री ला० श्याम-लालजी मित्तल धन्यवाद एवं बधाईके पात्र हैं, जिन्होंने श्रीस्वाध्यायको अपनानेका अनुग्रह किया।

'श्रीस्वाध्याय' का रंगरूप निखारने और इसको सब प्रकारसे जनोपयोगी बनानेमें विद्वान् लेखकों कवियों ज्योतिर्विज्ञानाचार्यों और अन्य हितैषी महानुभावोंने जिस कृपा का परिचय दिया है उसके लिए 'श्रीस्वाध्याय' उनके प्रति हृदयसे आभारी है और विश्वास करता है कि लेखकों कवियों और दैवज्ञ-बन्धुओंका सहयोग भविष्यमें भी ईसी प्रकार प्राप्त होता रहेगा। कुछ स्नेही पुराने ग्राहकों और व्यापारियोंने इस बार एक-एक नया ग्राहक बनानेकी भी कृपा की है—उनके हम हृदयसे आभारी हैं। इसी प्रकार यदि 'श्रीस्वाध्याय' का प्रत्येक पाठक कमसे कम एक नया ग्राहक बनानेका दृढ़ संकल्प कर ले तो आर्थिक स्थितिके सुदृढ़ होने पर प्रेस और कार्यकर्त्ताओंकी सुव्यवस्था करके हम शीघ्र ही इसे मासिक रूप भी दे सकेंगे। जहां कई अच्छे-अच्छे साधन-सम्पन्न पत्र इन वर्षोंमें अपना अस्तित्व समाप्त कर चुके वहां 'श्रीस्वाध्याय' का त्रैमासिक रूपमें अबाधगतिसे निरन्तर चलते रहना जगन्नियन्ताकी इच्छा का ही फल है। अब यदि जनता-जनार्दनका सहयोग और प्रभुकी प्रेरणा हुई तो उसके मासिक होनेमें भी विलम्ब नहीं लगेगा। 'श्रीस्वाध्याय' अपना जीवन परम-प्रभुके चरणोंमें अर्पित मानता है। जीवनके पिछले १३ वर्षोंमें उसने इस भावनासे काम किया है—

यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय ! तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

विनीत:—

हरदेव शर्मा त्रिवेदी

इस अङ्कके सम्बन्धमें

विगत ६ मास मेरे जीवनमें सबसे अधिक पारिवारिक कष्ट एवं शारीरिक मानसिक अशान्तिके रहे हैं। आषाढ़ मास तक सभी परिवारके क्रमशः रोग-ग्रस्त हो जानेके अनन्तर मैंने समझा था कि अब तो अशुभग्रह-दशाके चक्रसे छुटकारा मिल ही जायेगा। परन्तु गोचर भ्रमणसे मंगल राहुका प्रभाव आश्विन शु० १३ ता० १० अक्तूबर तक रहना स्वाभाविक ही था, फलतः भाद्रपद शु० १५ से ही पुनः पत्नीको भयानक सन्तत-ज्वर (टाईफाइड) हो गया। निर्बलताके कारण इस बार स्थिति बड़ी चिन्ताजनक हो गई थी। इस कारण रुद्राकी भांति आश्विन-कृष्णमें यह अङ्क छपवानेके लिए मैं दिल्ली नहीं पहुंच सका। इस अकल्पित रोगजन्य आपत्तिके कारण यह 'नववर्षाङ्क' एक सप्ताह विलम्बसे प्रकाशित हो सका और कुछ महत्वपूर्ण लेख भी छपनेसे रह गये, इसका मुझे महान् खेद है। इसी अवधिमें इष्टमित्र स्नेही सज्जनों और ग्राहकोंके आये हुए अनेक पत्रोंका उत्तर भी मैं नहीं दे पाया। आशा है वे सब सहृदय सज्जन और ग्राहकगण मेरी विवशताको समझकर पूर्ववत् स्नेह सद्भावना बनाये रखेंगे। सोलनमें प्रेस न होनेसे कभी रोगादि कारणोंसे मैं समय पर दिल्ली न पहुँच सकूं तो कुछ पांच सात दिनका विलम्ब हो जाना स्वाभाविक है। दूसरा कोई ऐसा योग्य सहायक नहीं जो छपाईका काम ठीक करवा सके। फिर भी मैंने सदा समय पर पत्र ग्राहकोंके पास पहुंचानेका पूर्ण प्रयत्न किया है। अब मैंने यह निश्चय किया है कि कदाचित् यदि किसी अंकके छपनेमें ५—७ दिनका विलम्ब हो जावे तो व्यापारी ग्राहकोंको केवल तेजीमंदीके लेखों की प्रतिलिपि करवाकर ठीक समय पर पहले भिजवा दी जावेगी। जिससे व्यापारी वर्गको अपने व्यवसायमें असुविधा न होगी।

निवेदक:—

हरदेव शर्मा त्रिवेदी

ज्योतिर्विज्ञानानुरागी



श्री हीरालाल मोतीलालजी पुजारा
ध्रांगध्रा [सौराष्ट्र]

श्री पुजाराजी परम धार्मिक विद्याविनय-सम्पन्न महानुभाव हैं। भगवती सरस्वती और माँ लक्ष्मीकी आप पर कृपा है। विद्याव्यसनी ब्राह्मण परिवारके जन्मजात संस्कारों के कारण उदारता भी आपमें भरपूर है। तथा 'यावज्जीवमधीते विप्रः' के अनुसार विद्वान् गुणिजनोंसे कुछ प्रसाद ग्रहण करनेकी प्रवृत्ति भी आपमें निरन्तर जागरूक रहती है। इन्हीं सद्गुणोंके कारण बम्बईकी सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विज्ञान-संस्था 'बाम्बे-एस्ट्रालाजीकल-सोसायटी' ने आपको अपना संरक्षक स्वीकार किया है। न्यूयार्क और वाशिंगटन स्थित 'अमेरिकन-फेडरेशन आफ एस्ट्रालॉजर्स' संस्थाके भी आप सदस्य हैं। आपका कोष विद्वान् दैवज्ञगण तथा ज्योतिर्विज्ञान सम्बन्धी साहित्यकी उन्नति एवं श्रीवृद्धिके लिए सदा उन्मुक्त द्वार रहता है।

आजके धनी-मानी अन्य महानुभावोंको भी श्रीपुजाराजीका अनुकरण कर ज्योतिर्विज्ञानकी उन्नतिके लिए मुक्त-हस्तसे सहायता देनी चाहिए। क्योंकि राजकीय आश्रयके अभावमें अब धनी मानी श्रीमन्तोंके सहारे ही भारतका यह प्राचीन महान् विज्ञान उन्नति कर सकता है। इसकी उन्नति एवं अन्वेषण कार्यमें लगाये द्रव्यसे श्रीमन्तोंको कई गुणा लाभ यहीं प्राप्त हो सकता है, जब कि अन्य दान पुण्यादि सुकृतफल प्राप्तिके लिए अगले जन्मकी प्रतीक्षा करनी पड़ती है। श्री हीरालालजी पुजारा कोई बहुत बड़े धनपति नहीं हैं, फिर भी इस शास्त्रके प्रति उनकी लगन और उदारता प्रशंसनीय है। ईश्वर ऐसे उदार चरित सज्जनको चिरायु और विभवैश्वर्य सम्पन्न रक्खे। —सं०

विज्ञापनका अपूर्व साधन

'श्रीस्वाध्याय' राजा महाराजाओं एवं राज्यपालों तथा मन्त्रियोंके राजप्रासादोंसे लेकर बड़े-बड़े व्यवसायी, धनी, व्यापारी, अध्यापक, वैद्य, डाक्टर, ज्योतिषी, राजकर्मचारी, राष्ट्रिय नेता, कार्य-कर्त्ता आदि प्रत्येक वर्गके शिक्षित भद्र-पुरुषोंके पास पहुंचता है और दैनिक साप्ताहिक पत्रोंकी भांति पढ़कर फेंक नहीं दिया जाता, अपितु बहुमूल्य ग्रन्थोंकी भांति स्थायी साहित्यमें सुरक्षित रहता है। अतः 'श्रीस्वाध्याय' विज्ञापन दाताओंके लिए एक अपूर्व साधन है।

श्रीस्वाध्यायमें विज्ञापन छपाईका शुल्क

१ पृष्ठ या दो कालमकी छपाई ६०) प्रति अङ्क
आधा पृष्ठ या एक कालमकी छपाई ३५) ,, ,,
चौथाई पृष्ठ या आधा ,, ,, २०) ,, ,,
पूरे वर्ष या चार अंकोंमें एक पृष्ठकी छपाई १८०) रुपये।
टाईटल पेजके चौथे पृष्ठकी छपाई १००) प्रति अंक।
वर्ष भर तक टाईटल पेजके चौथे पृष्ठकी छपाई ३००)
टाईटलके दूसरे वा तीसरे पृष्ठकी छपाई ८०) प्रति अंक।
वर्ष भर तक टाईटलके दूसरे तीसरे पृष्ठकी छपाई २६०)

त्रैमासिक 'श्रीस्वाध्याय' के पृष्ठ का आकार २० × ३० अठपेजी। कालम स्थान ८ × ३ इंच है।

¾ चौथाई पृष्ठसे अधिक विज्ञापन देने वालेको 'श्रीस्वाध्याय' बिना मूल्य भेजा जायगा। छपाईकी रकम पेशगी प्राप्त होने पर ही विज्ञापन पत्रमें छापा जा सकेगा। इस विज्ञापन शुल्कमें किसी प्रकारकी न्यूनताके लिए लिखना व्यर्थ है।

आगामी 'हेमन्तांक' में प्रकाशित होने वाले विज्ञापन शुल्क सहित तारीख २० दिसम्बर १९५४ तक कार्यालय में पहुँच जाने चाहिएँ।

व्यवस्थापक—'श्रीस्वाध्याय' सोलन (शिमला)

स्वाध्यायोऽध्येतव्यः ॥ श्रीः ॥ स्वाध्यायान्न प्रमदितव्यम्

श्रीस्वाध्याय

(नववर्षाङ्क)

स्वराष्ट्रशिक्षां गृह्णीयाच्चिकीर्षुः स्वां समुन्नतिम् ।
दूरदृष्टिर्यया भूत्वा न कदाऽपि विषीदति ॥ —श्रीराष्ट्रालोक

वर्ष १४ | सोलन, आश्विन शु० १० गुरुवार सं० २०११ वि० | संख्या १

तत्तद्राष्ट्रे मानवानां व्यवस्थां शोभासम्पच्छालिनीमार्यरीत्या ।
प्रेम्णा लोके स्थापयँस्तत्त्वदर्शी श्रीस्वाध्यायः कलतां विश्वभूत्यै ॥
---अ० वा० आचार्य

श्रीस्वाध्याय-महिमा

[श्री १०८ आचार्य अमृतवाग्भवजी महाराज]

सुखं वा दुःखं वा भवति यदधीनं तदुदितं
विचाराणां जातं हृदयमिति संशीतिरहितम् ।
पवित्रीकर्तुं तत्स्वहितरचनायै समुदितं
भजन्तां स्वाध्यायं कविनृपनिषेव्यं कृतिवराः ॥१॥

भजन्ते ये भोगान् कृपणगतयस्ते निरयिता-
मयन्ते यान्भोगा रुचिरमतयस्ते विबुधताम् ।
प्रपद्यन्ते नारायणपदमहो ! योगनिपुणा-
स्तदेतत्स्वाध्यायः प्रभवति रहस्यं गमयितुम् ॥२॥

सम्पादकीय विचार—

आत्मशुद्धिकी आवश्यकता

"विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मन्दिवो धरुणे सत्यमर्पितम्।
अमित्रहा वृत्रहा दस्यु हन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥

सत्यका निवास धर्ममें है। धर्ममें ही तेजस्वी पोषक और बलबर्द्धक सत्य रहता है। इस सत्यसे शत्रुनाशक ज्योति प्रदीप्त होती है। महर्षियों द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्तकी उपेक्षाका क्या फल होता है, यदि यह देखना हो तो हमारे राष्ट्रिय जीवनको देखना चाहिए। हमारे राष्ट्रिय जीवनमें आज शुद्धता पवित्रता सचाई वा ईमानदारीका अभाव है। सरकारी विभागोंमें भ्रष्टताका राज्य है। स्वपार्श्वी (सिफारिस) और उत्कोच (रिश्वत) के बिना कोई काम नहीं होता। प्राथमिक पाठशालाकी अध्यापकी (मास्टरी) पानेके लिए भी २००)रु० की दक्षिणा भेंट देनी पड़ती है। भेंट लेने वाले हैं और कोई नहीं, जन-प्रतिनिधि ! बस-सर्विसमें कंडक्टर और ड्राइवरकी जगह पानेके लिए भी दक्षिणा चढ़ाना आवश्यक है ! निम्न-स्तर पर जब यह दशा है, तब सहजमें इस बातकी कल्पना की जा सकती है कि बड़ी योजनाओं और नदी घाटी परि-कल्पनाओंमें इनके कारण कितना अपव्यय हो रहा होगा। एक बोरे रेत पर क्यों चार-पांच गुने दाम दिये जा रहे हैं ? इसका कारण स्वतः प्रकट हो जायगा। ठेकेदारों और अन्य रजिस्टरोंमें जो लोग कभी काम पर नहीं लगाए गए उन लोगोंके नाम क्यों अङ्कित पाए जाते हैं ? यह तो रोगके लक्षण मात्र हैं। यह रोगका मूल नहीं है।

लोक-सभामें सरदार गुरुमुखसिंह मुसाफिरने कहा है कि "मिलावट इस सीमा तक बढ़ गई है कि विष तक शुद्ध नहीं मिलता। गरम मसालेकी जगह घोड़ेकी लीद मिलती है; कालीमिर्चकी जगह पपीतेके बीज ! चाय भी नकली मिलती है। और तो और डालडा भी नकली मिलता है।" खाद्य-पदार्थोंमें मिलावट करना मानवताके प्रति घोर अपराध है। पर यह सब हो रहा है। आश्चर्यकी बात यह है कि यह काम वे लोग कर रहे हैं जो सरकारी क्षेत्रमें फैली भ्रष्टता और भ्रष्टाचारके कड़े और तीव्र आलोचक हैं। वे लोग भूल जाते हैं कि सरकारी क्षेत्रोंमें फैली भ्रष्टता और भ्रष्टाचारके लिए वे ही उत्तरदायी हैं।

दण्डी मारने वाले बनियेकी निन्दा तो प्रत्येक करता है। पर हम भूल जाते हैं, देशमें जो दानवीर माने जाते हैं, जिन लोगोंकी थैलीके बलसे अनेक संस्थायें चलती हैं, जो सभाओंके संरक्षक और सभापति हैं, वे किसी व्याव-सायिक नैतिकताको स्वीकार नहीं करते। पूरे पांच गजकी धोती न बनाकर एक दो सूत कमको बनाते हैं और लाखों रुपये इस प्रकार कमा लेते हैं एवं फिर भी समाज तथा देशमें सम्माननीय व्यक्ति बने रहते हैं। हमारे देशके उद्योगपति एक बार नाम हो जाने पर, मालकी बिक्री बढ़ जाने पर इस बातकी तनिक चिन्ता नहीं करते हैं कि उनका माल पहलेके समान टिकाऊ सुन्दर और अच्छा रहे। देखा गया है कि अधिकसे अधिक लाभ उठानेकी इच्छासे वे माल घटिया बनाने लगते हैं। यह है हमारे धनी-वर्ग और श्रीमन्तोंकी मानसिक स्थिति। धर्मकी दुहाई देनेमें ये भी किसीसे पीछे नहीं हैं। पर सत्य इनके व्यव-हारसे बहुत दूर है।

समाजके किसी वर्गके कामकी ओर देखिये तो आपको सत्य-व्यवहार और शुचिताका उसमें अभाव मिलेगा। इस अवस्थामें जब सारे समाजका नैतिक स्तर गर्त तक पहुंचा हुआ है, और हमारे समाजकी जड़ोंको खोखला कर रहा है तब समाज-शरीरको शुद्ध और पवित्र बनानेकी कितनी आवश्यकता है, इस बातको सहजमें अनुभव किया जा सकता है। प्रश्न यह है कि इस रोगका निदान क्या है ?

धनकी तृष्णासे सारा समाज तृषित और पीड़ित है। आज धर्मका स्थान धनने ले लिया है। लोक और परलोकका भय सर्वथा नहीं रहा है। यह मान लिया गया है, कि वैभव स्वर्ग और मोक्षकी सीढ़ी है। आज किसीके

मनमें सन्तोष नहीं है। "हाय धन ! हाय धन !!" सबकी जिह्वा पर है। क्योंकि आज हमारी भावना बदल गई है। हमारा उद्देश्य बदल गया है। हमने भारतीय धर्म और संस्कृतिका परित्याग कर दिया है। भारतीय संस्कृतिका आधार है सरल जीवन और उच्च विचार। भारतीय संस्कृति जीवनकी आवश्यकताओंको बढ़ानेमें नहीं, अपितु उनको घटानेमें विश्वास करती है। परन्तु आज गंगाका प्रवाह उलट गया है। आज सरल जीवनका स्थान आडम्बरने ले लिया है। सचाईका स्थान सत्याभासने लिया हुआ है। व्यवहार-शुचिताका स्थान धोखा और फरेबने लिया हुआ है। यह नहीं कि हम इनको जानते नहीं हैं। हम इनको जानते हैं। परन्तु इन सबको जानते हुए भी दूर करनेकी आवश्यकता नहीं समझते। हमने कभी इस बातका अनुभव ही नहीं किया कि हमारे राष्ट्रका इसके कारण कितना पतन हो गया है।

हमारे देशके बाजारमें बिक्री वस्तुओंका निश्चित भाव नहीं है। एक पैसे मूल्यकी वस्तुसे लेकर अधिकसे अधिक मूल्यवान् वस्तुका पहले सौदा करना पड़ता है। इसमें समय व्यर्थ जाता है और हमारे राष्ट्रिय चरित्रकी दुर्बलता प्राप्त होती है। अर्थ शास्त्रकी पुस्तकोंमें लिखा हुआ है कि भारतमें वस्तुओंका मूल्य निर्धारण करनेमें एक तत्व सत्यव्यवहार भी है। यह और किसी देशमें नहीं है परन्तु कभी भी हमने इसमें अपना और अपने देशका अपमान अनुभव नहीं किया। सरकारी प्रशासनकी अन्धेर-गर्दी निन्दनीय है। परन्तु उसकी निन्दा करना ही पर्याप्त नहीं है। वह मूल रोग नहीं है, वह रोगका उग्र लक्षण मात्र है। रोगका निदान है हमारे राष्ट्रिय जीवनमें ही सत्य व्यवहार और शुचिताका स्थान नहीं है और न कभी हम उसके अभावको तीव्रतासे अनुभव करते हैं। पानी मिला दूध मिलता है तो हम समझते हैं कि यह स्वाभाविक है। सुनारको तो हम 'पश्यतोहरः' ही कहते हैं। जब यह अवस्था है तब आवश्यकता इस बातकी है कि सरकारी मशीनरीकी आलोचना करनेसे पहले हम आत्म-सुधार करें। आत्म-शुद्धि सर्वप्रथम आवश्यक है। आत्म शुद्धिका प्रबल और व्यापक आन्दोलन जब तक इस देशमें न चलाया जायगा तब तक सरकारी क्षेत्रोंसे भ्रष्टता के राज्यका भी अन्त न होगा। सरकारी क्षेत्रमें दीख रहा भ्रष्टाचार हमारे राष्ट्रिय-जीवन और चरित्रमें विद्यमान भ्रष्टता और अशुचिताका प्रतिबिम्ब है। इस सत्यको जब तक अनुभव नहीं किया जायगा, तब तक केवल आलोचना करने मात्रसे भ्रष्टता और अशुचिताका अन्त न होगा। राष्ट्र-शुद्धिसे पहले आत्मशुद्धिकी आवश्यकता है। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'।

शासककी स्वच्छन्दचारिता ?

राष्ट्रमेव विश्वाहन्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः।
विशमेव राष्ट्रायाद्यां तस्माद्राष्ट्री विशं हन्ति॥
न पुष्टं पशुं मन्यते। (शत. कां. १३ प्र. २)

'श्रीस्वाध्याय'के प्रथमवर्षके चौथे ग्रीष्माङ्कमें आजसे १२ वर्ष पूर्व हमने इसी सम्पादकीय स्तम्भमें 'राजाका आदर्श' शीर्षकसे अपने विचार व्यक्त किये थे। उस समय भारत परतन्त्र था, आज स्वतन्त्र भारतमें अब राष्ट्रनायक किस ओर जा रहे हैं और उनका क्या कर्तव्य होना चाहिए इस पर शास्त्रीय विचार आवश्यक है। राजा अर्थात् देशके कर्णधार को कभी भी स्वेच्छाचारी नहीं होना चाहिए। राजाका स्वेच्छाचार प्रजाके लिये बहुत घातक सिद्ध होता है। स्वेच्छाचारी राजा प्रजामें परस्पर मनोमालिन्य उत्पन्न करके उसको नाशकी ओर अग्रसर करता है। जिस प्रकार वनराज—सिंह शक्तिशाली पशुओं तकको मार डालता है उसी प्रकार स्वेच्छाचारी शासक देशकी बड़ी शक्ति एकताको समाप्त करके राष्ट्रको ही निर्बल बना देता है।

शतपथ ब्राह्मणके उक्त मन्त्रमें कहा गया है—जो शासक प्रजाकी भावनाओंका निरादर करके अपनी स्वेच्छाको ही समुचित मानने लगता है, जाति एवं धर्म-विशेषोंके प्रति आदर और अनादर प्रदर्शित करके वर्गविशेषमें रुचि और दूसरे वर्गके प्रति घृणा-भाव प्रकट करता है, उसके शासन में प्रजा कभी भी सुखी नहीं रह सकती। वह प्रजामें अन्तर्वैमनस्य उत्पन्न करके महान् विपत्तिका ही कारण बन सकता है। अतएव शासकको समग्र वर्ण आश्रम और धर्मों के प्रति समभावसे व्यवहार करना चाहिए।

इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयात। चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्यो भवेह॥
(अथर्व० कां. ६, अनु० १० व० ६ मं १)

शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियोंसे परिपूर्ण राष्ट्र-नायक सदा विजय पाता है, उसे कभी भी पराजय का मुँह नहीं देखना पड़ता। ऐसे ही व्यक्तिका राजाधिराज शासकके रूपमें निर्वाचन करना चाहिए। ईश्वर हमें सामर्थ्य दे कि ऐसा वन्दनीय, चरित्रवान् और शरणागतकी रक्षा करने वाले व्यक्तिको हम राजा वा राष्ट्राध्यक्ष निर्वाचित करके शान्ति पूर्ण जीवन बिता सकें।

अथर्ववेदके उक्त मन्त्रका भाव यह है कि शासककी शक्ति प्रजा है, प्रजाको प्रसन्न रखने वाला नायक ही उस शक्ति गंगाका समुचित उपयोग करके ही सदा विजयी होता है। वह प्राणिमात्रकी भावनावोंका समादर करके उसके आधार पर ही शासन करता है। वह सबका 'उपसद्य' है, उसके पास पहुंचनेमें किसीको किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित नहीं होती। यह हैं शासकके कर्तव्य, जिनका बहुत विस्तारसे वेदों में वर्णन किया गया है।

मुख्य शासक राष्ट्रका कर्णधार होता है। प्रजापर स्नेह और प्रजाकी भावनाओंका समान रूपसे सम्मान करने वाला शासक वस्तुतः प्रजाके हृदयों पर शासन करके उसे सन्मार्ग पर प्रवृत्त करना उसका धर्म हो जाता है। अपने आदर्श चरित्रसे वह जनताका हृदय परिवर्तन करके चिरकालीन सुख, शान्ति और समृद्धिका विस्तार करके अपनी क्षणिक जीवनकी घड़ियोंको अजर-अमर बना जाता है। सहस्राब्दियों के अनन्तर भी आज हम श्रीरामचन्द्र अशोक हर्ष विक्रम, एवं भोज, आदि राजाओंके नाम उतनी ही श्रद्धासे लेते हैं जितनी श्रद्धासे उनके राज्य कालकी सौभाग्य शालिनी प्रजा लेती होगी।

स्व० महात्मा गान्धीजीने विप्लवमय, विडम्बनापूर्ण और स्वेच्छाचारी शासनसे मुक्ति पानेके लिये जिस महान् अहिंसात्मक क्रान्तिको जन्म दिया, उसका मुख्य उद्देश्य था "राम राज्यकी स्थापना" उसकी आधार शिला थी हृदय परिवर्तन द्वारा सत्य सदाचारका निरन्तर प्रचार, भौतिक सुख सुविधाओं द्वारा शारीरिक और मानसिक विकास एवं धर्मके प्रति अगाध श्रद्धा द्वारा वास्तविक शान्ति एवं आत्मोन्नति। उन्होंने दासतासे मुक्ति पानेके अनन्तर भारतमें स्थापित होने वाली राज्य प्रणालीकी "रामराज्य" के रूपमें कल्पना की थी। वह आदर्श राम-राज्य था उनका लक्ष्य, जिसके विषयमें कहा गया है कि—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

आदर्श राजा श्रीरामकी प्रतिज्ञा थी कि प्रजाको प्रसन्न रखनेके लिए, प्रजाको अपने अनुकूल बनाये रखनेके लिए, सांसारिक प्रलोभन तो दूर अपने स्वाभाविक गुणोंको ही नहीं प्राणाधिक प्रिय पत्नी जानकीके परित्याग करने तकमें मुझे हिचकिचाहट नहीं होगी। और सचमुच ही ऐसा भी समय आ गया जब उन्होंने प्रजाकी प्रसन्नताके लिये श्री सीता देवी तकको त्याग दिया।

शासकमें चरित्र-बल समदर्शिता और शुभ प्रवृत्तियोंका होना इसलिए अत्यन्त वांछनीय है कि सम्पूर्ण प्रजा उसके चरित्रका अनुकरण करके आदर्श मानवताकी ओर अग्रसर हो। प्रजा राजाका अनुकरण करती है। एक उत्तम शासक सम्पूर्ण वातावरणमें ही परिवर्तन लानेकी क्षमता रखता है।

राज्ञि धर्मणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः।
लोकास्तमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा॥

किन्तु वर्तमान शासक अपने पक्षपात पूर्ण व्यवहारोंसे नितान्त विपरीत मार्गका अनुसरण कर रहे हैं। वे कांग्रेस अधिवेशनके समय अजमेर जाकर ख्वाजासाहबकी दरगाहमें पुष्पाञ्जलि अर्पित करनेमें गौरव अनुभव करते हैं, फतेहगढ़ गुरुद्वारेमें जाकर अपनी श्रद्धा प्रकट कर सकते हैं, बौद्ध मन्दिरों में पहुँच कर पुष्प धूप आदिसे भगवान् बुद्धके प्रति श्रद्धावनत हो सकते हैं, इसी प्रकार हरिजन बस्तीमें बाल्मीकि मन्दिरमें पहुंच देव प्रसादको मुस्कराते ग्रहण कर सकते हैं, किन्तु उज्जैन पहुँचकर भी श्रीमहाकालेश्वर मन्दिर जाने की प्रार्थना सुनकर नाक भौं सिकोड़ कर घृणा प्रदर्शित करते नहीं हिचकिचाते, श्रीकाशी धाममें श्री विश्वनाथजी के दर्शनके नाम पर ही लाल पीले हो जाते हैं, कुम्भ-पर्व पर प्रयागराजमें डेरा डालकर भी स्नान करनेमें अनादर भाव प्रकट करते हैं, एवं गो हत्या जैसे जघन्य पापको ६० प्रतिशत देश वासियोंके विरोध करने पर भी केवल अपने अहम्की तुष्टिके लिये चालू रखे हुए हैं।

"राजा कालस्य कारणम्"

इस प्रकारके शासक समयके अनुकूल भले ही बुद्धिमान् गिने जांय, अन्तर्राष्ट्रीय यश भी प्राप्त कर लें, किन्तु प्रश्न तो

यह है कि अपने अनुकर्ताओंके लिये क्या आदर्श छोड़ सकते हैं ? इस महान्तम प्रचीन संस्कृतिके उत्थानमें भी योग दे सकते हैं या नहीं ? जिस संस्कृतिको वे घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं, कल उनके अनुगामी उसे समूल मिटानेका यत्न न करेंगे ? अपनी जिस राष्ट्रिय संस्कृतिका गौरवमय प्रदर्शन वे विदेशों में करते हैं उसकी संरक्षा एवं-संवर्धनामें उन्होंने स्वयं कितना योग दिया ? क्या किसी भी देश अथवा जातिके लिये उसके धर्म और आदर्शोंके प्रति घृणा अभिव्यक्त करने वाला व्यक्ति उस संस्कृतिकी गौरव गाथाका एक अङ्ग बन सकता है ?

यद्यपि तर्क दिया जा सकता है कि अल्पमतको विश्वास दिलानेके लिए उनके धर्मके प्रति आदर प्रदर्शन अनुचित नहीं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि बहुमतके धर्मके प्रति घृणा भाव प्रदर्शित करके उनका विश्वास खो दिया जाय।

शासकको प्राचीन आदर्श राज गुणोपेत होना चाहिए। जैसा कि भारतके अधिकतर राजा हमारे बघाट सोलन नरेश श्री दुर्गासिंहजीके समान निष्पक्ष होते थे। सनातनधर्मानुयायी होते हुए भी सनातनधर्म-मन्दिर अथवा आर्यसमाज-मन्दिर, गुरुद्वारा अथवा मस्जिद आदि सभी धार्मिक संस्थाओंको समान सहायता देना, सभीके धार्मिक उत्सवोंमें समान भावसे सम्मिलित होना उनके वास्तविक राजत्वका द्योतक है। वे सम्पूर्ण प्रजाके चाहे किसी भी धर्मके मानने वाली हो, अपने हैं और सभी उनके अपने हैं। अपने इस समत्व भावके कारण ही राज्य विलयके अनन्तर भी लोक हृदयोंके सिंहासन पर वे यथापूर्व आसीन हैं।

शासक अपने आदर्श चरित्रसे, लोक-व्यवहारसे प्रजा का मार्ग प्रदर्शन करता है और प्रजा उसका अनुकरण करके चरित्रवान् शीलवान् बनती है, एवं राजा और प्रजाका यह तादात्म्य राष्ट्रकी सुख शान्तिका प्रतीक बनकर आदर्श का रूप ग्रहण कर लेता है। इसी स्थितिमें तो राजा घोषित कर सकता था कि "न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः"

इसके विपरीत राष्ट्रनायकका स्वेच्छाचार एवं अपनी प्राचीनतम संस्कृतिके प्रति घृणा-प्रदर्शन उन पवित्रतम भावनाओं के मूलमें ही कुठाराघात करते हैं, जिनसे स्नेह, दया, सत्यता एवं चरित्र-निर्माणकी प्रेरणा मिलती है। अपनी संस्कृतिके प्रति अविश्वास होने से आस्तिकता एवं धार्मिकताके प्रति हेय भावनाका उदय ६० प्रतिशत लोगोंको उच्छृंखल, स्वार्थी और समवेदना हीन बना देती है, जिसके परिणाम चोरी, डाके, अत्याचार और व्यभिचारोंके रूपमें प्रकट होकर संसारमें "त्राहि त्राहि"की अवस्था उत्पन्न कर देते हैं। और इन सब दुष्प्रवृत्तियोंकी एक छोटी सी वस्तु मूल कारण है, जिसे हम चन्द्रमा पर धब्बा कह उसकी शोभा बढ़ाने वाला समझ बैठते हैं, कितने अनर्थोंकी जड़ है। इस विचार से यह सिद्ध हो जाता है कि प्रजाके पापोंका उत्तर-दायित्व राजा पर है। "राजा राष्ट्रकृतं पापम्"।

अन्तमें हम अपने राष्ट्रके सुयोग्य कर्णधारोंसे नम्र निवेदन करते हैं कि वे सभी धर्मों जातियों और वर्णोंके प्रति समान भावसे व्यवहार करें। किसीके प्रति आदर और दूसरेके प्रति अनादर प्रदर्शित करके लोक हृदयों पर स्थिर अपनी लोक-प्रियताको कम करनेकी चेष्टा न करें।

हमें ऐसी उन्नति नहीं चाहिए जिसमें अपनी भारतीयताको भस्म कर देना पड़े, अपनी प्राचीनतम संस्कृतिके गौरव को हेय समझने लगें।

भारतीय संस्कृतिका प्रतीक गौ

गौ भारतीय संस्कृतिका प्रतीक है, कविकुलगुरु श्री कालिदासने राजा दिलीप द्वारा नन्दिनी गायकी सेवाका वर्णन किया है। नन्दिनी गायकी सेवा राजाने किस प्रकार की, इसका वर्णन करते हुए भारतके राष्ट्र-कवि ने लिखा है कि प्रातः राजा रानीने गौकी पूजा की। तदनन्तर राजा गौको लेकर जंगलकी ओर चल पड़ा। नौकर चाकरोंको भी उसने लौटा दिया और राजा अकेला ही गौकी सेवा करनेमें प्रवृत्त हुआ। कोमल-कोमल घास गौको खिलाता, मच्छरोंको भगाता, पीठ खुजलाता, गौ जिधर जाती उधर ही राजा जाता। गौकी स्वच्छन्दता और स्वतन्त्रतामें बाधक न होता। जब गौ पानी मांगती पानी देता, जब गौ बैठ जाती तब वह भी बैठ जाता, जब वह खड़ी हो जाती तब राजा भी खड़ा हो जाता। महा कविके शब्द हैं—

आस्वादवद्भिः कवलैस्तृणानां
कण्डूयनैर्दंशनिवारणैश्च ।
अव्याहतैः स्वैरगतैः स तस्याः
सम्राट् समाराधन तत्परोऽभूत्॥
स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां

निषेदुषीमासनबन्धधीरः ।
जलाभिलाषी जलमाददानां
छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत् ॥

यह है गौ सेवाका आदर्श ! राजा छायाकी भांति गौके पीछे पीछे चला। अपनेको गोरक्षक और गौसेवक कहने वाले क्या कह सकते हैं कि वे इस प्रकार गौ सेवा करते हैं ? इस अवस्थामें गौको माँ कहनेका हमारा दावा करना क्या वृथा नहीं है ?

गौ रक्षाका एक आदर्श कालिदासने और भी हमारे सामने रखा है। वह यह कि २१ दिनों तक राजाने गौकी सेवा की। गौने राजाकी गौ-भक्तिकी परीक्षाके लिए माया रची और एक सिंहने गौ पर आक्रमण किया। गौ प्राणोंकी भीख मांग रही है। राजाने बहुत प्रयत्न किया कि सिंह गौको छोड़ दे। जब सब प्रयत्न व्यर्थ हो गयें, तब राजाने सिंहसे कहा कि गौकी जगह वह राजा के शरीरसे अपनी भूख मिटा ल और अपने आपको सिंह के आगे डाल दिया।

तथेति गामुक्तवते दिलीपः
सद्यः प्रतिष्टम्भविमुक्तवाहुः ।
स न्यस्तशस्त्रो हरये स्वदेह-
मुपानयत्पिण्डमिवामिषस्य ॥

गौ रक्षाका यह उच्च आदर्श हैं। सरकार इससे शिक्षा ग्रहण कर सकती है और इसका अनुकरण कर सकती है। यदि सम्राट् औरंगजेब अपने राज्यमें 'फरमान' निकाल कर गौ-वध रोक सकता था, तो आजकी सरकार भी यह कार्य कर सकती है। अपनी हठ धर्मी और गलत पथप्रदर्शन करने वाले चाटुकार लोगोंके उपचक्षु त्याग कर वस्तुस्थितिको स्वस्थनेत्रोंसे देखनेकी आवश्यकता है।

आग्नेय एशिया प्रतिरक्षा संघ

एशिया सजग है। उसको अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की तीव्र अनुभूति हो रही है। इस कारण मनीला कान्फ्रेंस को वह शंका और चिन्तासे देखता है। एशियाके भाग्य का निपटारा यूरोप और अमेरिका करें, यह आज एशिया को सह्य नहीं हैं। इसलिए आग्नेय एशिया-प्रतिरक्षा-संघ की योजनाकी पूर्तिमें सहयोग देनेके लिए एशिया प्रस्तुत नहीं है।

मनीला-कान्फ्रेंसमें एशियाई राष्ट्रोमेंसे पाकिस्तान थाइलैण्ड और फिलीपीनको छोड़कर और कोई सम्मिलित नहीं हुआ। जिन देशोंकी रक्षाके लिए यह करार किया गया है उनमेंसे भारत, श्रीलंका, बर्मा और हिन्देशिया इसमें सम्मिलित ही नहीं हुए। फिर भी अमेरिका ब्रिटेन, फ्रांस आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्डने अपने बीच अनुवर्ती एशियायी राष्ट्रोंको मिलाकर आग्नेय एशियाकी सुरक्षाका ठेका ले लिया है। 'मान न मान में तेरा मेहमान" की उक्ति यहीं चरितार्थ होती है।

अमेरिकी परराष्ट्र मंत्री श्री जान डलेसने करारके साथ अपना एक पत्रक भी जोड़ा है और कहा है कि अमेरिका आक्रमणसे कम्यूनिस्ट आक्रमण मानता है और वह इसीके विरुद्ध इसीको रोकनेके लिए सब प्रकार की सहायता देगा। किन्तु, पाकिस्तान आक्रमणकी परिभाषा इससे भिन्न करता है। वह चाहता है कि आक्रमणकी परिभाषा इस प्रकार की जाय, जिससे यदि पाकिस्तान कभी वैर प्रतिशोधके लिए भारत पर आक्रमण करे तो मनीला-करार पर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्र उसकी प्रत्येक प्रकारसे सहायता करनेके लिए वचनबद्ध हों। पाकिस्तानने इसी आशासे इस पैक्ट पर हस्ताक्षर किये हैं। इस दृष्टिसे मनीला-करारका भारत द्वारा विरोध किया जाना स्वाभाविक है।

मनीला-करार और 'नाटो' (नार्थ अटलाण्टिक ट्रीटी आर्गनाइजेशन) में एक भारी अन्तर हैं। 'नाटो' के दांत है। इसमें सशस्त्र प्रतिकारके लिए सैनिक सगठनकी कोई व्यवस्था नहीं की गई है। किन्तु आन्तरिक शासनके विरुद्ध हुई कार्यवाहीका दमन करनेमें ये राष्ट्र सहायता देनेके लिए बचनबद्ध हैं। यह प्रतिगामियोंके बचावके लिए है। कल्पना कीजिए कि थाइलैंडमें विपुल-संग्रामके विरुद्ध यदि प्रगतिशील शक्तियां आन्दोलन करें तो आन्तरिक शासन व्यवस्थाको पलटने वाला माना जा सकता है। और इसके दमनमें सहायता देनेके लिए मनीला-करार पर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रोंने वचन दिया है। इस दृष्टिसे यह करार इस क्षेत्र के अन्दर स्थिति स्थापक है और परिवर्तनका विरोधी है।

आग्नेय एशिया प्रति-रक्षा-संघ साम्राज्यवादका पोषक
मलाया न्यूगिनी बोर्नियो आदि प्रदेशोंमें आज भो
ाज्यवादका प्रभुत्व है । इस प्रभुत्व
अन्त करनेके लिए किये जाने वाले राष्ट्रोय आन्दोलनों
कम्युनिज्मकी प्रेरणाका फल बताकर उन आंदोलनोंको
लनेमें सहायता देंगे और इस प्रकार साम्राज्यवाद
एशियामें जड़ जमानमें सहायता देगें। यही कारण
क भारत हिन्देशिया और बर्माने इसको शंका और
ेके साथ देखा है और वे अफ्रीका एशिया संघ
नेका प्रयत्न कर रहे हैं। हिन्देशियाके प्रधानमन्त्री डा०
शास्त्र मिजोयोने नई दिल्ली और रंगूनकी इसी उद्देश्य
ात्रा की थी और प्रधान मंत्री श्री नेहरू और श्री थू-
े इस विषयमे परामर्श किया। सिद्धान्ततः इन
ों राष्ट्रोंने माना है कि शांति-क्षेत्रको विस्तृत करने
लिए एशिया अरब राष्ट्रोंकी परिषद बुलानी चाहिए।
परिषदका कार्यक्रम निर्धारित करनेके लिए 'कोलम्बो
फ्रेंस, के राष्ट्रोंकी परिषद बुलाई जाय। इन दोनों
षदोंको बुलानेका निश्चय बताता है कि आग्नेय एशिया
ाष्ट्र आग्नेय एशिया प्रति-रक्षा संधको शांतिके मार्गमें
क मानते हैं।

आग्नेय-एशिया-प्रतिरक्षा-संघको चीन अपने विरोध
मानता है। उसके इस कथनमें सचाई है। क्योंकि
रिकाको भय है कि आग्नेय एशियाके विभिन्न देशों
—जैसे थाईलैण्ड, मलाया, हिन्देशिया—बड़ी संख्या
से चीनी पैकिङ्गके निर्देश और आदेशके अनुसार
करेंगे और देशके अन्दर रहते हुए कम्युनिस्ट
शासनकी स्थापनाका प्रयत्न करेंगे। यह भय सर्वथा निर्मूल है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। दूसरे लाल चीनकी सीमा भारत बर्मा थाईलैंड और हिन्दचीनको स्पर्श करती है। चीन कम्युनिज़्मकी दीक्षा प्राप्त लोगोंको इन देशों में भेजकर कम्युनिस्ट चीन उनमें अपनी अनुवर्तिनी सरकार स्थापित करनेका प्रयत्न करेगी। बर्मा, थाईलैण्ड और हिन्देशिया आज भी कम्युनिस्टोंसे लड़ रहे हैं। यद्यपि ये राष्ट्र कम्युनिस्टोंसे लड़नेके लिए पश्चिमी राष्ट्रों की सहायता नहीं चाहते। दूसरी ओर चाऊ-एन-लाई नू नेहरू करार द्वारा प्रत्येक राष्ट्रकी स्वाधीनता और प्रभुत्व शक्तिकी अक्षुण्णता और अखण्डताकी रक्षाका आश्वासन दिया गया है। इसलिए इन देशोंको चीनसे किसी प्रकारका भय नहीं है। इसलिए चीनकी यह शंका सर्वथा निमूल नहीं है कि यह करार पश्चिमी राष्ट्रोंने उसके ही विरोधमें किया है। जब ५० कोटि जनोंका देश आग्नेय एशिया-प्रतिरक्षा-संघ और इसके जन्म देने वाले मनीला करारको शंका और सन्देहकी दृष्टिसे देखता है, तब क्या इसको विश्व-शांतिकी स्थापनामें सहायक माना जा सकता है ?

जीनीवा-करार अमेरिका और श्री डलेजके न चाहते हुए भी हुआ और हिन्द-चीनमें युद्ध बन्द हो गया। इसको पलटनेके लिए अमेरिकाने मनीलामें आठ राष्ट्रोंको एकत्रित किया। किन्तु विश्वने इनके कार्योंको शान्ति-विरोधी माना और अब सन्देह होने लगा है कि सारे जगत्के शांति प्रेमियों की इच्छाके विरुद्ध आग्नेय-एशिया-प्रति-रक्षा-संघकी संभवतः स्थापना न हो सकेगी।

दैवज्ञकी दृष्टिमें संसार-चक्र

[श्री हरदेव शर्मा त्रिवेदी ज्योतिषाचार्य]

आजसे ५ वर्ष पूर्व 'श्रीस्वाध्याय' के ६ वें वर्षके चौथे
क (सं० २००७ द्वि० आषाढ़) में हमने विश्व-विनाशक
और उत्पातादिका मूल कारण तथा उससे रक्षाके उपाय
ृत रूपमें बताये थे। आज आसुरी भावापन्न संसार
सदाचार और धर्मसे दूर रहकर शान्तिकी मृग-मरीचिकामें दौड़ा जा रहा है। जिस राष्ट्र, देश, समाज, जाति एवं घरमें सम्मानित पूज्यजनोंका अनादर और अपूज्योंकी पूजा वा सम्मान होता है वह राष्ट्र, देश, समाज, जाति और घर अन्ततोगत्वा रसातलमें पहुंच जाता है, वहां दुर्भिक्ष, दरिद्रता मृत्यु और चारों ओरसे भय व्याप्त रहता

है। भगवान् मनुने लिखा है—

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः।
त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥

धर्मप्राण भारतमें भी आज धर्मोपदेश सुनकर उसपर आचरण करने वाले इने-गिने ही होंगे। गुरुजनों, माता-पिताओं एवं जगन्माता गौका अनादर हो रहा है। तथा अपूज्य अनधिकारी प्रपंचियों और स्वानोंका सम्मान होता है, इसी प्रज्ञापराधसे राष्ट्रमें दुर्भिक्ष, उत्पात दैवीप्रकोपादि त्रिविधतापोंसे प्रजा सन्तप्त होती जा रही है। जिस देशमें मनुष्य धर्मको अधर्म और अधर्मको धर्म अपनी विपरीत बुद्धिसे समझने लग जाते हैं और अन्याय दुराचार पाखण्ड की वृद्धि होती है वह देश नष्ट हो जाता है। लिखा भी है—

अन्यायश्च दुराचारः पाखण्डाधिकता जने।
सर्वमाकस्मिकञ्जातं वैकृतं देशनाशनम्॥

यदि राष्ट्रको विनाशसे बचाना है तो धर्महीन पश्चिमी सभ्यताको तिलांजलि देकर धर्मप्राण भारतकी विश्वकल्याण-कारिणी प्राचीन आर्य संस्कृतिको अपनाना ही होगा।

गतांकमें मंगल-राहु योग पर शनि दृष्टिका प्रभाव बताया था, उसका प्रभाव बराबर घटित होता जा रहा है। भारतके अनेकों भागोंमें आषाढ़ मास तक तो अनावृष्टि और भयानक गर्मीसे प्रजा सन्तप्त रही और तदनन्तर कहीं राजस्थान दिल्ली आदि प्रान्तोंमें अवर्षण तथा अब आश्विन मासमें सर्वत्र अतिवृष्टिकी बाढ़से जो जलप्लावन हुआ उसने गत ४०-४५ वर्षोंके रिकार्डको भी तोड़ दिया है। इस अनावृष्टि एवं जलप्लावनादि उत्पातकी सूचना हमने एक वर्ष पूर्व अपने वर्तमान वर्षके 'श्रीविश्वविजय-पंचांग' में स्पष्ट रूपसे दी थी, पंचांगके पृष्ठ ३८ और 'श्रीस्वाध्याय' वर्ष १३ के 'वसन्तांक' पृष्ठ ५३-५४ पर 'भारतका वायु मण्डल वर्षा आदि' शीर्षकके नीचे निम्न पंक्तियाँ अंकित हैं—

"इस वर्षकी ग्रहस्थिति वायु मण्डल और वर्षा आदि के लिए विशेष समाधान कारक नहीं है। असामयिक अनियमित वर्षा होगी। वायुवेग, आंधी, तूफान, बाढ़ और कहीं अवर्षणसे भारी क्षति होगी। पूर्वी भारत, आसाम, बंगाल, उड़ीसा, बिहारमें अतिवृष्टि और नदियोंकी बाढ़से हानि होगी। वर्षारम्भसे आश्विन मास तक मंगल-राहु इकट्ठे हैं और इन पर शनिकी दृष्टि है, यह संसारमें कहीं भयंकर हत्याकाण्ड अग्निकांड महामारी आदि सांसर्गिक रोग अवर्षणसे तो कहीं अतिवृष्टि भयंकर तूफान बवण्डर भूकम्प बाढ़ आदिसे जन धनकी हानि करता है।"

आसाम बंगाल बिहार और पंजाबके जलप्लावन, हैदराबाद आदिकी रेल दुर्घटनामें असंख्य मनुष्योंकी प्राण हानि और रहस्यमयी-बीमारीके साथ पहले अनेक प्रान्तों में अनावृष्टि तथा अब आश्विन मासकी असामयिक अतिवृष्टिने एक वर्ष पूर्व लिखी गई उक्त पंक्तियोंको अक्षरशः सत्य सिद्ध करके ज्योतिर्विज्ञानकी महत्ताको माननेके लिए अविश्वासियोंको भी बाध्य किया है।

गुरुदर्शन युतिका प्रभाव

गुरु ज्ञान सुख शान्तिके अधिपति आर्य-प्रकृति-प्रधान देव मंत्री शुभ ग्रह हैं। जिन उत्पातकारक अशुभ ग्रहोंके साथ ये देवगुरु रहते या दृष्टि सम्बन्ध करते हैं उनके विनाशक भयानक अनिष्टफलको न्यून करनेमें भी ये समर्थ हैं। गत वैशाख (अप्रैल) माससे ही धनुः राशिस्थ मंगल राहु और तुलाके शनि पर इन शान्ति-प्रिय गुरुदेवका दृष्टि सम्बन्ध था, इसी कारण संसारमें अधिक भयानक दुर्घटनाएँ न हो सकीं। कहीं अनावृष्टि कहीं अतिवृष्टि, कहीं भयानक गरमी, रहस्यमयी बीमारी और मजदूर एवं छात्रवर्गमें असन्तोष होकर टल गया। हमने गतांकमें स्पष्ट लिखा था कि—"कुशल इतनी ही रही कि यहां मंगलदेव राहुके साथ होने पर भी मित्र क्षेत्रमें हैं और इन पर गुरुदेवकी दृष्टि है। यदि ये कहीं नीच शत्रुके क्षेत्रमें होते और गुरु देवका अंकुश इन पर न होता तो ये ही मंगल न जाने संसारमें क्या-क्या अमंगल उपस्थित करते।......पीछे कहीं अतिवृष्टि और कहीं मरुस्थल आदिमें अनावृष्टिसे भी हानि होगी, क्योंकि मंगल महाराज आश्विन शु० १३ ता. १०अक्टूबर तक राहुके साथ और शनिसे दृष्ट रहेंगे।"

भाद्रपद शु० ११ ता० ६ सितम्बर १९५४ को गुरुदेव ने कर्क राशिमें प्रवेश किया, इसी दिनसे मंगल राहु पर इनकी दृष्टि नहीं रही, अतः ता. ६ सितम्बरके बाद अभी अक्तूबर तक भारतमें स्थान-स्थान पर अतिवृष्टिकी अभूत पूर्व बाढ़ आई है। इसी अवधिमें बैंक कर्मचारी एवं श्रमिक वर्गमें असन्तोष बढ़ा। केन्द्रीय मन्त्रि-मण्डलमें मतभेद

बढ़ा और श्री गिरीने त्यागपत्र दिया, तथा दक्षिणमें हैदराबाद के समीप भयानकतम रेलवे दुर्घटनामें भीषण प्राण हानि हुई। अब आश्विन शु० १३ ता० १० अक्टूबरको ६॥ मास बाद मंगल महाराज राहुसे अलग होकर अपनी उच्च राशि मकरमें प्रवेश हो रहे हैं, इन पर कर्कराशिके उच्चस्थ गुरुदेवकी दृष्टि भी रहेगी, अतः यहांसे फिर सुख शान्ति समर्थताका वातावरण बनेगा। बड़े राष्ट्रोंमें उच्चस्तरीय शान्ति चर्चा चलेगी, उच्चाधिकारियों (राष्ट्र नायकों) का पारस्परिक मिलन होगा।

आश्विन शु० १० ता० ७ अक्तूबर १९५४ ई० को कर्कराशिमें गुरु हर्शल युति हो रही है। इस वर्षमें सबसे महत्वपूर्ण यही युति है। गुरु हर्शल युति प्रति १४ वर्ष बाद होती है परन्तु भिन्न-भिन्न राशियोंमें। हर्शल सुधारवादी भौतिक विज्ञानका अधिष्ठाता माना गया है, अतः संसारमें उद्योग धन्धे उत्पादनकी वृद्धि होगी। कर्कराशि जलचर है अतः समुद्री यातायात, नहर नदी बांध योजना, जलविद्युद् योजना (*Hydro Electric Scheme*) मछली पकड़नेका व्यवसाय (*Fisheries*) और समुद्री नमक बनानेके उद्योगमें वृद्धि होगी। भ्रष्टाचारी अधिकारियों और चोर डाकू लुटेरोंको कठोर दण्ड मिलेगा। भौतिकवादका विकास और सामाजिक सुधार होगा। विस्थापित पुरुषार्थी (शरणार्थी) जनोंको अपनी सम्पत्तिका कुछ भाग सरकारकी ओरसे प्राप्त होगा। गौरक्षा आन्दोलन प्रबल वेगसे देश व्यापी बनेगा। आरम्भमें सरकारका रुख कठोर रहेगा परन्तु कुछ बलिदानके अनन्तर वर्षान्तमें यह आन्दोलन सफल होगा। दो गौभक्तोंका बलिदान होगा। शनिकी दृष्टि गुरु हर्शल पर होनेसे पश्चिमी राष्ट्रोंमें अशान्ति फैलेगी। अमेरिका, फ्रांस, पुर्त्तगाल और फारमोसा क्षतिग्रस्त होंगे। कुछ सांसर्गिक रोग फैलेंगे। कलकत्ता, कराची, सौराष्ट्र, बम्बई, राजस्थान, निजाम हैदराबाद, सिन्ध, पंजाब, बंगाल और उत्तरप्रदेशमें इस युतिका अनिष्ट प्रभाव होगा। कहीं मन्त्रिमंडलमें अविश्वास उलटफेर, जमींदार सामन्त वर्गमें असन्तोष, तथा कहीं अकाल और मध्यम वर्गमें बेकारी तथा अन्न-वस्त्रकी समस्यासे स्थिति उग्र बनेगी। भारत-पाक सम्बन्ध उत्तरोत्तर अधिक बिगड़ने लगेंगे इस युतिका प्रभाव प्रायः एक वर्ष तक रहेगा। पूर्व दक्षिणमें अराजकता और दुर्भिक्षका भय अधिक तथा उत्तर पश्चिममें कम है।

आने वाले कुछ अनिष्ट योग

नवम्बरके तीसरे सप्ताह मार्गशीर्ष माससे संसारमें फिर अशांतिका वातावरण बनेगा। क्योंकि ता० १७ नवम्बरको गुरुदेव कर्कराशिमें वक्री हो रहे हैं और २० नवम्बरको राक्षसगणमें शुक्र अस्त हो रहा है। इनका फल शास्त्रकारोंने यों लिखा है—

कर्कराशिगतो जीवो यदा वक्री भवेत्तदा।
दुर्भिक्षं जायते घोरं राजानो युद्ध-तत्पराः॥
राष्ट्रभङ्गं विजानीयाद्वैरोपद्रवसंकुलम्।
रसादि सर्व संयोगो घृततैलादि खण्डकम्॥
कार्पासादीनि वस्तूनि लाभं दद्यु‌र्न संशयः।
मार्गादि मासाः सप्तैव सर्वधान्य महर्घता॥

अर्थात् जब कर्क राशिमें गुरु वक्री हो तो संसारमें दुर्भिक्ष पड़े, सब प्रकारके धान्य (गेहूं, जौ, चना, उड़द, मूंग, अरहर, चावल) रस पदार्थ गुड़ खाण्ड घृत तैल और कपासका भाव तेज होता है। पहले संग्रह करने वाले लाभ उठा सकते हैं। युद्ध भय बढ़ता है। किसी देशका भङ्ग (पतन) होता है और कई प्रकारके आधिदैविक आधिभौतिक उत्पात होते हैं। हिमपात ओलावृष्टि और शीत अधिक पड़नेसे भी कहीं फसलको हानि होती है। ता० १५ मार्च १९५५ तक गुरु वक्री है, परन्तु कर्क राशिमें ता० २२ जनवरी १९५५ तक ही रहेंगे।

कार्तिक मासमें दीपमालासे पहले अन्न धान्य रस पदार्थ, गुड़, घृत, तैल, मूंग, उड़द, चणा, अरहर, अलसी रुई कपास संग्रह करने वाले आगे मार्गशीर्ष पौष मासमें अच्छा लाभ उठा सकेंगे। क्योंकि ता० १७ अक्टूबरको तुलासंक्रान्ति रविवारको १५ मुहूर्त्ती है, २६ अक्टूबरको दीपमाला मंगलवारकी है, कार्तिक शु० ५को मूल नक्षत्र, मार्गशीर्ष कृष्ण ११को शनि रविवार और शुक्रोदय तथा मार्गशीर्षसे फाल्गुन तक चारों शुक्ल पक्षोंमें तिथि क्षय एवं पौष कृष्ण अमावस्याको शनिवार है, ये सब योग संसारमें अन्नादि पदार्थकी न्यूनता और उत्पात अशांतिके सूचक हैं। यथा—

कार्तिकस्य त्वमावास्या रविवारेण संयुता।
शनिभौमयुता वापि सर्वलोक भयावहा॥
दीवा बीती पंचमी जो मूल नक्षत्र होय।
खप्पर हाथां जग भ्रमे भीख न घाले कोय॥
मार्गे यदि स्यादादित्य एकादश्यां तिथौ यदा।
कार्पासादिक सूत्राणि ग्राह्यं वैशाख लाभकृत्॥

अथवा दैवयोगेन शनिवारस्य संगमः।
जलशोषः प्रजानाशश्छत्रभङ्गस्तदा भवेत्॥
गुरुशुक्रोदयश्चास्तो यदा वै मार्गमासके।
देशान्तरं च गच्छन्ति तदा क्षुत्पीड़िता जनाः॥
अमावास्या सहस्यस्य शनिसूर्यारवासरे।
यदि स्याद्धयमादेश्यं तदा सस्य महर्घता॥

कार्तिक शुक्ल १२ सोमवार ता० ८ नवम्बर १९५४ को राक्षसगण एवं चतुर्थमण्डल नक्षत्रमें शुक्र पश्चिममें अस्त हो रहा है और मार्ग कृष्ण ११ शनिवार ता० २० नवम्बरको राक्षसगण एवं राजद्वार नक्षत्रमें शुक्र पूर्वमें उदय होगा, इसका परिणाम ६ मास तक राष्ट्रके लिए अनिष्टप्रद है। संसारके किसी श्रेष्ठ पुरुषकी मृत्यु होगी। देशमें अशान्ति विग्रह पारस्परिक मतभेद अनार्यता और भ्रष्टाचार बहुत बढेगा। गोआ और काश्मीरमें राजनैतिक एवं प्रकृतिप्रकोपसे हानि होगी। धार्मिक सांस्कृतिक आन्दोलन अधिक होंगे। पंजाब पेप्सू राजस्थान मध्यभारत दिल्ली सौराष्ट्र हिमाचलप्रदेश बंगाल आंध्र और मद्रासका मंत्रिमण्डल प्रजाका कोपभाजन बनेगा। कहीं मंत्रिमण्डलोंमें ही मतभेद होगा तो कहीं मंत्रियों और राज्यपालों वा राजप्रमुखोंमें खींचातानीसे शासनमें कठिनाई उत्पन्न होगी। इन प्रान्तोंमें कुछ नये मन्त्री उपमन्त्रियोंकी नियुक्ति होंगी, और कुछ उच्चाधिकारियोंका अकस्मात् स्थानान्तर होगा। किसी आर्यदेश वा हिन्दू जनतामें विग्रह होगा। अर्थ संकट और बेकारीसे श्रमिकवर्ग, बुद्धिजीवी तथा विद्यार्थी-वर्गमें असन्तोष बढेगा। प्रकृतिप्रकोप और अन्तर्राष्ट्रीय वातावरणसे व्यापारकी स्थिति भी डाँवाडोल सी रहेगी। तेजीकी लम्बी लाइनमें भी कभी कभी अकस्मात् अस्थायी मंदीके झटके लगेंगे। यान दुर्घटना भी होगी। राजद्वार और राक्षसगणमें शुक्रास्तोदयका फल प्राचीन आचार्योंने यों लिखा है—

स्वात्यादि सप्तके राजद्वारे शुक्रोदयो भवेत्।
लोकेभयं छत्रपतिक्षयं तत्र विनिर्दिशेत्॥
शुक्रास्ते राक्षसगणे हिन्दुदेशेषु विग्रहः।
खर्परे राजयुद्धानि मिश्र देशेऽन्नविग्रहः॥
मरुस्थले सिन्धुदेशे दुर्भिक्षं मध्यमं भवेत्।
यानपात्रविनाशोऽब्धौ फिरंगाणां च विग्रहः॥
विराट दुण्ढ पाञ्चाल सौराष्ट्रेषु च रौरवम्।
तथा राज्यपरावर्ता मालवेषु जनक्षयः॥
गुर्जरे मुद्गलभयं दुर्भिक्षं द्रव्य हीनता।
पञ्चवर्णं पट्टसूत्रं मूल्येनापि च दुर्लभम्॥
श्रीफलं दुर्लभं मृत्युः श्रेष्ठःपुंसश्च कस्यचित्।
उत्पातादिषु देशेषु सिन्धुदेशेऽतिविग्रहः॥
दिनत्रयमवाणिज्यं विग्रहो मालवादिके॥

यहां राक्षसगणमें जब शुक्रास्त हो रहा है तब वृश्चिक राशिस्थ शुक्रपर कर्कराशिस्थ गुरुदेवकी पूर्ण दृष्टि है, अतः भारतमें इसका विशेष अनिष्ट परिणाम नहीं होगा। अन्न रसपदार्थ, गुड़, खांड, तैल, घृत, कपास, रुई, मिर्च, हल्दी आदिमें कुछ तेजी होगी, तथा कहीं राजनैतिक सामाजिक धार्मिक आन्दोलन उग्ररूप धारण करेंगे, पर स्थिति पर शीघ्र काबू पा लिया जावेगा। यूरोप अमेरिकादि पश्चिमी देशोंमें उत्पात अधिक होंगे। अमेरिका अब पतनोन्मुख होता जा रहा है, भावी विश्वयुद्धका कारण भी यही बनेगा। वर्तमान वर्षके पंचांग और 'श्रीस्वाध्याय'के विगत 'वसन्ताङ्क'में हमने लिखा था कि—

"गतवर्षके पंचांगमें हम सन् १९५७-५८ ई०में विश्व-युद्धसे भयानक नरसंहारकी जो सम्भावना प्रकट कर चुके हैं उस विश्वयुद्धके कारणरूप बीज इस वर्षमें अंकुरित होने लगेंगे। आगेके ४-५ वर्ष संसारके लिए महाविनाशक और अकल्पित उलट फेरके होंगे। धर्मप्राण भारतके सदाचारी धर्मनिष्ठ व्यक्ति ही भावी संकटोंसे सुरक्षित रह सकेंगे।"

तदनुसार लक्षण घटित होने लग गये हैं। भविष्यका विशेष विचार हमारे २०१२ वि० के 'श्रीविश्वविजय पंचांग' में देखिये।

——

पुरुषार्थ

[महामहोपाध्याय श्री पं० गिरिधरशर्माजी चतुर्वेदी]

आर्य-शास्त्रोंमें चार 'पुरुषार्थ' बतलाये गये हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। 'पुरुषार्थ' शब्दका अर्थ है 'पुरुषैरर्थ्यते पुरुषार्थः'—पुरुषकी इष्ट वस्तु ही 'पुरुषार्थ' है। पूर्वोक्त चारों पदार्थ पुरुषको इष्ट होते हैं, अतः ये 'पुरुषार्थ' कहे गये हैं। स्थूल-दृष्टिसे देखने पर तो यही प्रतीत होता है कि 'अर्थ' और 'काम' ही पुरुषार्थ हैं। पुरुष स्वभावतः अर्थ और कामकी ओर झुकते हैं। द्रव्योपार्जन और उसके द्वारा विविध प्रकारके सुखोपभोग करना कौन नहीं चाहता? सच पूछिये तो इन दोनोंके बिना पुरुष किसी कामका नहीं। अर्थ और कामसे सर्वथा शून्य पुरुषको संसारमें कोई 'पुरुष' कहनेको भी तैयार न होगा। अर्थ और काममें जो जितनी उन्नति कर चुका है, जितनी सम्पत्ति जिसके पास है, जितने उपभोग के साधन—सुन्दर विशाल भवन, अच्छी से अच्छी सजीली गाड़ियां, चमकीले वस्त्राभूषण आदि—जिसको उपलब्ध हैं, वह उतना ही उन्नत कहलाता है, संसारमें उतना ही आदर पाता है। इसीलिये बालकसे बूढ़े तक, मूर्खसे प्रकांड विद्वान् तक, ग्रामीणसे चतुर नागरिक तक, सब इन दोनोंके हेतु यथाशक्ति उद्योग करते हैं। जैसी सबकी स्वाभाविक प्रवृत्ति इन दोनोंकी ओर होती है वैसी धर्म और मोक्षकी ओर नहीं। धर्म और मोक्षकी ओर यदि प्रवृत्ति होती भी है तो केवल विद्वानोंकी ही—सो भी अपनी इच्छासे नहीं, केवल शास्त्रकी आज्ञासे। तब तो जिसमें पुरुषकी स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं उसे 'पुरुषार्थ' कहना सर्वथा अनुचित है। आज्ञा और प्रेरणासे प्रवृत्ति होना और बात है, तथा स्वतः इष्ट समझकर प्रवृत्त होना और बात। प्रभु आदिकी आज्ञासे तो पुरुष ऐसे कार्योंमें भी प्रवृत्त देखे जाते हैं जो उनको सर्वथा अनिष्ट है। इसके अतिरिक्त धर्ममें प्रवृत्ति भी बहुधा अर्थ और कामके लिए ही होती है। प्रायः आस्तिक पुरुष कीर्तिके लिए या परलोकमें धन-प्राप्तिकी इच्छासे ही दान करते हैं। परलोकमें विविध कामोंकी प्राप्तिके उद्देश्यसे यज्ञ, तप आदि किये जाते हैं। अतः धर्म यदि 'पुरुषार्थ' हो भी, तो स्वयं पुरुषार्थ नहीं, किन्तु अर्थ और कामका अंगभूत होकर—उनका साधन होनेसे गौण पुरुषार्थ हो सकता है। बिना किसी उद्देश्यके, केवल धर्मकी इच्छा प्रायः किसीको नहीं होती। मोक्षका तो स्वरूप ही बहुत कम-इने-गिने पुरुष समझ सकते हैं, फिर उसकी इच्छा और उसके विषय की 'प्रवृत्ति' की क्या कथा? सुतरां जिस सार्वभौम भावसे 'अर्थ' और 'काम' पुरुषार्थ कहे जा सकते हैं उस भावसे 'धर्म' और 'मोक्ष' नहीं। यदि कुछ पुरुषोंको इनकी चाह हो, तो भी सामान्य रूपसे इन्हें 'पुरुषार्थ' नहीं कह सकते। स्थूल-दृष्टि से ऐसा ही प्रतीत होता है; किन्तु यदि विज्ञ पाठक विचार-दृष्टिसे काम लेंगे, तो सिद्ध हो जायगा कि 'धर्म' और 'मोक्ष' भी सार्वभौम-भावसे 'पुरुषार्थ' हैं, प्रत्युत ये ही मुख्य पुरुषार्थ हैं, 'अर्थ' और 'काम' गौण हैं।

इसपर विचार करनेसे पहले 'धर्म' और 'मोक्ष' शब्दका अर्थ जानना अत्यावश्यक है। 'धर्म' शब्द 'धृ' धातुसे बना है, जिसका अर्थ 'धारण करना' है। इससे केवल यही अभिप्राय नहीं कि जो धारण किया जाय वही धर्म है। किन्तु 'ध्रियते इति धर्मः और धरतीति धर्मः'—इन दोनों व्युत्पत्तियों के अनुसार जो धारण किया हुआ—तत्तद्-वस्तुके स्वरूपको धारण करने वाला हो, वह उसका धर्म कहा जाता है। 'धर्म' पदका यही अर्थ महाभारतके निम्नलिखित श्लोकमें वर्णित है—

"धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यस्माद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः"॥

"धारण करनेके कारण धर्मको धर्म कहते हैं, धर्म ही प्रजाको धारण करता है"—इत्यादि। अभिप्राय यह कि प्रकृतिके प्रवाहमें किसीका उत्थान और किसीका पतन बराबर

चलता रहता है। शास्त्रकारोंका निश्चय है कि यह उत्थान या पतन यादृच्छिक (अकारण) नहीं, किन्तु सकारण ही होता है। उत्थानका कारण उपस्थित होने पर उन्नति और पतनका कारण उपस्थित होनेपर पतन अवश्य होगा। इतना भी अवश्य स्मरण रहे कि इस उत्थान वा पतनका कारण क्रिया ही होती है। यह सम्पूर्ण संसार क्रिया-शक्तिका विजृंभण-मात्र है। बस, जो क्रिया पतन नहीं होने देती—स्वरूपको स्थिर रखती हुई उन्नतिकी ओर बढ़ाती है, वही 'धर्म' कहलानेके योग्य है। सुतरां स्वरूप-रक्षा ही धर्मका एकमात्र उद्देश्य है। इसके विपरीत जिस क्रियासे पतन होता है—जो क्रिया वस्तुके स्वरूपको नष्ट कर देने वाली है, वही 'अधर्म' कही जाती है। इसलिये उसका दूसरा नाम है 'पातक'—अर्थात् पतनका (गिरने का) कारण।

ये 'धर्म' और 'अधर्म' शब्द सब वस्तुओंके सम्बन्धमें व्यवहृत हो सकते हैं। उदाहरणके लिए समझिये कि जिन क्रियाओंके द्वारा वृक्ष हरा-भरा रहे—पुष्पित और फलित होनेके उन्मुख रहे, वे क्रियाएं वृक्षके सम्बन्धमें 'धर्म' होंगी—चाहे वे वृक्षकी स्वयं शक्तिसे उत्पन्न हों या आगन्तुक पदार्थों के सम्बन्धसे उत्पन्न हुई हों। इसके विपरीत जिनके द्वारा वृक्ष अपना वृक्षत्व छोड़कर स्थाणु (ठूंठ) के रूपमें चला जाय, वे क्रियाएं उसके सम्बन्धमें 'अधर्म' होंगी। किन्तु जहां इतर जड़ पदार्थ वा क्षुद्र प्राणी केवल स्वाभाविक वा अन्यकृत क्रियाचक्रके अधीन उत्थान या पतनके प्रवाहमें उछलते और गोते लगाते हैं, वहां ज्ञान-प्रधान पुरुष-जाति स्वाभाविक क्रियाचक्र पर अपना अधिकार जमाती हुई अपनेको पतित होनेसे रोककर उन्नतिकी ओर प्रवृत्त हो सकती है। अतएव मनुष्यको धर्म और अधर्मका उपदेश शास्त्र-द्वारा किया जाता है। शास्त्र हमें बताता है कि अमुक क्रियाके करनेसे तुम अपने स्वरूपमें स्थित रहते हुए उन्नतिकी ओर बढ़ सकोगे, अतएव यह तुम्हारे पक्षमें 'धर्म' है, और अमुक क्रियासे तुम स्वरूपसे पतित हो जाओगे, अतः यह तुम्हारे पक्षमें 'अधर्म' है। विचारशील पाठक स्वयं विचार सकेंगे कि उत्थान और पतनमें अपेक्षाकृत अवांतर-भेद बहुत हैं। अतएव सामान्य-विशेष-भावसे धर्मके भी अवांतर-भेद बहुत हो जाते हैं। जो क्रिया मनुष्यत्व-सामान्यके उपयोगी है—जिस कार्यके करने में मनुष्यकी मनुष्यतामें कोई बाधा नहीं होती, प्रत्युत मनुष्यत्वके उच्चकोटिकी ओर ले जाने वाली जो क्रिया हो, वह मनुष्यके पक्षमें सामान्यधर्म कही जायगी, किन्तु जो काम करनेसे मनुष्य मनुष्यतासे पतित माना जा सकता है, वह मनुष्य-सामान्यके पक्षमें अधर्म होगा। पूर्वोक्त सामान्य-धर्मका परिपालन करते हुए भी—मनुष्यत्वमें कोई बाधा न होते हुए भी—जो क्रिया ब्राह्मणत्वमें बाधक होगी, जिस क्रियाके द्वारा ब्राह्मणकी मूलभूत ज्ञान-शक्ति पर आघात होगा, वह ब्राह्मणके पक्षमें 'अधर्म' होगी। किन्तु ब्राह्मणोचित शक्तियोंका विकास जिसके द्वारा हो सके, वह ब्राह्मणोंका 'धर्म' होगा। यह धर्म विशेष-धर्म या ब्राह्मण-धर्म कहा जायगा। इस विशेष-धर्मके सम्बन्धमें यह भी जानना अत्यावश्यक होगा कि जो क्रिया ज्ञान-शक्तिके सम्बन्धमें परम उपकार करती हुई भी क्षत्रियत्वकी मूलभूत पराक्रम-शक्ति पर आघात पहुंचाने वाली होगी, वह ब्राह्मणोंका धर्म होते हुए भी क्षत्रियोंके पक्षमें अधर्म कही जायगी। उनकी शक्ति का विकास जिसके द्वारा हो सके, वह उनका धर्म होगा। इस प्रकार प्रतिजाति, प्रतिश्रेणी, प्रतिकुल और प्रति-व्यक्ति विशेष-धर्मके अनन्त भेद होंगे, जिनका विस्तार करने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। हां, इतना और स्मरण करा देना आवश्यक है कि धर्मके विचारमें वही उन्नति उन्नति कही जाती है जो भविष्यमें पतनका कारण न हो। जहां केवल तात्कालिक उन्नतिकी चमक—किन्तु भविष्यत्में अवनतिका घोर अंधकार हो, उसे यहां उन्नति नहीं कहा जा सकता। वह तो पतनका पूर्वरूपमात्र है और पतनके दुःखको बहुत अधिक कर देने वाली है। वर्तमानमें चाहे कुछ कष्ट भी सहना पड़े, किन्तु परिणाम अमृतमय हो, वही सच्ची उन्नति है। उसी को शास्त्रोंमें 'श्रेय' कहते हैं। केवल परलोक ही नहीं, इस लोककी भी स्थिर उन्नति धर्म-के ही अधीन है। शास्त्रकार भी धर्मके निरूपणमें यही विश्वास दिलाते हैं—

"लोकयात्रार्थमेवेह धर्मस्य नियमः कृतः ।
उभयत्र सुखोदर्क इह चैव परत्र च ॥"

—महाभारत अनुशासन-पर्व अध्याय २६५

अर्थात् लोकस्थितिके निर्वाहके लिए ही धर्मका नियम किया गया है। वह धर्म इहलोक और परलोकमें भी परिणाममें सुख देने वाला होता है। [क्रमशः]

स्वातन्त्र्य

[ले०— श्री प्रो० बलजिन्नाथजी पण्डित शास्त्री एम. ए. एम. ओ. एल.]

उपसंहार

श्रीस्वाध्यायके गतांकोंमे स्वतन्त्रताके दोनों प्रकारोंका वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया। दोनोंके उपाय भी बता दिये गये। अब दोनोंकी तुलनात्मक विवेचना बता देनी है। व्यावहारिक स्वतन्त्रता अधिक आवश्यक है, या कि पारमार्थिक ? दोनोंमेंसे किसके लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए ? इस पर ईशावास्योपनिषद्में स्पष्टरूपमें कहा है—

अन्धं तमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते,
ततो भूय इव ते तमो य विद्यायां रताः।
विद्यांचाविद्यां च यस्तद् वेदोभयं सह,
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

अर्थ—जो लोग अविद्याकी उपासना करते हैं, वे घोर अन्धकारमें प्रवेश करते हैं। जो फिर विद्याकी ही उपासना करते हैं, वे इससे भी भयंकर घोरतर अन्धकारमें प्रवेश करते हैं। जो विद्याको और अविद्याको दोनोंको जानता है, वही अविद्यासे मृत्युका निवारण करके विद्यासे अमृतको प्राप्त करता है। धर्म अर्थ कामकी प्राप्ति सिखाने वाले शास्त्रोंको अर्थात् व्यावहारिक स्वतन्त्रताके शास्त्रोंको उपनिषदोंमें अविद्या कहते हैं, और अक्षर पर-ब्रह्मको समझाने वाले अर्थात् पारमार्थिक स्वतन्त्रताके शास्त्रोंको विद्या कहते हैं। उपनिषदोंमें ऋक्, साम, यजुः, गाथा, नाराशंसी, इतिहास, पुराण, आथर्वण आंगिरस आदि समस्त शास्त्रोंको अविद्यामें ही गिना है, केवल उपनिषद्-जैसे शास्त्रोंको ही वहां विद्या कहा गया है, मृत्युसे यहां दुःखदायिनी व्यावहारिक परतन्त्रता समझ लेना चाहिए, और अमृतका तात्पर्य अमृतत्व, मुक्ति पूर्ण-स्वातन्त्र्य या पारमार्थिक स्वातन्त्र्य है। इस तरह से इस शास्त्रमें स्पष्टरूपसे बताया है कि दोनों प्रकारकी स्वतन्त्रता परमावश्यक है, एकके बिना दूसरी सुखदायिनी नहीं बन सकती। इसलिए हिन्दु-धर्ममें जो महत्त्व मोक्षको दिया गया है, वही महत्त्व धर्म अर्थ और काम को भी दिया गया है। ये चारों पदार्थ मनुष्य-जीवनके प्रयोजन और फल माने गये हैं। सभी शास्त्रों या सारे संसारके यही चार फल हैं। धर्म आदि तीन अविद्या या व्यावहारिक स्वतन्त्रतामें आ जाते हैं, और मोक्ष ही पारमार्थिक स्वतन्त्रता है। दोनों प्रकारकी स्वतन्त्रता अन्योन्याश्रित है। जिस देशमें अन्न खानेको नहीं, वस्त्र पहननेको नहीं, जीवन की आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिए कोई साधन नहीं, वहांके लोग कभी भी योगी नहीं बन सकते। जिस मनुष्य का पेट भीतरसे रो रहा हो, हाथ-पैर सर्दीसे कांप रहे हों, शरीर व्याधियोंसे पीड़ित हो, बाल-बच्चे अन्नके लिए तरसते हों, वह मनुष्य पारमार्थिक स्वतन्त्रताको ढूंढने लगे, तो मान लीजिए कि विन्ध्याचलको शिर पर उठाये समुद्र में तैरना चाहता है। जैसी व्यावहारिक परतन्त्रतामें वह फँसा हुआ है, वैसी दशामें पूजा-पाठ आदि बाह्य साधन भी सम्भव नहीं, ध्यान धारणा आदि अन्तरंग उपायोंकी तो बात ही नहीं। इसलिए व्यावहारिक स्वतन्त्रताके बिना पारमार्थिक स्वतन्त्रताको ढूंढना आकाशके फूलोंको चुननेके यत्नके समान व्यर्थ है। इतना ही नहीं, इस प्रकार प्रयत्न करने वाला मनुष्य उभयतो भ्रष्ट हो जाता है। पारमार्थिक स्वातन्त्र्य तो स्वप्नमें भी नहीं मिलता, पर व्यावहारिक स्वातन्त्र्यसे भी पूरी तरह हाथ धोने पड़ते हैं। फल इसका होता है घोर पतन। यही बात एक व्यक्तिके लिए जितनी सत्य है, उतनी ही एक राष्ट्रके लिए, तथा उस राष्ट्रके शासन के लिए सत्य है। तो मनुष्य और राष्ट्रका पहिला कर्त्तव्य है, कि व्यावहारिक स्वातन्त्र्यके योगक्षेमका प्रबन्ध करे। समर्थ स्वामी रामदासजीका भी यही उपदेश था, कि "प्रपंच का सुधार करके परमार्थकी चिन्ता करो।" उपनिषद्ने भी यही कहा है, कि पहिले अविद्याकी उपासना करो। अर्वाचीन कालमें भारतवर्षने व्यावहारिक स्वातन्त्र्यकी ओर ध्यान नहीं दिया, पारमार्थिक स्वातन्त्र्यके प्रचारक बड़े बड़े सिद्ध, सोमानन्द, उत्पलदेव, अभिनवगुप्त, शंकराचार्य, रामानुज आदि अनेकों ही महापुरुष भारतवर्षने उत्पन्न किये, परन्तु व्यावहारिक स्वातन्त्र्यका उपासक इस युगमें एक भी इस

देशमें प्रकट नहीं हुआ। यही कारण है कि शताब्दियों तक भारतवर्ष व्यावहारिक परतन्त्रताके कष्ट भोगता रहा। यदि इस युगमें व्यावहारिक क्षेत्रमें एक भी शङ्कराचार्य उतर आता, तो भारतकी यह दशा न होती। व्यावहारिक स्वातन्त्र्यको खोकर हम पारमार्थिक स्वातन्त्र्यके भी पात्र नहीं रहे। काम, क्रोध, लोभ, स्वार्थ आदि परतन्त्रताओंका घर ही तो हमारा देश बन गया है। सौभाग्यसे आधुनिक युग में एक महान् व्यक्तिका जीवन व्यावहारिक-स्वातन्त्र्यकी ओर लग गया, तो कुछ ही वर्षोंके भीतर भारतने राजनैतिक स्वातन्त्र्य प्राप्त कर लिया। अब आशा ऐसी है, कि चार पांच वर्षके समयमें हमारा देश आर्थिक पारतन्त्र्यसे भी छूट जायगा। इतनेमें अन्य प्रकारकी व्यावहारिक परतन्त्रताएं भी नष्ट हो जायेंगी। तब हम लोग काली लक्ष्मी और सरस्वतीके अनुग्रहके पात्र बनकर पारमार्थिक स्वातन्त्र्यके लिए प्रयत्न करनेके पात्र बनकर अधिकारी बनेंगे। यह हम मान नहीं सकते, कि अभिनवगुप्त और शंकर जैसे सिद्ध व्यावहारिक स्वातन्त्र्यके इस महत्वको समझ नहीं सकते थे। तो वे यदि इस विषय पर मौन करते रहे, तो इसका यह कारण है, कि उस समय भारत स्वतन्त्र था। भारतने तब तक पराधीनता का अनुभव ही नहीं किया था। जो भी विदेशी भारतमें आये भी थे, वे झट भारतीय बन गये थे। इसलिए व्यावहारिक पराधीनताकी कोई भी बड़ी समस्या उस समय भारतके सामने नहीं थी। यही कारण है कि उस समयके नेताओंने व्यवहारकी ओर ध्यान न देकर केवल परमार्थ को ही चिन्ता की। अब ऐसी बात नहीं, अब हमारी स्वतन्त्रताका उदय हुआ, यह उदय एक सुचिर उदय होगा, इस उदयका स्यात् अस्त ही न होगा। अनुमानसे तो यही जाना जाता है। आगे परमेश्वरकी परमेश्वरता बलवती है। हमारा उदय और इस उदयका प्रकार भी परमेश्वरताका ही विलास है। अस्तु, अब हमने दोनों प्रकारकी परतन्त्रताके दुःखोंका पर्याप्त अनुभव कर लिया, अब हम सीख गये, कि पारमार्थिक स्वातन्त्र्यके साथ व्यावहारिक स्वातन्त्र्य कितना आवश्यक है।

इस समय सारा संसार व्यावहारिक स्वातन्त्र्यका महत्त्व जानता है। सभी राष्ट्र स्वतन्त्र रहनेका भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। संसारके बड़े राष्ट्रोंको ही ले लीजिये। रूस और अमेरिका इस समय दो विशाल स्वतन्त्र राष्ट्र हैं। अनुग्रह और निग्रहकी शक्ति दोनोंमें पर्याप्त है। राष्ट्र-काली राष्ट्र-लक्ष्मी और राष्ट्र-सरस्वतीकी कृपाके पात्र दोनों राष्ट्र बने हुए हैं। परन्तु इतना होते हुए भी दोनों अशान्त हैं, दोनों दुःखी हैं, दोनों भयभीत हैं, ऐसा क्यों? केवल इसीलिए, कि कोई व्यावहारिक स्वतन्त्रता पूर्ण सुख नहीं दे सकती। पूर्णसुखकी प्राप्तिके लिए मनुष्यको व्यवहारमें स्वतन्त्र होकर परमार्थको ढूंढना चाहिए। व्यवहारमें सफल होकर भी काम क्रोध लोभ आदि महाराक्षस दुःख देते ही रहते हैं। जब तक इनसे स्वातन्त्र्य न मिले, तब तक शांति कहां? राष्ट्र भी जब तक पारमार्थिक स्वातन्त्र्यकी उपासना न करे, तब तक उसे सुख और शान्ति मिल ही नहीं सकती। व्यवहार उपाय है, और परमार्थ उपेय है। उपाय के बिना उपेयके दर्शन नहीं हो सकते, प्राप्तिकी तो बात ही नहीं। परन्तु उपायको पाकर यदि कोई उपेयको न ढूंढे तो उसे विद्वान् लोग मूर्ख ही कहेंगे। अन्न उपाय है, और भूखकी निवृत्ति उपेय है। मनुष्य अन्न इकट्ठा करे, पर भूखके समय कुछ खाये नहीं, तो उसे मूर्ख नहीं तो और क्या कहेंगे। उपाय यदि उपायके लिए ही हो, तो मान लीजिये, कि कृपणके धनकी तरह व्यर्थ है। कृपणका धन धनके लिए ही होता है, दान तथा भोगके लिए नहीं। इसी प्रकार व्यावहारिक स्वतन्त्रता तब तक व्यर्थ है, जब तक उसका उपयोग पारमार्थिक स्वतन्त्रताको ढूंढनेमें न किया जाय। तो पारमार्थिक स्वतन्त्रता ही मनुष्य जीवनका अन्तिम लक्ष्य है। यदि व्यावहारिक स्वतन्त्रताकी खोज करनी है, तो इसी पारमार्थिक स्वतन्त्रताके लिये। प्राचीन कालमें जब हम व्यावहारिक-दृष्टिसे स्वतन्त्र थे, तो रूस और अमेरिकाकी तरह संसारको अशान्त बनानेकी चेष्टा नहीं किया करते थे, हमारा व्रत ही जगत्का कल्याण करना था, तभी तो हम आर्य कहलाते थे। अब हम फिरसे स्वतन्त्र हो गये हैं, प्राचीन आर्यत्व हमारे मस्तिष्कमें फिरसे जागृत होने लगा है। भविष्यका चित्र हृदयके नेत्रोंके सामने ऐसा दीख पड़ता है, कि थोड़े ही वर्षोंमें हम व्यवहार-पक्षमें पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त करके पारमार्थिक स्वतन्त्रताकी ओर अग्रसर हो जायेंगे, और अनन्त क्लेशोंसे पीड़ित जगत्को पहिलेकी तरह पूर्ण स्वातन्त्र्य-रूपी कल्याणका मार्ग दिखाते रहेंगे।

इस प्रकार पूरी तरह आर्य बनकर समस्त जगत्को आर्य बनाना हमारा राष्ट्र-व्रत है। हमारे नेतृत्वमें सारा जगत् दोनों प्रकारके स्वातन्त्र्यकी ओर अग्रसर होने लगे, यही हमारे "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" इस माटोका तात्पर्य है। अस्तु, अब यह बात स्पष्ट हो गई है कि व्यावहारिक और पारमार्थिक दोनों प्रकारकी स्वतन्त्रता ही मनुष्य-जीवनका फल पानेके लिए आवश्यक हैं। दोनों प्रकार एक-दूसरे पर आश्रित हैं। यह दोनों प्रकारकी स्वतन्त्रता ही मनुष्य-जीवनका सार है। उसी मनुष्यको मनुष्य कहा जा सकता है, जो दोनों प्रकार की स्वतन्त्रताके लिए प्रयत्न करता है। अन्यथा वह एक बुद्धिमान् पशु है। तो स्वतन्त्रता ही वास्तविक मनुष्यता है। मनुष्यको व्यावहारिक स्वातन्त्र्य द्वारा सांसारिक संकटों से मुक्ति प्राप्त करनी चाहिये। अपने शरीरको खूब स्वस्थ और शक्तिशाली बनाना चाहिये। यही स्वातन्त्र्यकी पहिली सीढ़ी है। शरीरके अनन्तर मन और बुद्धिका स्थान है। मनके मलोंको अर्थात् काम क्रोध लोभ आदिको धो डालने का प्रयत्न करना चाहिये। विद्याका अभ्यास करके मनकी मनन-शक्तिका खूब विकास करके अपनी बुद्धिको विशाल बनाना चाहिए। शरीर मन और बुद्धिको स्वस्थ, शुद्ध और विशाल बनाना, तथा धन-धान्यमें उन्नति करके खूब ऐश्वर्यवान् बनना चाहिए। ऐश्वर्यसे जीवनकी समस्त आवश्यकताओंको पूरा करना चाहिये। अपने कुटुम्बको भी स्वस्थ, शुद्ध और बुद्धिमान् बनाना चाहिए। संसारके सभी भोगोंका यथोचित भोग करना चाहिये। विषयोंका भोग करते हुए विषयोंकी तृष्णाको मिटाकर अपनी विद्या तथा अपने विवेकके बलसे समझ लेना चाहिये, कि ये विषय क्षणिक हैं, निःसार होते हुए अन्त में दुःखदायी हैं। तब शम-दम यम-नियम पूजा-पाठ आदिका अभ्यास करते हुए अपने अन्तःकरणको पवित्र बनाना चाहिये। इतना कुछ होने पर मनुष्यको सद्गुरुकी उपासना द्वारा वास्तविक स्वातन्त्र्यके संसारमें प्रवेश करना चाहिए। इस प्रकार धीरे-धीरे अभ्याससे मनुष्यके लिए सारा संसार ही स्वातन्त्र्यमय बन जाता है। मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूपको पहिचान कर समस्त संसारको संवित् रूप ही समझता है। सारे संसारको अपना आप ही समझता है। अपना आप तो संवित् स्वरूप है। शुद्ध संवित् ही पूर्ण स्वातन्त्र्य है। यही पूर्ण आनन्द है। इस स्वातन्त्र्यके संसारमें सब आनन्द ही है। सुख दुःख भी आनन्द ही है। जो कुछ है आनन्दके अतिरिक्त कुछ नहीं। किसी वस्तुका अभाव भी आनन्द ही है। यहां सब कुछ आत्मा ही है। आत्मा शुद्ध प्रकाश है, तो सब कुछ शुद्ध प्रकाश ही है। आत्मा विमर्शरूप है, तो सब कुछ विमर्शरूप है। तो इस दशामें मनुष्यको प्रत्येक वस्तु

[शेष पृष्ठ २६ पर]

श्रीराष्ट्रालोकावलोकनम्

[अनन्तश्रीविभूषित महामहिम श्रीमदमृतवाग्भवाचार्यपादप्रणीत 'श्रीराष्ट्रालोक' ग्रन्थरत्नका हिन्दी-विवेचन]

(अवलोकक :—श्री रमानन्द सारस्वत शास्त्री ज्योतिषाचार्य)

[श्रीस्वाध्यायके वर्ष १२ अङ्क १ से आगे]

श्रीराष्ट्रालोकाऽवलोकन करते हुए 'श्रीस्वाध्याय'के गतांकोंमें लिखा जा चुका है कि 'श्रीराष्ट्रालोक' का किन परिस्थितियोंमें निर्माण एवं किस प्रकार भारतीय आर्ष-साहित्य-शैलीसे प्रणयन हुआ है । किसी भी सूत्र-ग्रन्थ के पीछे एक विशिष्ट उद्देश्य एवं विचारधारा रहती है, जिसकी छाप उस ग्रन्थमें सर्वत्र पदे-पदे दिखलाई पड़ती है। और यदि वह वस्तुतः शाश्वत है तो वह कृति 'सत्साहित्य' में परिगणनीय बनती है। मङ्गल-श्लोकसे लेकर अन्तिम श्लोक तक प्रकृत-ग्रन्थमें सर्वत्र राष्ट्र-राष्ट्रिय, अराष्ट्रिय, स्वातन्त्र्य, पारतन्त्र्य, प्रभृति विषयोंका मर्मस्पर्श करते हुए "सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्" सूक्तिके अनुसार राष्ट्र दृष्टिसे आत्म-तत्वको व्यावहारिक किया गया है । इससे पूर्व राष्ट्र एवं राष्ट्रिय पुरुषोंके लक्षणोंपर प्रकाश डाला जा चुका है। साथ ही यह भी प्रतिपादित किया जा चुका है कि वास्तवमें राष्ट्रपर किनका अधिकार होता है कौन राष्ट्रके सच्चे भक्त होते हैं एवं तात्विक-दृष्ट्या राष्ट्रका कैसा स्वरूप है। अब अगली कारिकामें स्वतन्त्र एवं सशक्त राष्ट्र ही सुख सुविधाप्रद सिद्ध होता है। इसका वर्णन किया गया है। सम्बन्धित कारिकाद्वयी इस प्रकार हैं —

"पुमर्थ-साधनं तद्वत् पुमर्थ-फलदायकम् ।
यदि स्वतन्त्रं स्वं राष्ट्रं नाऽन्यथा मङ्गलप्रदम् ॥६॥
यस्य राष्ट्रस्य कोपो वा प्रसादो वा निरर्थकः ।
तद्राष्ट्रमवमन्यन्ते पतिं षण्ढं यथा स्त्रियः ॥७॥"

यद्यपि मूल-ग्रन्थमें दोनों कारिकाएँ पृथक् पृथक् हैं किंतु अवलोकनसे दोनोंमें इतना भाव-साम्य लगता है कि इन्हें एक ही मानना चाहिए। उपर्युक्त कारिकाका अर्थ है - यदि अपना राष्ट्र स्वतन्त्र हो तो वही चारों पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष,) का साधन एवं प्राप्ति तथा मङ्गलप्रद होता है नहीं तो नहीं ॥६॥ तथा जिस राष्ट्रकी प्रसन्नता और अप्रसन्नताका कोई मूल्य नहीं हो वह राष्ट्रालोकमें उसी प्रकार तिरस्कृत होता है जिस प्रकार स्त्रियों के द्वारा षण्ढ (नपुंसक) पति ॥७॥" तात्पर्य यही है कि स्वतन्त्र और सबल राष्ट्र ही सुख-शांति-प्रद हो सकता है, स्वतन्त्र राष्ट्र भी यदि निर्बल हो तो नपुंसक पतिके समान तिरस्कारको प्राप्त होता है ।

उक्त कारिकाका अवलोकन करने पर पता लगता है कि स्वतन्त्र राष्ट्रमें ही चारों पुरुषार्थोंका साधन एवं उनके फलकी प्राप्ति होती है । साधारणतया विचार करने पर ऐसा तो लगता है कि इस श्लोकमें सामान्य रूपसे एक अप्रासंगिक बात आ गई है क्योंकि पुरुषार्थ चतुष्टयमें 'मोक्ष'का साधन वैयक्तिक रूपेण होता है और उसी क्रमसे अर्थ, काम, धर्मादिका साधन नैष्ठिक पुरुष तो चाहे जैसी परिस्थिति हो करते ही हैं, फिर इसमें स्वतन्त्र और परतन्त्रका प्रश्न ही क्या ? फिर सुख दुःख एवं भावाभावकी कल्पना भी कल्पना ही है। वस्तुतः ये वस्तुएं ही कुछ और हैं। तथा जो 'मोक्ष 'एवं 'धर्म' को मानते ही नहीं या विश्वबन्धुत्व मानते हैं उनके लिए तो यह परिभाषा सर्वथा संकीर्ण-विचारमयी प्रतीत होगी इत्यादि और भी शंकायें हो सकती हैं। परन्तु यदि थोड़ा गम्भीर दृष्टिसे विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि ये शंकायें स्वतः निर्मूल हैं। वास्तविक बात तो यह

है कि जिन लोगोंकी एक ही संस्कृति या तुल्य संस्कृति है उन्हींको मिलाकर तो राष्ट्र बनता है। अब उस संस्कृतिका विकास उसी स्थितिमें सम्भव है, जब उन व्यक्तियोंके हाथों अपना स्वयंका शासन हो। यदि किसी भिन्न विचारधारा वाले व्यक्तियोंका शासन होगा तो निश्चय है कि शासकवर्ग शासितों पर अपनी विचारधारा बलात् थोपें—और इस विचार-वैषम्यका अर्थ है परस्पर घृणा और द्वेषका प्रादुर्भाव । साथ ही जब घोर वैमनस्य हो तो सुख शांति एवं मङ्गल कैसे हो सकता है ? इसके अतिरिक्त यद्यपि धर्म, मोक्ष, आदि वस्तु वैयक्तिक हैं, किन्तु कुछ विरले ही ऐसे पुरुष नैष्ठिक निकलते हैं जो सब परिस्थितियोंमें दृढ़ रहते हैं, यह सर्व-सामान्य नियम न तो हो ही सकता है और न है ही। इसके साथ ही जब आध्यात्मिक जगत्में विचरण किया जाय तब भले ही भावाभाव कल्पित प्रतीत हों--पर वास्तविक भूमिमें आते ही राष्ट्र की सारी व्यवस्थाओंमें कौन सी वस्तु कितनी सहायक है सुस्पष्ट हो जाता है। यदि एक संस्कृतिके समूह पर दूसरी संस्कृतिके समूहका आधिपत्य हो जाय तो वह उसकी सारी विशेषताओं एवं प्रक्रियाओंको बदलनेका उपक्रम प्रारम्भ कर देता है,वह अपनी संस्कृतिकी श्रेष्ठता प्रमाणित करनेके लिए सर्वविध यत्न भी करता है, ऐसी स्थितिमें विजित संस्कृतिका अभ्युदय किस प्रकार संभव है ? इसलिये पुरुषार्थोंका साधन एवं उनका फल उसी स्थितिमें प्राप्त हो सकता है जब अपना राष्ट्र अपने द्वारा ही शासित हो। इस श्लोकका भाव यह भी है कि राष्ट्र-रूपी अपने शरीर (या आत्मा) पर जिसका अधिकार नहीं है जिस व्यक्तिके न अपने विचार हैं, न सिद्धांत हैं, या जो केवल इन्द्रियोंका दास है वह व्यक्ति न तो धर्मका अर्जन कर सकता है, न अर्थका (क्योंकि शरीर वशवर्ती न हो तो उपार्जनके साधन किस प्रकार जुट सकते हैं) और न भली भाँति काम का: फिर मोक्ष तो दूरकी वस्तु है, अतः संयमहीन पुरुष, न पुरुषार्थोंको जुटा सकते हैं न पा सकते हैं फिर वे सुखी कैसे हों ? अर्थात् सुखी होनेके लिए मनुष्यको 'स्वतन्त्र' (अपने में पूर्ण अधिकार युक्त) होना आवश्यक है। इसी प्रकार व्यवहारमें सारे राष्ट्र पर राष्ट्रियों का अधिकार होने पर ही वे धर्म अर्थात् अपनी बौद्धिक नैतिक चारित्रिक समुन्नति, इसी प्रकार अर्थ (व्यापार, निर्माण, सुरक्षा) एवं काम (राष्ट्रकी विविध योजनाएं कला आदि) तथा मोक्ष (सब प्रकारसे राष्ट्रको आत्म-निर्भर) अतएव सर्वशक्तिसम्पन्न बनानेका यत्न कर सकते हैं, एवं बना भी सकते हैं। परिणामतः राष्ट्रका सर्वप्रथम स्वतन्त्र होना आवश्यक है। दूसरी बात स्वतन्त्र होनेके साथ ही उसे सशक्त होनेकी भी है। क्योंकि अशक्त राष्ट्रमें न तो राष्ट्रिय ही सुख प्राप्त कर सकते हैं, न वही स्थायी रह सकता है। अतः कारिकामें बतलाया गया है कि शक्तिशाली राष्ट्र ही जिनकी मैत्री या विरोधका परिणाम भी निकलता हो प्रतिष्ठा पाते हैं निर्बल राष्ट्र तो बस नपुंसक पतियोंके तुल्य अवहेलना या तिरस्कार ही प्राप्त करते हैं। अतएव यह आवश्यक है कि राष्ट्रिय पुरुष अपने राष्ट्रको स्वतन्त्र और शक्तिसम्पन्न बनायें। तभी उस राष्ट्रका कल्याण हो सकता है। इसके अतिरिक्त जो 'विश्वबन्धुत्व' की कल्पना करते हों उन्हें 'विश्व'को ही राष्ट्र मानकर व्यक्तिसे राष्ट्र और राष्ट्रसे विश्वका उत्तरोत्तर समन्वयात्मक सामञ्जस्य मानना चाहिए जिसकी परिणति है :—

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'।

'एवमवलोकने ऽस्मिन् हि स्वतन्त्रं शक्तिसंयुतम्।
स्वं राष्ट्रं सौख्यदं लोके भवतीत्यवलोकितम्॥'

—

सूक्ति सुधा

लख लोयन कोयन भरे, अंसुवा कहत बनै न।
भर मुक्ता पंकज पुटन, ललक लुटावत मैन॥
लख पूरन विधु वदन प्रिय, हिय कस उमग बढ़ै न।
पूर चन्द्र लख जलधि ज्यों, आवत ज्वार रुकै न॥
लख उरोज कंचुकि कसन, उपजे हिय अनुमान।
मनु उदयाचल ओट तज, निकसत भानु विहान॥
सूरज दूरज, ससि सरुज, सरसिज सांझ मलान।
विरच्यौ विधि कौ है सकै प्रिय मुख कौ उपमान॥
ससि सुभाल लखि चख जलज, लगैं न कहुं कुम्हिलान।
भ्रुकुटि आड़ दुहुं मध्य विधि, विरची यह जिय जान॥
सुरभित लोचन शशि वदनि, हँसन झपन मुसकान।
अलग अलग सब मांगि हैं, इहां अकेलो प्रान॥

बाली-आदिको धोखेसे मारना (?)

[श्री दीनानाथ शर्मा शास्त्री सारस्वत, विद्यावागीश, विद्याभूषण, विद्यानिधि]

'ब्राह्मण, सावधान' में श्री सम्पूर्णानन्दजी 'भला हम कलिकालके जीव कोई संकल्प निबाह सकते हैं ?' इस भूमिकाको बना कर पुराण-इतिहास पर अधिक्षेप करते हुए लिखते हैं—"स्वयं भगवान्ने बालीको धोखेसे मारा; जरासन्ध, दुर्योधन तथा मुचुकुन्दको धोखेसे मरवाया; फिर हम पामर जीव सत्य पर किस बिरते पर अटक सकते हैं ?"

(१)

इसका उत्तर वैदिक राजनीति द्वारा 'श्रीस्वाध्याय' के गताङ्कोंमें दिया जा चुका है। बालीके विषयमें तो बहुतसे दृष्टिकोण हैं। पहला उसमें उत्तर यह है कि बालीके पास इन्द्रसे दी हुई एक दिव्य माला थी, जिसका सङ्केत—

'शक्रदत्तवरा माला काञ्चनी रत्न-भूषिता।
दधार हरिमुख्यस्य प्राणाँस्तेजः श्रियं च सा'॥
(किष्किन्धा १७।५)

वाल्मीकिरामायणके इस पद्यमें आया है—जिसकी शक्तिसे बाली प्रतिद्वन्द्वीके आधे बलको खींच लिया करता था। भगवान् राम यदि सामने जाकर बालीको मारते; तब इन्द्र और बाली दोनोंकी मर्यादा नष्ट होती। इन्द्रसे दी हुई वरदायक मालाकी स्थितिमें यदि बाली मारा जाता; तो यह इन्द्रका अपमान होता कि—इन्द्रके वरमें शक्ति नहीं; और बालीका भी अपमान होता। दोनों ही भगवद्भक्त थे। इसलिए भगवान् मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामने इन दोनों की ही मान-मर्यादाके रक्षणार्थ अपनी मान-मर्यादाका भङ्ग कर दिया। इसी कारण 'विष्णुसहस्रनाम' में 'अमानी मानदो मान्यः' (८०) यहां विष्णुको भक्तोंकी मान-रक्षा करने वाला बताया है। इसीलिए जब भगवद्भक्त भीष्मने प्रतिज्ञा की थी कि आज मैं श्रीकृष्णसे शस्त्रग्रहण करवाऊँगा; तब भगवान्ने अपने भक्तकी प्रतिज्ञा-पूर्तिके लिए अपनी महाभारतमें शस्त्र न ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञाको तोड़ दिया।

इस प्रकार भगवान्ने रामावतारमें भी इन्द्रकी मर्यादा की पूर्त्यर्थ बालीको छिपकर मारा; और अपने पर दोष ले लिया। कइयोंके मतमें बालीको ब्रह्माका वैसा वर मिला हुआ था जिससे वह प्रतिपक्षीका आधा बल खींच लिया करता था। ब्रह्माका वरदान मिथ्या न हो जाय—इस कारण श्रीरामने बालीको छिपकर मारा। इसमें रहस्य यह है कि बालीके सामने जानेमें यदि श्रीरामका आधा बल क्षीण न होता; तो ब्रह्माका वर मिथ्या हो जाता। यदि ब्रह्माका वर सत्य रहता, और श्रीरामका आधा बल क्षीण हो जाता; तो श्रीरामकी अभगवत्ता (अलौकिक-सामर्थ्यहीनता) सिद्ध होती। दोनोंकी मर्यादा-रक्षणार्थ भगवान्ने छिप कर बाली को मारा, यह यहां एक विशेष प्रयोजन था। इसे धोखा नहीं कहा जा सकता, जैसा कि श्री सम्पूर्णानन्दजीने कहा है। यह उत्तर धार्मिक कोटिमें है। इसे ऐतिहासिक दृष्टिकोण या वास्तविक दृष्टिकोण कहा जावे तो यह अत्युक्ति न होगी।

(२)

इसमें राजनीतिकता भी थी। राजनीतिक दृष्टिकोणमें बाली श्रीरामका रावणसे भी अधिक शत्रु था। यदि श्रीराम सीताको पानेके लिए बालीकी ही शरण लेते; तो श्रीराम को उस राजाके आगे दीनता करनी पड़ती, जो श्रीराम जैसे निगूढ़-मानीके लिए उपयुक्त नहीं थी। सुग्रीवकी भांति उसे आज्ञा देनेका श्रीरामको अधिकार नहीं था। इससे श्रीरामकी मनस्विता पर प्रहार पड़ता। इसके अतिरिक्त यदि बाली सीताको लाकर देता तो रावणको पर-स्त्रीहरणका दण्ड कैसे मिलता? और ऋषियोंकी पीड़ाका प्रतीकार कैसे होता? श्रीरामकी वीरता भी प्रकाशित न होती। यदि सीताके ढूंढनेमें शिथिलता करते हुए बालीको श्रीराम डांटते; तो उसकी रावणके साथ मिल जानेकी आशंका हो जाती, और श्रीरामको बालीके राज्यसे बाहर निकलना पड़ता। तब श्रीरामके एकके स्थानमें दो शत्रु हो जाते। बालीके साथ युद्ध करनेपर श्री रामका बल क्षीण हो जाता, इधर श्रीराम रावणसे घिर जाते। तब सीता प्राप्त ही न

होती। यदि बालीकी रावणको प्रेरणा करनेसे या सन्धिसे सीता लाई जाती, उसका महत्त्व बालीको मिलता। तब 'रामायण' नहीं किन्तु 'बालयन' बनती। इस प्रकार श्रीरामकी बालीके साथ न तो सन्धि ही ठीक होती, और न लड़ाई ही। इसलिए रावण-वध तथा सीताकी प्राप्तिके लिए बालीका मारना ही श्रीरामके लिए आवश्यक था। न तो बालीको छोड़ देना ही ठीक था, न उसे डांटना, और न ही उसे युद्धके लिए ललकारना ही ठीक था। राजनीतिमें धर्मनीतिकी तरह अतिशयित-विशुद्धता तो कभी हो ही नहीं सकती। धर्मनीतिकी भांति राजनीतिके अंतरङ्ग-बहिरङ्ग समान नहीं होते। उसमें तो 'हाथीके दांत खानेके और होते हैं और दिखानेके और'। चाहे कोई ईश्वरावतार हो चाहे मर्यादा-पुरुषोत्तम; उसे राजनीतिक-व्यवहारमें अपना ही लाभ देखना पड़ता है, इससे दूसरेकी हानि भी होगी—यह नहीं देखना पड़ता। राजनीतिके प्रधान लक्ष्य अर्थ और काम ही हुआ करते हैं, धर्म और मोक्ष नहीं। तब सरलता या सत्यताका अनुसरण नहीं करना पड़ता।

फलत: राजनीतिमें रजोगुणका विकास और विस्तार अनिवार्य हुआ करता है। उसमें सात्त्विकताका दर्शन असम्भव होता है। मर्यादा-पुरुषोत्तमने ही राजाओंके लिए यह मर्यादा व्यवस्थापित की है कि राजनीतिको रजोगुणसे अलग सर्वथा नहीं रखा जा सकता। इसी कारण श्रीरामने बालीको भी चाहे जैसे हो, मारना ही था। इसमें हिटलर या स्टालिन आदि भुलाने योग्य नहीं हैं, जिन्होंने अपनी अधिनायतताके लिए अपनेसे मुकाबला करने वाले कितने ही व्यक्तियोंको मरवा डाला। इसमें—

'इन्द्र ! जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियम्।
मायया शाशदानाम्' (ऋ. ७।१०४।२४)
'मायाभिरिन्द्र ! मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः।
(ऋ. १।११।७)

इत्यादि वैदिक-राजनीति पर भी ध्यान दे देना चाहिये। आशा है श्री सम्पूर्णानन्दजीको भी इस राजनीतिक दृष्टिकोण में आपत्ति नहीं होगी।

(३)

अब इस विषय पर धार्मिक और राजनीतिक दृष्टिकोणको छोड़कर तटस्थ ही दृष्टिकोण अवलम्बन किया जाता है—इस ओर भी श्रीसम्पूर्णानन्दजी तथा 'श्रीस्वाध्याय'के पाठकगण ध्यान देंगे। वह यह है कि—श्रीरामने बालीसे युद्ध नहीं करना था, किन्तु उसे दण्डविधान करना था। जीते हुए भाईकी स्त्रीको रख लेने वालेको दण्ड देना राजपुरुषका काम होता है। वह उसे जैसे दण्ड देना चाहे, यह उसकी इच्छा पर है। कभी अपराधीको बिजलीसे कनैक्शन करने वाली कुर्सी पर भी बैठाकर बिजली के बटन दबानेसे भी मार दिया जाता है। इस प्रकार क्षत्रिय-द्वारा शिकारमें शिकारको सदा सामने ही निशाना नहीं लगाना पड़ता, किन्तु वृक्षके व्यवधानमें भी। कभी शत्रुको शत्रु-द्वारा ही मरवाना पड़ता है, परन्तु वहां भगवान् सबका ही हित सोचते हैं। भगवान् जो कि मृत्यु ते हैं—उसमें भी कुछ हित ही होता है। इस विषय में प्रकृतोपयुक्त रामायणीय पद्य भी देख लेने चाहियें—

'इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैलवनकानना।'
(४।१८।६)
तां पालयति धर्मात्मा भरतः सत्यवान् ऋजुः (७)
तस्य धर्मकृतादेशा वयमन्ये च पार्थिवाः।
चरामो वसुधां कृत्स्नां धर्मसन्तानमिच्छवः। (६)
त्वं तु संक्लिष्ट-धर्मश्च कर्मणा च विगर्हितः।
कामतन्त्रप्रधानश्च न स्थितो राजवर्त्मनि (१२)
तदेतत् कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया हतः।
भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम्।
(१८)
वागुराभिश्च पाशैश्च कूटैश्च विविधैर्नराः (३७)
प्रतिच्छन्नाश्च दृश्याश्च गृह्णन्ति सुबहून् मृगान्।
प्रधावितान् वा विस्रब्धान् वित्रस्तान् अति-
विष्ठितान् (३८)
विध्यन्ति विमुखाँश्चापि न च दोषोत्र विद्यते(३६)
यान्ति राजर्षयश्चात्र मृगयां धर्मकोविदाः।
तस्मात् त्वं निहतो युद्धे मया बाणेन वानर !
'अयुध्यन् प्रतियुध्यन् वा यस्मात् शाखामृगो
ह्यसि' (१८।४१)

फलतः धार्मिक दृष्टिकोण लिया जावे, अथवा राज-नीतिक किंवा तटस्थ दृष्टिकोण—बालिवध उपालम्भ योग्य नहीं ठहरता। दुर्योधन, जरासन्ध आदिको मारनेमें वही

पूर्व-श्लोक राजनीति ही कारण है कि—

'आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः' (नैषधचरित ५।१०३)

'निकृत्या निकृतिप्रज्ञा हन्तव्या इति निश्चयः।'

'नहि नैकृतिकं हत्वा निकृत्या, पापमुच्यते' (महाभारत वनपर्व ५२।२२)

अर्थात् मायावीको मायासे मारनेमें पाप नहीं। कुटिलोंमें सरल व्यवहार नीति-विरुद्ध होता है। यह स्मरण रखनेकी बात है कि—

'व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधान् (अकुटिलान्)
असंवृताङ्गान् निशिता इवेषवः' (किरातार्जुनीय १।३०)

मायावीसे माया-व्यवहार न करने पर पराभव ही प्राप्त होता है। कुटिल लोग सरल लोगोंको इस प्रकार मार देते हैं, जैसे नंगे पुरुषोंको बाण।

आगे श्रीसम्पूर्णानन्दजी लिखते हैं—'मैं मानता हूं कि—सद्-वक्तासे कथा सुनकर उत्तम अधिकारी उनमेंसे उपदेश-ग्रहण कर सकता है' जब वे ऐसा मानते हैं तब वे भी पुराण-इतिहास वा देवताओंमें बलाद् दोष क्यों थोपते हैं? व्यवस्था करनेमें बुद्धिको कुछ कष्टमें डालना पड़ता ही है। हों भगवान्‌के भक्त, और अपने भगवान्‌को डुबो दें—यह कैसे सम्भव है? वस्तुतः रहस्य परोक्षवृत्ति रहा करता है। वह धैर्यसे, एकतानतासे और श्रद्धासे प्रतीत होता है, आपाततः नहीं।

'श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः' (गीता ४।३९)

यह भगवान्‌के शब्द भुलाने-योग्य नहीं।

'तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते धर्मं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः' (गीता४।३४)

यह शब्द भी सदा ध्यान देने योग्य हैं कि ज्ञानियों वा तत्त्वदर्शियोंके प्रति नम्रतासे तथा प्रश्नसे रहस्यका ज्ञान हुआ करता है। केवल अपने पर ही सहारा रखना ठीक नहीं, क्योंकि 'ज्ञातसारोपि खल्वेकः सन्दिग्धे कार्यवस्तुनि' (शिशुपालवध २।१२) अकेले व्यक्तिको सन्देह रहा ही करता है।

आगे वे लिखते हैं—'परन्तु उत्तम अधिकारी बहुत थोड़े हैं, और सद्वक्ता उनसे भी थोड़े हैं' यह तो ठीक है, हम भी इसे मानते हैं। आप भी उत्तम अधिकारी बनें। जानते हुए ही 'देवोंकी छीछालेदर, देवताओंको ले डूबे' एतदादिक अभद्र शब्दोंको छोड़ दें। पुरुष यदि निष्पक्ष हो जाय और श्रद्धाको धारण करे, तब—

'श्रद्धया सत्यमाप्यते' (यजुः १९।३०)

'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्' (गीता ४।३९) इस प्रकार कुतर्कियोंसे किये जाते हुए सभी आक्षेपोंका समाधान प्राप्त हो सकता है, क्योंकि—वे आक्षेप या तो अल्प-श्रुततासे होते हैं, या पूर्वापर-प्रकरणके अज्ञानसे, अथवा—पक्षपात कलुषित मनसे कि—जिस भी किसी प्रकारसे हो, पुराणोंका खण्डन किया जावे!

पुराणकारने जो कथा मानुषी-मर्यादाको उल्लंघन करने वाली भी यदि दिखलाई है, तो उसे उस कथाके उपक्रम वा उपसंहारमें अनुकरणीय नहीं दिखलाया। अथवा—उस पर आचरण करनेके लिए हमें बाध्य नहीं किया। जब ऐसा है, तो पुराणोंकी निन्दा क्यों की जाती है? महाभारतमें दुष्ट दुर्योधनकी भी तो वीरता दिखलाई है, साधु युधिष्ठिरकी भी तो द्यूतक्रीड़ा दिखलाई है। साध्वी द्रौपदीके भी तो पांच पति दिखलाये गये हैं। जिसका जैसा चरित्र था, वैसा ही दिखलाया है। तब क्या इतिहास-सम्पादक किसीके इतिहासमें परिवर्तन कर देनेका भी अधिकार रखता है? कभी भी नहीं। हमारे प्राचीन ऐसे नहीं थे कि—वर्णनीयके दोष छिपा लें। दोषोंका न दिखलाना दृश्यकाव्यका विषय है, इतिहासका नहीं॥

—

[शेष पृष्ठ २१ का]

प्रकाश, विमर्शरूप, पूर्ण, समरस, आनन्द-घन ही प्रतीत हो जाता है। इस प्रकारसे संसारको समझना ही चमत्कार है, चमत्कारको ही आनन्द कहते हैं, इसका विशेष निरूपण हमने "आनन्द" पुस्तिकामें किया है, वहीं देखिये, वह पूर्ण आनन्द ही परमेश्वरता है। इसीको स्पन्द कहते हैं। यही मुक्ति है। यही पूर्ण स्वातन्त्र्य है। और यही है, जो कुछ है। शिवमस्तु।

—

पौराणिक कहानी—

पराजय

दैवयोगसे वह द्वादशीका दिन था, और सम्राट् अम्बरीष एकादशीके उपवासकी पारण-क्रिया समाप्त करनेके लिए उद्यत हो रहे थे।

सम्राट् और एकादशीके उपवासका पारण?

एकादशीके उपवासका पारण और सम्राट्?

हाँ, आश्चर्यकी कोई बात नहीं। अम्बरीष सम्राट् थे और सम्राट् भी कैसे? विष्णु भगवान्के परम भक्त, निष्काम भावसे जीवन-पथ पर चलने वाले, निर्भयस्वभावसे धर्माचरण करने वाले। समदर्शी ऐसे थे कि सारी सृष्टिको प्रभुमय समझते थे, न किसीके प्रति द्वेष, न राग, न जीवनके प्रति अनुरक्त रहते थे। न मृत्युके प्रति विरक्त! बड़ेसे बड़े लालचके सामने सदा हिमालय सिद्ध होते थे। उनका यह नियम था कि वह प्रति-एकादशीको उपवास रखते थे और द्वादशीको उसका पारण करते थे।

हां, तो सम्राट् अम्बरीष एकादशीके उपवासकी पारण-क्रिया समाप्त करनेके लिए उद्यत हो ही रहे थे कि सहसा महर्षि दुर्वासा आ पहुंचे। एक तो वे तेजस्वी ब्राह्मण थे, दूसरे महा-तपस्वी। अम्बरीष आनन्दसे प्रफुल्लित हो उठे। उन्होंने श्रद्धा-समन्वित हृदयसे महर्षिका वन्दन और स्वागत सत्कार किया, निर्मल जलसे उनके चरण धोए और फिर उनको एक सुन्दर आसन पर बैठाया।

कुशल प्रश्नादिके उपरान्त अम्बरीषने उभयकर-बद्ध होकर कहा—भगवन्! आज्ञा हो तो एकादशी व्रतका पारण कर लूं। महर्षिने रूक्ष स्वरमें उत्तर दिया—एकादशी व्रत का पारण करने वाले अकेले तुम ही नहीं हो, मैं भी हूं। नदी जाकर स्नानादिसे निवृत्त हो आऊं। तब तक ठहरो।

यह कह कर महर्षि चले गए। अम्बरीष बड़ी व्यग्रतासे उनके लौटनेकी प्रतीक्षा करने लगे, परन्तु वे न लौटे। जब द्वादशी व्यतीत होनेमें अत्यल्प समय शेष रह गया, तब अम्बरीषने घबराकर उपस्थित ब्राह्मणोंसे कहा—"इतना समय व्यतीत हो गया परन्तु महर्षि नहीं लौटे। उनके लौटनेकी सम्भावना भी प्रतीत नहीं होती। इधर द्वादशी समाप्त हुई जा रही है। बताइये ऐसी अवस्थामें मेरा क्या कर्तव्य है?'"

"आप पारण-क्रिया सम्पन्न कर डालिए, ब्राह्मण एक स्वरमें बोले।

"और यदि महर्षि आ पहुँचे और रुष्ट होने लगे तो?" अम्बरीषने प्रश्न किया।

"यह तो एक धार्मिक कृत्य है, यदि आप सम्पन्न कर डालेंगे, तो भला महर्षि रुष्ट क्यों होंगे?" ब्राह्मणों ने उत्तर दिया।

ब्राह्मणोंके कथनका औचित्य धर्मप्राण अम्बरीषके हृदय में प्रविष्ट हो गया। अभी उन्होंने पारण-विधि सम्पन्न कर भगवान्का चरणोदक ग्रहण किया ही था कि महर्षि दुर्वासा आ पहुंचे और मेघ-गम्भीर स्वरमें बोले—"यह दुस्साहस? तूने मेरे आदेशकी अवहेलना की और पारण-विधि पूर्ण कर डाली। क्यों······?" महामुनि दुर्वासा जैसे परम तपस्वी थे, वैसे ही उग्र-क्रोधी। उनका क्रोध जगद्विख्यात था और सहसा भयंकर अभिशापके रूपमें बरस पड़ता था। वे क्रोधावेशमें न उचितका ध्यान रखते थे न अनुचितका, न राजाको समझते थे न रङ्कको, और न पुरुषको देखते थे न स्त्रीको, सभीको एक लाठी-

पूर्व-प्रोक्त राजनीति ही कारण है कि—

'आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः' (नैषधचरित ५।१०३)

'निकृत्या निकृतिप्रज्ञा हन्तव्या इति निश्चयः।'

'नहि नैकृतिकं हत्वा निकृत्या, पापमुच्यते' (महाभारत वनपर्व ५२।२२)

अर्थात् मायावीको मायासे मारनेमें पाप नहीं। कुटिलोंमें सरल व्यवहार नीति-विरुद्ध होता है। यह स्मरण रखनेकी बात है कि—

'व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधान् (अकुटिलान्)
असंवृताङ्गान् निशिता इवेषवः' (किरातार्जुनीय १।३०)

मायावीसे माया-व्यवहार न करने पर पराभव ही प्राप्त होता है। कुटिल लोग सरल लोगोंको इस प्रकार मार देते हैं, जैसे नंगे पुरुषोंको बाण।

आगे श्रीसम्पूर्णानन्दजी लिखते हैं—'मैं मानता हूं कि—सद्-वक्तासे कथा सुनकर उत्तम अधिकारी उनमेंसे उपदेश-ग्रहण कर सकता है' जब वे ऐसा मानते हैं तब वे भी पुराण-इतिहास वा देवताओंमें बलाद् दोष क्यों थोपते हैं? व्यवस्था करनेमें बुद्धिको कुछ कष्टमें डालना पड़ता ही है। हों भगवान्के भक्त, और अपने भगवान्को डुबो दें—यह कैसे सम्भव है? वस्तुतः रहस्य परोक्षवृत्ति रहा करता है। वह धैर्यसे, एकतानतासे और श्रद्धासे प्रतीत होता है, आपाततः नहीं।

'श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः'। (गीता ४।३९)

यह भगवान्के शब्द भुलाने-योग्य नहीं।

'तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते धर्मं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः' (गीता४।३४)

यह शब्द भी सदा ध्यान देने योग्य हैं कि ज्ञानियों वा तत्त्वदर्शियोंके प्रति नम्रतासे तथा प्रश्नसे रहस्यका ज्ञान हुआ करता है। केवल अपने पर ही सहारा रखना ठीक नहीं, क्योंकि 'ज्ञातसारोऽपि खल्वेकः सन्दिग्धे कार्य-वस्तुनि' (शिशुपालवध २।१२) अकेले व्यक्तिको सन्देह रहा ही करता है।

आगे वे लिखते हैं—'परन्तु उत्तम अधिकारी बहुत थोड़े हैं, और सद्वक्ता उनसे भी थोड़े हैं' यह तो ठीक है, हम भी इसे मानते हैं। आप भी उत्तम अधिकारी बनें। जानते हुए ही 'देवोंकी छीछालेदर, देवताओंको ले डूबे' एतदादिक अभद्र शब्दोंको छोड़ दें। पुरुष यदि निष्पक्ष हो जाय और श्रद्धाको धारण करे, तब—

'श्रद्धया सत्यमाप्यते' (यजुः १९।३०)

'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्' (गीता ४।३९) इस प्रकार कुतर्कियोंसे किये जाते हुए सभी आक्षेपोंका समाधान प्राप्त हो सकता है, क्योंकि—वे आक्षेप या तो अल्प-श्रुततासे होते हैं, या पूर्वापर-प्रकरणके अज्ञानसे, अथवा—पक्षपात कलुषित मनसे कि—जिस भी किसी प्रकारसे हो, पुराणोंका खण्डन किया जावे!

पुराणकारने जो कथा मानुषी-मर्यादाको उल्लंघन करने वाली भी यदि दिखलाई है, तो उसे उस कथाके उपक्रम वा उपसंहारमें अनुकरणीय नहीं दिखलाया। अथवा—उस पर आचरण करनेके लिए हमें बाध्य नहीं किया। जब ऐसा है, तो पुराणोंकी निन्दा क्यों की जाती है? महाभारतमें दुष्ट दुर्योधनकी भी तो वीरता दिखलाई है, साधु युधिष्ठिरकी भी तो द्यूतक्रीड़ा दिखलाई है। साध्वी द्रौपदीके भी तो पांच पति दिखलाये गये हैं। जिसका जैसा चरित्र था, वैसा ही दिखलाया है। तब क्या इतिहास-सम्पादक किसीके इतिहासमें परिवर्तन कर देनेका भी अधिकार रखता है? कभी भी नहीं। हमारे प्राचीन ऐसे नहीं थे कि—वर्णनीयके दोष छिपा लें। दोषोंका न दिखलाना दृश्यकाव्यका विषय है, इतिहासका नहीं॥

———

[शेष पृष्ठ २१ का]

प्रकाश, विमर्शरूप, पूर्ण, समरस, आनन्द-घन ही प्रतीत हो जाता है। इस प्रकारसे संसारको समझना ही चमत्कार है, चमत्कारको ही आनन्द कहते हैं, इसका विशेष निरूपण हमने "आनन्द" पुस्तिकामें किया है, वहीं देखिये, वह पूर्ण आनन्द ही परमेश्वरता है। इसीको स्पन्द कहते हैं। यही मुक्ति है। यही पूर्ण स्वातन्त्र्य है। और यही है, जो कुछ है। शिवमस्तु।

———

पौराणिक कहानी—

पराजय

दैवयोगसे वह द्वादशीका दिन था, और सम्राट् अम्बरीष एकादशीके उपवासकी पारण-क्रिया समाप्त करनेके लिए उद्यत हो रहे थे।

सम्राट् और एकादशीके उपवासका पारण ?

एकादशीके उपवासका पारण और सम्राट् ?

हाँ, आश्चर्यकी कोई बात नहीं। अम्बरीष सम्राट् थे और सम्राट् भी कैसे ? विष्णु भगवान्के परम भक्त, निष्काम भावसे जीवन-पथ पर चलने वाले, निर्भयस्वभावसे धर्माचरण करने वाले। समदर्शी ऐसे थे कि सारी सृष्टिको प्रभुमय समझते थे, न किसीके प्रति द्वेष, न राग, न जीवनके प्रति अनुरक्त रहते थे। न मृत्युके प्रति विरक्त! बड़ेसे बड़े लालचके सामने सदा हिमालय सिद्ध होते थे। उनका यह नियम था कि वह प्रति-एकादशीको उपवास रखते थे और द्वादशीको उसका पारण करते थे।

हां, तो सम्राट् अम्बरीष एकादशीके उपवासकी पारण-क्रिया समाप्त करनेके लिए उद्यत हो ही रहे थे कि सहसा महर्षि दुर्वासा आ पहुंचे। एक तो वे तेजस्वी ब्राह्मण थे, दूसरे महा-तपस्वी। अम्बरीष आनन्दसे प्रफुल्लित हो उठे। उन्होंने श्रद्धा-समन्वित हृदयसे महर्षिका वन्दन और स्वागत सत्कार किया, निर्मल जलसे उनके चरण धोए और फिर उनको एक सुन्दर आसन पर बैठाया

कुशल प्रश्नादिके उपरान्त अम्बरीषने उभयकर-बद्ध होकर कहा—भगवन्! आज्ञा हो तो एकादशी व्रतका पारण कर लूं। महर्षिने रूक्ष स्वरमें उत्तर दिया—एकादशी व्रत का पारण करने वाले अकेले तुम ही नहीं हो, मैं भी हूं; नदी जाकर स्नानादिसे निवृत्त हो आऊं। तब तक ठहरो।

यह कह कर महर्षि चले गए। अम्बरीष बड़ी व्यग्रतासे उनके लौटनेकी प्रतीक्षा करने लगे, परन्तु वे न लौटे। जब द्वादशी व्यतीत होनेमें अत्यल्प समय शेष रह गया, तब अम्बरीषने घबराकर उपस्थित ब्राह्मणोंसे कहा—"इतना समय व्यतीत हो गया परन्तु महर्षि नहीं लौटे। उनके लौटनेकी सम्भावना भी प्रतीत नहीं होती; इधर द्वादशी समाप्त हुई जा रही है। बताइये ऐसी अवस्थामें मेरा क्या कर्तव्य है?'"

"आप पारण-क्रिया सम्पन्न कर डालिए, ब्राह्मण एक स्वरमें बोले।

''और यदि महर्षि आ पहुँचे और रुष्ट होने लगे तो?" अम्बरीषने प्रश्न किया।

"यह तो एक धार्मिक कृत्य है, यदि आप सम्पन्न कर डालेंगे, तो भला महर्षि रुष्ट क्यों होंगे?" ब्राह्मणों ने उत्तर दिया।

ब्राह्मणोंके कथनका औचित्य धर्मप्राण अम्बरीषके हृदय में प्रविष्ट हो गया। अभी उन्होंने पारण-विधि सम्पन्न कर भगवान्का चरणोदक ग्रहण किया ही था कि महर्षि दुर्वासा आ पहुंचे और मेघ-गम्भीर स्वरमें बोले—"यह दुस्साहस? तूने मेरे आदेशकी अवहेलना की और पारण-विधि पूर्ण कर डाली। क्यों...... ?" महामुनि दुर्वासा जैसे परम तपस्वी थे, वैसे ही उग्र-क्रोधी। उनका क्रोध जगद्विख्यात था और सहसा भयंकर अभिशापके रूपमें बरस पड़ता था। वे क्रोधावेशमें न उचितका ध्यान रखते थे न अनुचितका, न राजाको समझते थे न रङ्कको, और न पुरुषको देखते थे न स्त्रीको, सभीको एक लाठी-

से हांकते थे। उनके तपका प्रभाव भी इतना उग्र था कि उनका अभिशाप कभी अन्यथा न होता था। अभिशप्त व्यक्ति पलक मारते सर्वनाशकी स्थितिमें जा पहुँचता था, एक बार भोली भाली शकुन्तला अपने प्रियतम दुष्यन्तकी स्मृतिमें ध्यान मग्न थी। उसे पता भी न चला कि महामुनि दुर्वासा कब आ पहुंचे। परन्तु दुर्वासाको वस्तु-स्थिति समझनेकी आवश्यकता ही क्या थी ? उन्होंने क्रोधावेशमें शकुन्तलाको अभिशाप दे ही डाला—'तू जिसके स्मरण में आत्मविस्मृत हो रही है वही तुझे भूल जाएगा। इस अभिशापके फल-स्वरूप दुष्यन्त सचमुच शकुन्तलाको भूल गए और बेचारीको अपार कष्ट सहना पड़ा। यह दूसरी बात है कि यथासमय दुष्यन्तको अपनी भूल पर घोर पश्चात्ताप हुआ और इस पश्चत्तापकी अग्निमें उनका प्रेम शुद्ध कुन्दनके समान चमक उठा। परन्तु इससे क्या दुर्वासा का क्रोध और अभिशाप तो व्यर्थ नहीं गया।

उपस्थित जन महर्षि दुर्वासाके इस अमोघ प्रभावसे भलीभांति परिचित थे, इसलिए वे उनके बदले तेवर देखते हो मारे भयके थरथर कांपने लगे। परन्तु अम्बरीष ने शान्त स्थिर स्वर में उत्तर दिया—'भगवन् ! क्षमा कीजिए, द्वादशी व्यतीत हुई जा रही थी।

अम्बरीषके इस उत्तरमें वह घृताहुति थी जो महर्षिकी क्रोधाग्निको प्रज्वलित करनेमें ही सहायक हुई। उन्होंने गरज कर कहा—"मूर्ख ! इतना भी नहीं जानता। यदि मैं न आता तो प्रलय तक तो द्वादशी व्यतीत हो ही नहीं सकती थी।"

अम्बरीषने विनम्र स्वरमें निवेदन किया "प्रभो ! मैं तो सीधासाधा मनुष्य हूँ। यदि इतनी बात जान सकता तो भला यह अपराध करता ?" परन्तु अम्बरीषकी नम्रता व्यर्थ थी। दुर्वासा उससे प्रभावित होने वाले नहीं थे। वे पूर्वापेक्षया और भी कठोर क्रुद्ध स्वरमें बोले—"अधम पाखण्डी मिथ्यावादी'। उधर अम्बरीष जैसे दुर्वासाके इस भयानक कोपसे परे थे। वे तद्वत् शान्त और स्थिर थे। कदाचित् समझते थे कि महर्षि अपनी क्रोधी प्रवृत्तिके अधीन हैं और अभिशापका पथ अपनाए बिना पश्चात्-पद न होंगे, फिर भी उन्होंने अपने कर्तव्य का पालन किया और महर्षिको शान्त करनेकी भरपूर चेष्टा की। परन्तु परिणाम क्या निकला ? अम्बरीष ज्यों-ज्यों नम्र पड़ते गए दुर्वासा त्यों-त्यों उग्र होते गए और अंतमें दशों दिशाओंको कम्पायमान करते हुए बोल उठे। "मानेगा नहीं ! अच्छा जा, अभी अग्निमें भस्मसात् हो जा।"

बस जैसे वर्षाकालीन मेघ समूहमें अनन्त उज्ज्वल प्रकाशके साथ विद्युत्-धारा कौंध उठी। महर्षिका कथन समाप्त होते ही उनके शरीरसे महा भयंकर अग्निज्वाला सदृश एक तेजोमय कृत्या उद्भूत हुई और अम्बरीषकी ओर बढ़ चली।

अम्बरीषके होठों पर निष्कलुष मुस्कानकी रेखाएं खिंच गईं। इतने महान् तपके साथ यह क्रोध ? और यह अहं-भाव ! यदि महर्षिमें इन दोनों वस्तुओंका प्राचुर्य न होता तो आज इनकी प्रचण्ड साधना संसार पर कल्याण की वर्षा करती दिखाई देती, चलो अच्छा है, मैं इनकी कोपाग्निमें भस्म हो जाऊं तो फिर इनको पश्चात्ताप करने का अवसर मिलेगा, फलस्वरूप इनके क्रोध और अहंकारकी समाप्ति हो जाएगी और तब ये अपनी साधनासे संसार का कल्याण-साधन तो कर सकेंगे।

इसी विचारधारामें निमग्न अम्बरीष मृत्युका सामना करनेके लिए उद्यत हो ही रहे थे कि कृत्या उनके निकट जा पहुंची और तब उनकी प्रदक्षिणा करती हुई सहसा अपने सृजनहारकी ओर लौट पड़ी। महर्षिको प्रतीत हुआ जैसे अम्बरीषकी समस्त श्रद्धा, समस्त भक्ति और समस्त साधना चक्रके समान अम्बरीषके चारों ओर घूम रही है और अम्बरीष उस चक्रके अन्तर्गत पूर्णतया सुरक्षित है। इसके साथ-साथ जब उन्होंने देखा कि उनका ही अहंभाव, उनका ही क्रोध भयंकर कृत्या के रूपमें स्वयं उनका ही सर्वनाश करनेके लिए झपटा चला आ रहा है, तब तो वे आश्चर्य एवं भयसे अभिभूत हो उठे और अपने प्राण बचानेके लिए वहांसे भाग निकले।

अम्बरीषका ध्यान न तो कृत्याकी ओर था और न चक्र की ओर; उनका ध्यान तो अपने आराध्यदेवकी ओर था और वे बड़े प्रेमसे उन्हींका स्मरण कर रहे थे, इसलिए कि जब

क्षण भरमें भस्म होना ही है तब अपने आराध्यदेवसे क्यों मुंह मोड़ें ? भला अन्तिम कालमें ऐसा सुअवसर मिलता किसे है ? परन्तु सहसा महर्षिको भागते देखकर उनका कौतूहल जागृत हुआ और उन्होंने पुकार कर कहा—जाते कहां हैं भगवन् ! मैं आपका अपराधी हूं। मेरा अपराध तो क्षमा कर दीजिए।

परन्तु अब वहाँ अहंकार तथा क्रोधके अवतार तपोगर्वित दुर्वासा कहां थे ? अब तो वहाँ लज्जाच्युत, धर्यहीन एवं प्राण-रक्षाकी चिन्तामें चूर दुर्वासा मात्र थे। अब वहां अपने अभिशापसे संसार भरको भयभीत करने वाले साधन सम्पन्न दुर्वासा कहां थे ? अब तो वहां अपने अभिशापसे स्वयं ही भयभीत होने वाले दुर्वासा मात्र थे, भला उनको अम्बरीषकी कातरवाणी सुननेका अवकाश कहाँ था ? वे तो अपने पैरोंको अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे गति दे रहे थे और द्रुतवेगसे भागे जा रहे थे—कृत्याकी अपेक्षा भी कहीं द्रुतवेगसे।

इस प्रकार भागते-भागते दुर्वासा ब्रह्मलोकमें पहुँचे और उनके कातर क्रन्दनसे सम्पूर्ण ब्रह्मलोक गूंज उठा। 'त्राहि मां ब्रह्मन् ! त्राहि माम्'। आज मेरे अहंकारने, मेरे क्रोधने भयानक कृत्याका रूप धारण किया है और वह मुझे ही भस्म करनेके लिए विद्युद् वेगसे झपटी चली आ रही है, मुझे बचाइये इस विपत्तिसे मेरा उद्धार कीजिए।

ब्रह्माने निराश-स्वरसें उत्तर दिया—'कृत्याको जन्म दें आप, और उसका निवारण करूं मैं—इतना सामर्थ्य तो मुझमें नहीं है मुनिवर ! मेरा धर्म तो केवल प्राणिकी रचना करना है। इसके पश्चात् प्राणी स्वयं अपने कर्मकी रचना करता और उसका फल भोगता है।

परन्तु इस तत्व-ज्ञान पर विचार करनेके लिए दुर्वासा के पास समयही कहाँ था। उन्होंने अधीर होकर कहा—'वह देखिए भगवन् ! कृत्या चली आ रही है। यदि आप मेरी रक्षा नहीं कर सकते तो रक्षाका कोई साधन तो निकाल सकते हैं। जल्दी कीजिये भगवन् !'

ब्रह्मा बोले—शंकरके पास जाइये ? कदाचित् वे आपकी रक्षाका कोई साधन निकाल सकें।

दुर्वासा [illegible] शंकरके पास पहुंचे और शंकरने उनको उत्तर दिया—'किसीके कर्मफलका परिवर्तन करूं—यह मेरा कर्तव्य नहीं। मेरा कर्तव्य तो पुरानी सृष्टिमें क्रान्तिको जन्म देना और युग-परिवर्तन करना है। आप विष्णुके पास जाइये। वे पालक हैं—रक्षक हैं यदि चाहें तो आपको बचा सकते हैं।

अब दुर्वासा भगवान् विष्णुकी सेवामें उपस्थित हुए और लगे गिड़गिड़ाने—'त्राहि मां प्रभो ! त्राहि माम्' वह देखिये मेरे ही कल्मषकी प्रतिमूर्त्ति कृत्या मेरा ही सर्वनाश करने चली आ रही है। बचाइये ! बचाइये !! अब आपका सुदर्शन-चक्र किस दिन काम आयेगा।"

विष्णु भगवान् हँसकर बोले—परन्तु मुनिवर ! सुदर्शन चक्र मेरे पास है कहां ? वह तो इस समय भक्तवर अम्बरीषके अधीन है और उन्हींकी रक्षामें प्रवृत्त है।'

तो क्या अब मेरी रक्षाका कोई उपाय नहीं है ?'

है क्यों नहीं ! आप अम्बरीषके ही पास चले जाइये ! वे महात्मा हैं, समदर्शी हैं। प्राणिमात्र का कल्याण चाहने वाले हैं। उनसे कदापि आपका अनर्थ न होगा।

हा हन्त ! जिसको तुच्छातितुच्छ समझकर कठोर अभिशाप दिया, उसको ही अब यह गर्वोन्नत मस्तक झुकाना पड़ेगा, परन्तु अधम प्राण बचानेके लिए और उपाय ही क्या है ? दुर्वासा हृदय पर पत्थर रख कर अम्बरीषके पास पहुंचे। अम्बरीष अब तक यथास्थान स्थित थे और सोच रहे थे—यह क्या मुनिवरने मुझे अभिशाप दिया था—भस्मसात् हो जा। परन्तु मैं तो भस्मसात् नहीं हुआ उलटे मुनिवर ही भाग निकले ! भगवान्‌की माया कितनी 'गहन' है—समझमें ही नहीं आती ! इतनेमें दुर्वासाने पुकार लगाई—मुझे बचाओ मेरी रक्षा करो भक्तवर ! मैं तुम्हारी शरणमें हूं।'

अम्बरीष चौंके, विस्मयकी परिधिसे बाहर निकले और बोले—मैं, और आपको बचाऊं, आपकी रक्षा करूं। कहते क्या हैं भगवन् ! भला कभी किसीने सूर्यको पश्चिमसे उदय होते देखा है।

देर मत करो भक्तवर ! शीघ्र मुझे अपनी शरणमें स्थान दो ! वह देखो मेरी ही कृत्या मेरा सर्वनाश करनेके लिए झपटी चली आ रही है और उसके पीछे तुम्हारे आत्मबलका सुदर्शन-चक्र लगा हुआ है।

पाञ्चाली-पुकार

अथवा

शरणागति-रहस्य

[रचयिता—श्री बाबा गुरुमुखदासजी]

हुई हस्तिनापुर विषै, द्वापर युगकी बात
यद्यपि यह वृत्तान्त है, सब जगमें विख्यात ।।१।।
जो रहस्य इसमें भरा, जाने विरला कोय
जो जानै उसका बहुरि, आवागमन न होय ।।२।।
इन्द्र सदसि के सरिस, लगा दरबार हुआ था
कुछ पहिले ही विश्वविदित हो चुका जुआ था
शक्र-सदृश था विभव, किन्तु राजा था अन्धा
दुर्योधनके हाथ राजका था सब धन्धा
चक्षुहीन राजा उधर, अति मदान्ध युवराज था
दुरभिसन्धि अविचारका बस पूरा साम्राज्य था ।।३।।

शकुनीका छल फला, युधिष्ठिर हारे बाजी
था करमें अधिकार, करें जो होवै राजी
भीष्म द्रोण इक ओर, विवेकी जन थे बैठे
एक ओर थे कर्ण शल्य, आदिक सब ऐंठे
नत मस्तक थे पाण्डुसुत, उन्हें न अपना भान था
यादवेन्द्र जिनके सखा, तिनका यह अपमान था ।।४।।
तब बोला युवराज, दुशासनसे दृढ़ बानी
नहीं दीखती यहां, पाँच पतियोंकी रानी
उसका सारा दर्प आज मैं भग्न करूंगा
भरी सभामें आज उसे मैं नग्न करूंगा

कहां भगवन् ! मुझे तो दिखाई नहीं देता ।'

दुर्वासाने नेत्र मलते-मलते अपने चारों ओर दृष्टिपात किया, किन्तु उनको न कहीं सुदर्शन चक्रके दर्शन हुए, न कृत्याके ! उनके विस्मयकी सीमा न रही—जैसे उनके सामने से एक अद्‌भुत अनोखा स्वप्न तिरोहित हो गया । वे चित्र लिखेसे रह गए— शान्त, नीरव और विचार-मग्न । फिर सहसा अम्बरीषके चरणों पर गिर पड़े और बोले—भक्तवर ! तुम वास्तवमें महान् हो ! मैं तुम्हारा अपराधी हूं । मेरा अपराध क्षमा करो, आज तुमने जैसे मेरे सामने ज्ञानकी ज्योति प्रज्वलित कर दी है और मेरा अशेष कल्याण-साधन किया है ।

अम्बरीषने तत्परता पूर्वक दुर्वासाको उठाते-उठाते कहा—यह क्या करते हैं भगवन् ! कहां मैं एक सामान्य मानव और कहां आप एक महान् तपस्वी ? उठिए-उठिए, विनम्रता के रूपमें यह घोर अनर्थ न कीजिए ।' नहीं तो मैं पाप-पंक में फंसकर रह जाऊँगा ।

ब्रह्मर्षि उठते-उठते 'नहीं नहीं राजर्षि, पाप-पंकमें तो अब तक मैं ही फंसा हुआ था और मेरे हृदयमें निरंतर अहंकार एवं क्रोधकी नाटकीय ज्वालाएं धधकती रहती थीं, परन्तु उनसे आज मेरा उद्धार हो गया—केवल तुम्हारी शान्ति और विनम्रताके द्वारा । मैं समझ गया हूँ कि तप का महत्व अहंकार और क्रोधमें नहीं, जगत्-कल्याणकी भावनामें है । मैं समझ गया हूं कि अक्रोधका मेघ क्रोधकी अग्नि पर शीतल जल-राशि उड़ेल देता है । मैं समझ गया हूं कि अहिंसाका सुदर्शन चक्र हिंसाकी अभिशापमयी कृत्याको कुण्ठित एवं व्यर्थ कर देता है । ज्ञानके इस उद्बोधक प्रकाशमें जैसे मेरे हृदयका परिवर्तन हो गया है और अब उसकी कोमल वृत्तियां वेगपूर्वक जाग रही हैं ।

यह थी पराजय विनयके समक्ष अहंकार की, अक्रोधके समक्ष क्रोधकी और अहिंसाके समक्ष हिंसाकी, जो अब तक हमारी सभ्यता-संस्कृतिके पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरोंमें चमचमा रही है और संसारको एक सुन्दर आध्यात्मक सन्देश दे रही है ।

पति बल दर्पित हो किया, जो मेरा अपमान था
न थी कटूक्ति वरन् वह इस क्षणका आह्वान था ।।५।।
दुःशासन कर जोड़ लगा कहने मुसिकाता
इक वस्त्रा है नाथ कहो क्योंकर मैं लाता
सुनते ही अति गर्ज त्वरित बोला दुर्योधन
इसमें भी क्या हानि जिसे होना नंगे तन
सुनते ही आदेश यह सभा-भवन सब मौन था
नभ जल पावक चकित सब, तजा पौन भी गौन था ।।६।।
मौन भीष्म अरु द्रोण, हुए नतमस्तक सोचें
धर्मराज थे मौन विलोचन वारि विमोचें।
फड़क फड़क कर भुजा भीमकी रह जाती थी
अर्जुनकी प्रश्वास बनी झंझा जाती थी ।
नकुल और सहदेव भी, काष्ठ मौनवत् थे बने
कौरव पक्षी कुटिल जन, विष बदले से थे सने ।।७।।
इतनेमें चीत्कार श्रवण गत हुआ कँपाता
दुःशासन गहि केस लखा द्रुपदाको लाता।
धरा-कँपी भूचाल उधर सागरमें आया
अघटित घटना घटी रोक कोई नहिं पाया।
हिले दसों दिग्पाल अरु उठे कसमसा सहसफन
आततायि कौरवों पर, मनहुँ घिरे हो प्रलयघन ।।८।।

× × ×

योग-तल्प पर उधर द्वारिकामें असुरारी
शयन कर रहे निर्विकार थे गर्व प्रहारी ।
रुक्मिणि थी पद पद्म चापती कोमल करसे
चौंक अचानक पड़े कंप कुछ उठा अधरसे।
क्षणमें ही नीरव हुए, सिन्धु ज्वार पश्चात् ज्यों !
उठा प्रियतमाके हृदय, लखि यह दशा विचार त्यों ।।९।।
विभो ! हुआ क्यों अकस्मात् मन मानस चंचल
फिर क्या भक्त पुकार रहा कोई निःसंबल।
बोले हरि मुसिकाय बात है सत्य तुम्हारी
विपदामें घिर रही, आज है द्रुपद कुमारी।
बोली हँस रुक्मणि बहुरि, कैसा यह जंजाल है
छोड़ बसे आ सिन्धुमें, फिर भी लगा बवाल है ।।१०।।
मधुर हास्यसे गूंज उठा वह भवन मनोहर
कुंचित-सी कर भौंह लगे कहने नट-नागर।
ईर्ष्या ये किस लिये प्रिये ! मेरे भक्तोंसे
मेरा है अस्तित्व इन्हीं प्रेमी सक्तोंसे ।
याद करो वह दिन तनिक, जब आया शिशुपाल था
हृदय हाथ धर कर कहो, तब क्यों नहीं बवाल था ।।११।।
क्षमा ! क्षमा !! जगनाथ !!! नाथ सम आरत हारी
गवन करो अविलम्ब, दुखित अति द्रुपद दुलारी।
नहीं प्रिये है समय पंच पाण्डव बलधारी
बैठे हैं उस जगह अहै जिनकी वह नारी ।
करने दो रक्षा उन्हें, वह बुधि बलके धाम हैं
अपनी अपनी करहिं सब, हमें अभी क्या काम है ।।१२।।

× × ×

इतनेमें कच त्याग दुःशासन पकरी सारी
हुए विवशसे पाण्डुपुत्र, तकते लाचारी ।
विलख उठी हो दीन, द्रौपदी आरत स्वरसे
भीष्म द्रोण पर लगी दृष्टि फिर पाण्डव वरसे।
पुनि माधव विचलित हुए, पूछा रुक्मिणि ने तभी
कहो कहो क्या बात है प्रभो, हुआ क्या फिर अभी ।।१३।।
खींच रहा पट पकड़ दुशासन अत्याचारी
विहँस मौन गहि रहे पुनः लीला-वपु-धारी।
हुई रुवासी रमा, धन्य हो आरत-हारी
कहाँ गई वह बान दयानिधि आज तुम्हारी।
उधर भरे दरबारमें अबलाकी लज्जा लुटै
इधर न शय्या आपसे, किस कारण छोड़े छुटै ।।१४।।
प्रिये ! होउ जनि कुपित उसे अब भी न निराशा
भीष्म द्रोणकी ओर, तक रही करके आशा ।
अभी उसे अवलम्ब बना है प्राकृत जनका
अन्तर्मुखी प्रवाह नहीं हो पाया मनका ।
सबकी आशा तज मुझे, जब तक जन न पुकारता
तब तक मैं निश्चिन्त रह कौतुक सभी निहारता ।।१५।।

× × ×

झटका पटमें उधर दुशासनने इक मारा
चित्र लिखित सा काष्ठ मौन था परिकर सारा।
विलख उठी तब हो निराश सबसे पांचाली
फँसी बधिकके हाथ मनो हो राज-मराली

अब किसका अवलम्ब था, दांतोंसे पट दाब कर
लगी टेरने कृष्णाको अति करुणाका भाव कर ॥१६॥

× × ×

पुनि चौंके घनश्याम, हृदय रुक्मिणिका छलका
बोले मृदु मुसिकाय, अभी आश्रय है बलका।
रमा रुवासी हुई, विनत होकर यों बोली
धन्य धन्य यदुनाथ, आपकी करुणा होली।
क्या होकर निश्चेष्ट जब अबला नग्न बनायगी
लोक लाज धोकर सभी, क्या तब तुमको पायगी ।१७।
ठीक कहा है यही बात बोले बनवारी
भावान्तर है रंच, गिरा है सत्य तुम्हारी।
अहं भावको भक्त न जब तक धता बताता
तब तक मेरी कृपा स्वप्नमें भी नहीं पाता।
सर्वभावसे शरण हो, जब तक नहीं पुकारता
तब तक पड़ा प्रपंच में निश्चय सो झक मारता ॥१८॥
सबकी आशा छोड़ चुकी है यद्यपि द्रुपदा
पै निज बलसे अभी टालना चाहे विपदा।
जब उसका निःशेष अहं यह हो जावैगा
तब ही करुणा-सिन्धु इधरसे उमड़ावैगा।
निज कर्तृत्व अभिमान का उसको अब भी भान है
उधर हटा यह इधर बस प्रिय समझो कल्यान है ॥१९॥
मम भक्तोंकी लाज कहो किसने कब नापी
अघ-घट अपना पूर्ण करा करते हैं पापी।
जो मेरा हो चुका लाज की फिर क्यों चिन्ता
इस रहस्यको जान तजो सारी दुश्चिन्ता।
सब संशय मनसे हटा, देखो जो कुछ हो रहा
इदमित्थं जानो इसे, गूढ़ ज्ञान तुमको कहा ॥२०॥

× × ×

कहाँ दुशासन कहाँ एक अबला बेचारी
क्षणभरमें हो थकित दसनसे छूटी सारी।
अन्तिम आशा तन्तु छटते ही निज करसे
अन्तर्मुख हो वृत्ति लगी उस गिरिवर धरसे।
उठे झटक कर रमा का यह आकुल आह्वान था
कहीं मुकुट पट कहीं था कहीं छुटा परिधान था ॥२१॥
प्रविशे पटमें जाय तुरत लीला वपु-धारी
बस अम्बर के सरिस बनी कृष्णाकी सारी।
अद्भुत कौतुक हुआ सभा विस्मित थी सारी
चित्र लिखेसे रहे देखते सब बलधारी।
दशसहस्र गज बल लिये, उधर दुशासन वीर था
इधर एक वस्त्रा हुई अबलाका इक चीर था ॥२२॥
अम्बर अम्बर बना पार उसका पाना था
लघु पिपीलिका और महासागर थाना था।
होंठ चबाता दांत पीसता दुःशासन था
अरु भयसे हिल रहा सुयोधनका आसन था।
पट पर पट चढ़ते बना पर्वत सा इक रम्य था
कूल भला क्यों कर मिले हुआ दुकूल अगम्य था ॥२३॥
भीष्म द्रोण स्तब्ध कर्ण शकुनी थे लज्जित
और जयद्रथ आदि क्षोभके सिन्धु निमज्जित।
द्रवित क्षुभित से सभी हुए लज्जित थे दरबारी
बनी खड़ी दिग् देवि, चकित हो द्रुपद दुलारी।
क्रोध क्षोभ युत हर्षसे, पाण्डव दृश्य निहारते
दृगसे हरिपद-पद्मपर मानहु मुक्ता वारते ॥२४॥
एक विदुरने भेद कृष्ण लीलाका जाना
नत मस्तक हो कहा धन्य शरणागत बाना।
दुःशासन हो थकित गिरा धरणीपर धमसे
मृत-प्राय हो गया, सुयोधन था इस गमसे।
कृष्णा-पटमें कृष्णकी मूर्ति हुई साकार थी
स्तंभित सी तक रही, जन मण्डली अपार थी ॥२५॥
जिसके बलको पाय विश्वको सृज विधाता
जिसके बलसे विष्णु बना बैठा जग त्राता।
जिसके बलसे शंभु प्रलयकारी कहलाता
जिसकी लख भ्रूवंक शची पति भी दहलाता।
उसके बलसे खेलता- दंभी दुःशासन भला
मानहु शलभ प्रदीप पर, प्राणाहुति देने चला ॥२६॥

क्या आप नेता बनना चाहेंगे ?

[ले० — श्री गणेशदत्त "इन्द्र" विद्यावाचस्पति]

घरसे लगाकर विश्व तकके लिये नेताकी आवश्यकता रहती है। इसलिए मनुष्य नेता बननेके लिए सदैव उत्सुक रहता है। घरमें मेरी बात मानी जाय, मोहल्लेमें मेरी पूछ हो। गाँव और नगरवासी मेरे सङ्केत पर चलें, परगना और प्रान्त मेरे इंगितकी अपेक्षा करें। देशका सूत्र मेरे हाथमें हो, जातिके लोग मुझसे बिना पूछे काम न करें, समाजके लोग मेरे संकेत पर काम करें, संस्थाओंमें मेरा बोलबाला हो, भला ऐसा कौन नहीं चाहेगा? यह महत्वाकांक्षा श्लाघ्य है। मनुष्यको उन्नतिके पथ पर पहुँच कर महान् बननेका कार्य है। परन्तु नेता बनना उतना सरल नहीं है जितना कि हम समझ बैठे हैं और देख रहे हैं। इसीलिए नीतिकारोंने कहा है—

"न गणस्याग्रतो गच्छेत् सिद्धे कार्ये समंफलम्।
यदि कार्य विपत्तिः स्यात् मुखरस्तत्र हन्यते॥"

अर्थात्—कभी नेता न बने। क्योंकि सफलतामें कीर्ति सबको बराबर मिलती है और यदि असफलता रही तो बेचारा नेता अकेला मारा जाता है। जिसे अपनी अग्निपरीक्षा स्वीकार हो, जो अपने जीवनको धधकता स्मशान बनाना चाहता हो, जो अपने चारों ओर आग लगाकर उसकी लपटों से खेलना चाहता हो, जो अपने घरका खाकर अपने रक्त बिन्दुओंसे अपना इतिहास लिखना लिखाना चाहता हो, उसे ही नेता बननेका साहस करना चाहिए।

नेता बननेके पूर्व उसे परीक्षा देनी होगी। कठिनसे कठिन परीक्षामें ३३ प्रतिशत नहीं शतप्रतिशत अंक प्राप्त करने होंगे। जो शतप्रतिशत अंक लाकर भी निराश होनेकी भावना तक हृदयमें न आने देगा वही नेता बनने का क्वचित् अधिकारी हो सकेगा। ऊपर कहे गुण मात्र पर्याप्त होंगे, ऐसा मान लेना भी भूल होगी। नेता होनेके लिए—विद्या-विनय-सम्पन्नता सर्वप्रथम अपेक्षित है। जिस क्षेत्रका वह नेतृत्व चाहता है उसका सम्यक् ज्ञान आवश्यक है। अपने सुखोंकी आहुति, परदुःखाग्निमें होमनेकी क्षमता होनी चाहिए। त्यागकी वेदी पर अपना सर्वस्व बलिदान करनेकी भावना होनी चाहिए। यदि मनुष्यमें इतनी शक्ति हो तो उसे इस दिशामें आगे पैर बढ़ाना चाहिए, अन्यथा उत्तम तो यही होगा कि नेता बननेका विचार तक मनमें भूलकर भी न लावें।

आज आप घर-घर गली-गली सड़क-छाप नेताओंको देखकर सम्भवतः सोचते होंगे कि यह कार्य बड़ा सरल, सस्ता, और अच्छा है। किन्तु मेरा संकेत ऐसे नेताओं की ओर नहीं है, जो बलात् देश और समाजके शिर पर चढ़ बैठे हैं। ऐसे निकृष्टतम नेता बननेसे तो मैं आपको परामर्श दूंगा कि आप चोर और डाकू बन जावें तो अच्छा हो। मैं आजकलके नेताओंको तीन विभागोंमें बांटना चाहता हूँ। (१) उत्तम (२) मध्यम और (३) निकृष्ट। उत्तम कोटिका नेता वह कहा जा सकता है, जिसका बाह्याभ्यन्तर पवित्र और एक समान हो, जो काम क्रोधादि मानसिक विकारों पर विजय पा चुका हो। जिसका चरित्र आदर्श हो। राष्ट्रके हेतु जो अपने सुखोंको त्याग चुका हो। अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह जिसका लक्ष्य हो। जो विद्वान् ज्ञानी, समदर्शी और अनुभवी हो। जिसमें समय और समाजको अपने साथ ले चलनेकी क्षमता हो, ऐसा दुर्द्धर्ष मेधावी प्रज्ञावान् व्यक्ति उत्तम कोटिका नेता हो सकता है।

भारत उत्तम कोटिके नेता उत्पन्न करनेमें सब देशोंमें अग्रणी रहा है। सृष्टिके आदिसे इसकी यह परम्परा चली ही आ रही है। इस शृंखलाका एक लम्बा अत्यन्त उज्जवल इतिहास है जो सृष्टिके आरंभमें मरीचि, नारद, वसिष्ठ, अंगिरा आदिसे आरम्भ होकर आज संत बिनोवाके रूपमें जगत्के सामने विद्यमान है और आगे भी ऐसे पुण्य-श्लोक तपःपूत नेताओंकी शृंखला चली ही जावेगी इसमें सन्देह को कोई स्थान नहीं है, जब तक देशमें ऐसे नेता जिन्हें सिवा जनहितके कोई कामना नहीं, उत्पन्न होते रहेंगे तब तक हमारा शिर सर्वदा उन्नत रहेगा।

मध्यम श्रेणीके नेता वही कहे जा सकते हैं, जिन्हें देश

की लगन है, समाजका ध्यान है, और जनताके लिए चिन्तित हैं। जिन्होंने देशके लिए अपना सारा ऐश्वर्य सुख भोग और जीवन अर्पण कर दिया है। ईमानदारीसे देश सेवा के व्रती हैं और देश पर कोई संकट उपस्थित होने पर उसके लिए मर मिटनेको तैयार हैं। इनकी भी एक शृंखला है जो हमारे इतिहासमें प्रह्लाद दाशरथी श्रीराम हनुमान्, श्रीकृष्ण भीष्म-पितामह, चाणक्य आदिसे युक्त आज पं० जवाहरलाल जी नेहरू तक अटूट और सुदृढ़ बनी हुई है। इन महापुरुषोंमें त्याग तप और राजसी मनोवृत्तिका सुन्दर समन्वय परिलक्षित होता है। वेदका यह वचन—

"यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥"
(यजु०)

को आज चरितार्थ कर रहे हैं। इस युगके सन्त विश्व सम्पूज्य महात्मा गान्धीके चरण चिन्हों पर अपने कदम बढ़ानेका प्रयत्न करते हुए हमारे ये नेता हमारे देशकी शासन नौकाको अनेक झंझाओंसे, तूफानोंसे, ज्वारभाटेसे, जलवलयसे, बाड़वानलसे और उत्पातोंसे बचाते हुए बरसोंसे चला रहे हैं। ये भव्य प्रासादोंमें बिठा दिए गए हैं, इन्हें उनमें रहने की इच्छा नहीं है—ये वेतन लेते हैं, किन्तु लेनेकी इच्छा नहीं है। जो कुछ भी वे लेते देते हैं केवल भविष्यका ध्यान रखते हुए, पदके तथा देशके सम्मानमें ही कर रहे हैं। क्या कोई ईमानदारीसे कह सकता है कि—"पं० नेहरू बंगलोंमें रहनेके लिए वा नके लिए आज प्रधानमंत्रीके पद पर हैं?" क्या कोई कहनेका साहस करेगा कि "राजप्रासादोपम भवनों और अपनी सारी सम्पत्तिको देशके लिए अर्पित कर फकीर बन जाने वाला नेहरू पद प्रलोभनमें पड़ कर आज प्रधानमंत्री बना हुआ है?" जीवन भर तो सींचा ही किन्तु आज अपनी वृद्धावस्थामें भी अपने रक्त की, अपने पसीनेकी प्रत्येक बूंदसे वह अपने देशकी नींवको सुदृढ़ बनानेमें पागल बना हुआ है।

तृतीय श्रेणीके नेताओंको मैंने निकृष्ट माना है। ये वे लोग हैं, जिनका न कोई तप है, न त्याग है, न सेवा ही। जो रात दिन स्वार्थ साधनमें ही रत हैं। इनके प्रत्येक कार्यका उद्देश एक मात्र पद प्राप्ति है। जन सम्पर्कमें भी यही भावना है तो सरकारी कार्योंमें भी यही उद्देश है। किस प्रकार चुनाव जीता जा सकेगा? यही एक मात्र भावना अहर्निश उनके मनमें चक्कर काटा करती है। म० गान्धीके आश्रममें रह आए हैं या उनके साथ दौरोंमें रहे हैं अथवा कुछ दिन दिल्लदवोचे जेलमें काटे हैं इत्यादि सूचनाओंकी पट्टी गलेमें लटकाए ये लोग नेता बने बैठे हैं। वास्तवमें इन सबका लक्ष्य होता है पद-प्राप्ति, अर्थ संग्रह और लूट। इनका चरमलक्ष होता है मिनिस्टर बनना और स्वार्थ साधन करना। आज जिस प्रकार साधु समाजमें काषाय वस्त्र परिधानी सैकड़ों, हजारों और लाखों, लुच्चे, लफंगे, गुंडे, धूर्त, चोर, कातिल और न जाने कैसे कैसे नराधम "महाराज" पद से सम्बोधित किये जा रहे हैं, ठीक उसी तरह कलके सड़क-छाप, चारसौबीस करने वाले, बण्डलबाज़, अवसरवादी, धूर्त, निर्लज्ज, आजके खादी वस्त्रधारी "नेता" बन बैठे हैं। स्वराज्य मिलनेके पश्चात् तो ऐसे नेताओंकी एक बाढ़-सी आ गई है। और बादल बनकर ये इतने छा गए हैं कि जिन लोगोंकी हमारे गुलामीके युगमें सेवाओंकी प्रखररश्मियां प्रकाशित थीं उनके आड़े आकर अपना दल बनाए भारतके राजनैतिक गगनमें छा गए हैं। ऐसे लोगोंकी नेतृत्व-ममतासे देशका बहुत अहित हो रहा है।

इनमें निर्लज्जता इतनी बढ़ गई है, पदलोलुपता इतनी चरम-सीमा लांघ गई है कि चुनावोंमें बारबार हार जाने पर भी चुनाव लड़नेमें लज्जा नहीं आती। पदों पर पहुँचनेकी होड़ लगी हुई है। पार्टियां बनाकर देशके वातावरणको कलुषित करना इनका धन्धा बन गया है। बंगलोंमें रहकर सुखभोग करना, वित्तसंग्रह करना, दूसरोंकी टोपी उछालनेका कार्य करना, सौदेबाजी करना, पटकपछाड़ की नीति अपनाना, जोड़तोड़ और गांठसांठ ही आजकी नेतागिरी रह गई है, वास्तवमें यह कार्य अत्यन्त निन्द्य और देशद्रोह है। इस कोटिके नेताओंसे देशको या जनताको कोई लाभ पहुँचनेकी आशा नहीं की जाती। हां, नेता लोग अवश्य पुष्ट हो सकते हैं। भारतका दुर्भाग्य कि हमारे नेता ६० प्रतिशत इस श्रेणी के हैं।

अब मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि "क्या आप नेता बनना चाहेंगे?" मेरा तो आपको यही

परामर्श है कि आप भूल कर भी नेता न बनें। नीतिकार ने कहा है—

"नरपति हितकर्त्ता द्वेषतां यातिलोके—
जनपद हितकर्त्ता त्यज्यते पार्थिवेंद्रै:।
इति महति विरोधे विद्यमाने समाने
नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्त्ता॥

अर्थात्—शासकका प्रशंसक जनता द्वारा अविश्वस्त हो जाता है और जनताका सेवक शासन द्वारा प्रताड़ित होता है। अर्थात् कार्यकर्त्ता (नेता) के लिए बड़ी विषम समस्या उत्पन्न हो जाती है। नेताका मार्ग सदा कंटकाकीर्ण रहता है, जिसमेंसे उसे निकलना पड़ता है। जिसमें पदेपदे कष्टोंका साम्मुख्य करनेकी शक्ति हो वही नेता बननेका विचार करे।

और जनता ? जनताकी तो बात ही छोड़िये। यह कभी किसी सिद्धान्त पर नहीं रहती। यह तो एक भेड़-समूहके समान है जो बिना सोचे समझे, चाहे जिधर जा सकती है और जो चाहे इसे मन चाही दिशामें घुमाफिरा सकता है। उसे अपने हिताहितका कोई ज्ञान नहीं। उसे अपना मानकर चलना भूल कही जा सकती है। किस समय वह कहाँ कबाड़ा बैठा दे कुछ कहा नहीं जा सकता। नेता को एक रेलवे एंजिन और जनताको मैं रेलके डिब्बे कह सकता हूँ। जबतक एंजिन उन्हें समतल भूमि पर घसीटता ले जाता है तबतक तो कोई बात नहीं, किन्तु चढ़ाव या उतारमें एंजिनकी जो दशा होती है वह बड़ी भयावह और दयनीय होती है। जब एंजिन अपनी सारी शक्ति लगाकर किसी चढ़ाव पर चढ़ने लगता है तब डिब्बे उसे पीछेकी ओर खींचते हैं और चढ़नेमें बाधक बन जाते हैं, और जब एंजिन उतारमें अपनी गतिको संभालकर चलता है डिब्बे उसे आगेकी ओर ढकेलनेका काम करने लगते हैं। यही दशा नेता और जनताकी है।

नेताका उत्साह, जनताने कभी नहीं बढ़ाया। उसे सताया ही है, हतोत्साह किया है। उसकी आलोचना करना ही वह अपना धर्म मानती है। उसके साधारण दोषको तिलका ताड़ बनानेमें उसे आनन्द आता है। वह उसके प्रत्येक कार्यको पैनी दृष्टिसे देखती और भलाबुरा कहती है। जनताके हिमालय तुल्य अपराध नेताकी दृष्टिमें क्षम्य हो सकते हैं, किन्तु नेताका राईके बराबर दोष भी जनताकी दृष्टिमें गौरीशंकरकी चोटीसे भी ऊँचा बना दिया जाता है। बेचारा नेता, जनसेवामें अपनी समस्त स्वतन्त्रता खो बैठता है। वह खाने पीनेमें, उठने बैठनेमें, घूमने फिरनेमें, बातचीतमें, पहनने ओढनेमें, व्यवहारमें—क्षण-क्षण जनताके दृष्टिकोणको सँभाले रहता है। वह स्वतन्त्रतासे खेल कूद नहीं सकता, आमोद प्रमोदकी स्वतन्त्रता उसे नहीं, हँसीमजाकसे वह वंचित रहता है, अपने सुखोंको खो देता है, बालबच्चोंको भुला देता है, भरपेट अन्न तक नहीं पाता, इतने पर भी उसे जनता द्वारा दिया जाता है—अपमान, गालियाँ, लाठियाँ, प्रताड़ना, बदनामी और गोलियाँ तक भी।

भगवान् श्रीकृष्ण द्वापरान्तके अप्रतिम नेता थे। उन्होंने साम्राज्य वादी जरासन्ध, शिशुपाल, कंस, दन्तवक्र, गोनर्द, भगदत्त, कर्ण, दुर्योधन आदि राजाओंके विरुद्ध अपनी आवाज उठाई थी। इन साम्राज्यवादी राजाओंको नष्ट करनेके हेतु कुरुक्षेत्रके मैदानमें अर्जुनका सारथ्य भी किया। उन्होंने अपने बचपनसे जीवनके अन्तिम क्षण तक बुराइयोंसे लोहा लिया। देशसे जनपीड़न समाप्त करनेमें उन्होंने कोई कसर उठा न रखी। किन्तु जब नारदके प्रति कहे उनके वाक्य—

"दास्यमैश्वर्यवादेन ज्ञातीनान्तु करोम्यहम्।
अर्धभोक्तास्मि भोगानां वाग्दुरुक्तानि च क्षमे॥
अरणिमग्निकामो वा मथ्नाति हृदयं मम।
वाचादुरुक्तं देवर्षे! तन्मां दहति नित्यदा॥
बलं संकर्षणे नित्यं सौकुमार्यं सदा गदे।
रूपेण मत्तः प्रद्युम्नः सोऽसहायोऽस्मि नारद!

सामने आते हैं तब आँखें खुल जाती हैं। पूरे सवासौ वर्ष तक जनसेवा करने वाला श्रीकृष्ण जैसा महात्यागी कहता है कि 'मैंने जीवनभर जनसेवा की किन्तु मुझे सफलता नहीं मिली। आज भी मेरे हृदयमें कसक है। भविष्यमें कोई आशा भी नहीं क्योंकि बलरामको अपने बलका और प्रद्युम्नको अपने सौन्दर्यका दर्प है, ये बातोंमें कंघा करने वाले, दर्पणमें मुख निहारनेवाले, जनताकी सेवा कर सकेंगे, इसमें मुझे सन्देह है। नारदजी! आज मेरा हृदय दुखी है। और मैं अपनेको असहाय पाता हूँ।" ये हैं वाक्य उस नेताके जो पूर्ण कलावतार माने जाते हैं।

इन सब बातोंका निष्कर्ष यह है कि—"आप नेता

रावणकी लंका कहां थी ?

[ले०—श्री पं० चिमनलाल शर्मा ज्योतिषी गणितमार्तण्ड]

सरदार माधवराव किबेके मतसे बाल्मीकीय रामायणमें वर्णित रावणकी लंका अमर-कंटक पहाड़ पर स्थित थी, जो विन्ध्याचलकी एक शाखा है, बान नगरके प्रोफेसर जैकोबीने स्वीकार किया है कि रामायणीय कथा जैन रूपान्तर 'पउम चरिय' का सम्पादन करते समय जो उन्होंने लंकाकी स्थिति कहीं आसाममें बताई थी। आसाम और मध्यभारत (विन्ध्याचल) सम्बन्धी उपर्युक्त दोनों सिद्धान्तोंके अतिरिक्त तीसरा एक प्रसिद्ध सिद्धांत और है, जिसके अनुसार आधुनिक सीलोन ही लंका और लंका ही सीलोन माना जाता है, बहुतसे प्राच्यविद् इसे ध्रुवसत्य मानते हैं। तथापि हम पाठकोंके सामने लंकाकी स्थितिके विषयमें एक नवीन सिद्धांत उपस्थित कर रहे हैं, जिसका समर्थन हमारे प्राचीन संस्कृत साहित्य और बाल्मीकीय रामायणसे उद्धृत विशेष महत्वपूर्ण तथा विश्वसनीय प्रमाणों द्वारा होता है यह चौथा सिद्धांत सार रूपमें इस प्रकार रखा जाता है !

"लंका दक्षिण महासागरमें स्थित राक्षस द्वीप नाम एक विशाल द्वीपकी राजधानी थी। यह लंका भूमध्य रेखा पर या पृथ्वीके मध्य भागमें स्थित थी। भारतवर्षके दक्षिण तटसे राक्षस-द्वीप अथवा लंकाकी दूरी १०० योजन अर्थात् लगभग ७०० मील थी।"

सीलोन और लंका एक नहीं हैं

प्रथम में आप्त प्रमाणों द्वारा यह दिखलाता हूँ कि सीलोन और लंका दोनों भिन्न-भिन्न स्थान हैं और लंका नगरीका अस्तित्व सीलोन (सिंहल द्वीप) में नहीं है।

बननेके लिए आगे पैर बढ़ानेके पूर्व खूब सोच विचार लीजिए। विशेषतः राजनैतिक नेता होनेके पूर्व। अपने जीवन के तृतीय चरणमें अपने अनुभवोंके निष्कर्षरूप आपको मेरी यही विनम्र सम्मति है कि आप भूलकर भी "नेता" बननेका विचार तक न करें। और यदि बनना ही है तो प्रथम कोटिके नेता बनिए। निकृष्ट श्रेणीके नेता बननेके पूर्व तो गलेमें पत्थर बांधकर पानीमें डूब मरना अच्छा होगा।

---

(१) महाभारत सभापर्वमें सिंहलद्वीपका उल्लेख है। आसमुद्र दक्षिणी राज्यों पर विजय प्राप्त करने वाले पांडव वीर सहदेवके सम्बन्धमें कहा गया है कि उन्होंने 'ताम्रद्वीप तथा 'रामक' पर्वतको विजय किया था, तदनन्तर तत्कालीन 'लंका' के राजा पोलस्त्यने विभीषणके पास कर प्राप्त करनेके लिए दूत भेजे थे।

द्वीपं ताम्राह्वयं चैव पर्वतं रामकं तथा।
तिमिङ्गलं च स नृपं वशे कृत्वा महामतिः॥
प्रेषयामास राजेन्द्र ! पौलस्त्याय महात्मने।
विभीषणाय धर्मात्मा प्रीतिपूर्वमरिन्दमः॥

इस पृथक् वर्णनसे सिद्ध होता है कि ताम्रद्वीप और विभीषणकी लंका एक नहीं थी, ताम्र द्वीप निश्चय ही सिंहल का प्राचीन नाम है, यूनानी लेखकोंने सीलोनका ताप्रोबन (ताम्रपर्ण) के नामसे उल्लेख किया है।

(२) महाभारत वनपर्वमें वर्णन है कि पांडव, बनवास के समय भगवान् श्रीकृष्ण उनसे मिलने जाते हैं और दयनीय दशा देख कौरवोंके प्रति क्रुद्ध होकर धर्मराजके सामने अपने हृदयोद्गार इस प्रकार प्रकट करते हैं—राजसूय यज्ञके समय तुम्हारी इतनी महती विभूति थी कि पृथ्वीके सभी देशोंके राजा अपनी स्थिति और सम्मानको भूल कर छोटेसे छोटे कार्यों द्वारा तुम्हारी सेवामें लगे रहते थे, वे तुम्हारे शस्त्र और तेजसे घबराये हुए बंग, अंग, पौण्ड्र, उड्र, चोल, द्रविड़, अन्ध, समुद्रतीरस्थ जलमयदेश, समुद्रके समीपस्थदेश, सिंहल, बर्बर, म्लेच्छ, लंका आदि देशोंके राजा तुम्हारे यहां निमंत्रित व्यक्तियोंको भोजन के समय परोसनेका कार्य कर रहे थे आज तुम्हारी यह दशा है—

यत्र सर्वान् महीपालान् शस्त्रतेजो भयार्दितान्।
सबङ्गाङ्गान् सपौण्ड्रोड्रान् स चोलद्राविडान्धकान्॥
सागरानूपकाश्चैव ये च प्रान्तनिवासिनः।
सिंहलान्बर्बरान् म्लेच्छान् ये च लंका निवासिनः॥

महाभारतकार महर्षि व्यासके इन अवतरणोंसे सिंहल

और लंका दो भिन्न-भिन्न राज्य सिद्ध होते हैं।

(३) मार्कण्डेयपुराण कूर्मविभागमें दक्षिण भारतके देशोंकी सूची इस प्रकार मिलती है—

"लंका कालाजिनाश्चैव शैलिका किकटस्तथा।
दक्षिणाः कौरुषा ये च ऋषिकास्तापसाश्रमाः॥
ऋषभाः सिंहलाश्चैव तथा काञ्ची निवासिनः॥

इस सूचीसे भी स्पष्ट ज्ञान होता है कि लंका और सिंहल (सीलोन) दो भिन्न-भिन्न देश हैं।

(४) श्रीमद्भागवत पुराणमें जम्बूद्वीपके आठों उपद्वीपोंका नाम इस प्रकार लिखा है।

"जम्बूद्वीपस्य च राजन् उपद्वीपानष्टौ उपदिशन्ति,
तद्यथा स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्ल आवर्त्तनो रमणको
मंदिरहरिणः पञ्चजन्यः सिंहलो लङ्केति॥

हे राजन्! जम्बूद्वीपके आठ उपद्वीप हैं, उनके नाम स्वर्ण प्रस्थ, चन्द्रशुक्ल, आवर्तन, रमणक, मन्दरहरिण, पांचजन्य, सिंहल और लंका हैं, यहां यह स्पष्ट है कि सातवां उपद्वीप सिंहल और आठवां लंका है।

(५) महान्ज्योतिषी वराहमिहिराचार्य कृत बृहत्संहिताके कूर्म विभागमें दक्षिण भारतके देशोंके नामोंका इस प्रकार वर्णन आया है—

"लंका कालाजिनः सौरिकीर्णः
काञ्ची मरुची पट्टन चेर्यार्यक सिंहला ऋषभा।"

इस प्रमाणसे भी सिंहल और लंका दो द्वीप एक दूसरे से दूर पृथक् पृथक् थे।

(६) उपर्युक्त प्रमाणोंके अतिरिक्त संस्कृत नाटकों और काव्योंमें भी ऐसे बहुत स्थल मिलते हैं जहां सिंहल (सीलोन) और लंकाको सर्वथा भिन्न देश बतलाया है। कमसे कम इतना तो निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि अब तक संस्कृत ग्रन्थोंमेंसे ऐसा एक भी प्रमाण उपस्थित नहीं किया जा सकता है जिससे यह सिद्ध हो सके कि वर्तमान सीलोन ही प्राचीन लंका है। स्यात् ऐसा प्रमाण संस्कृत ग्रन्थोंमें मिल भी न सके। अपने सिद्धांत के समर्थनमें यहां कवि राजशेखर कृत बालरामायण नाटक का एक स्थल उद्धृत करते हैं। राजशेखर कवि ईसाकी नवीं शताब्दीमें हुए हैं। उन्होंने समस्त भारतका भ्रमण किया था। अतः भौगोलिक वर्णनमें जो कुछ उन्होंने लिखा है उस पर विश्वास करना सर्वथा निरापद है। उनके बाल रामायणके तीसरे अंकमें लंकेश्वर रावणके विनोदार्थ 'सीतास्वयंवर' नामक अभिनयका विवरण प्राप्त होता है। सीताके पाणिग्रहण की इच्छासे एकत्रित अन्यान्य राजाओंके साथ सिंहलाधिपति राजा राजशेखर भी उस अभिनयमें एक पात्र है। रावण उसे भर्त्सना पूर्ण शब्दोंमें कह रहा है। रावण—

'सिंहलपते! किमिदं संदिह्यते।
न च संदेहदेहो वीरव्रतनिर्वाहः"।

इस व्याख्यानसे स्पष्ट हो जाता है कि सिंहलेश्वर राजशेखर और लंकाधिपति रावण दो व्यक्ति थे तथा लंका और सिंहल निश्चय ही दो भिन्न देश थे। फिर इसी बालरामायणके दसवें अंकमें लंकासे पुष्पक विमान पर अयोध्या जाते समय भगवान् श्रीराम जगदम्बा श्रीसीताजीको पहिले लंका और युद्ध भूमिका पूर्ण परिचय देते हैं और आगे बढ़ने के बाद सीताजीके ऐसा पूछने पर कि वह धनुषके समान कौनसा भूखण्ड दृष्टिगोचर हो रहा है, पास बैठे हुए विभीषण ने 'सिंहल' का वर्णन किया है।

सीता—
"अखंडिता खंडल कोदण्डमण्डल प्रतिरूपं
कतरः पुनरेष उद्देश्यः?
विभीषण—
"पश्यस्यग्रे जलधिपरिखं मण्डलं सिंहलानाम्।
चित्रोत्तंसं मणिमयभुवा रोहणेनाचलेन॥
दूर्वाकाण्डच्छविषु चतुरं मण्डनं यद्वधूनाम्।
गात्रश्चाम्भो भवति गलिते रत्नतां शुक्तिगर्भम्॥"

यह विभीषणने सिंहलके विषयमें वर्णन करते हुए लंका का कहीं नाम भी नहीं लिया। वास्तवमें लंकाको तो वे सब पीछे ही छोड़ आये थे और उसका परिचय भी सीता जी को पहले दिया जा चुका है।

लंका कहां थी?

यहाँ तक तो यह बतलाया गया है कि 'सीलोन' और लंकाकी एक होनेकी धारणा निराधार है। अब यह निश्चय करना है कि लंकाकी वास्तविक स्थिति कहाँ थी? यह पहले लिखा जा चुका है कि भारतकी दक्षिणी सीमा से लंका १०० (सौ) योजन की दूरी पर थी। इस द्वीपकी लम्बाई १०० योजन और चौड़ाई तीस योजन थी। यह परिमाण सिंहलद्वीपके लिए कभी लागू नहीं हो सकता।

श्रीहनूमानजी सीताकी खोजमें लंका जाते समय जिस मार्गसे गये थे उस पर विचार करनेसे पूर्व यह देखना है कि सीलोन और लंकाकी दूरीको सिद्ध करने वाला अन्य कोई प्रमाण उपलब्ध होता है या नहीं।

लंका भूमध्य रेखा पर अवस्थित थी।

वायुपुराणके भुवन-विन्यास प्रकरणमें जम्बू-द्वीपके चारों ओर फैले हुए अंग, यम, मलय, शंख, कुश, और वराह इन द्वीपोंका वर्णन आता है। इसी वर्णनमें कहा गया है कि मलय द्वीपमें स्वर्णकी अनेक खानें हैं और यहाँके वासी विभिन्न प्रकारके म्लेच्छ हैं। यहाँ मलय नामका एक विशाल पर्वत है जिसमें चांदी की भी खानें हैं। इसी द्वीपमें प्रख्यात त्रिकूट पर्वत भी है। यह पर्वत बहुत विस्तृत है, इसी पर्वतके उत्संगमें लंकाकी विशाल पुरी बसी हुई है। इस पुरीमें इच्छित रूपधारी, बल गर्वित देव शत्रु, महात्मा राक्षस रहते हैं इस द्वीपकी लम्बाई सौ योजन, चौड़ाई तीस योजन है, और इसके पूर्वमें गोकर्ण नामक पवित्र स्थानमें एक विशाल शिव मंदिर है।

"तथैव मलयद्वीपमेवमेव सुसंवृतम्।
मणिरत्नाकरं स्फीतमाकरं कनकस्य च॥
आकारं चन्दनानाञ्च समुद्राणां तथाकरम्।
नाना म्लेच्छ गणाकीर्णं नदीपर्वत मण्डितम्॥
तथा त्रिकूट निलये नानाधातु विभूषिते।
तस्य कूटतटेरम्ये हेमप्राकार तोरणा॥
निर्यूह वलभी चित्रा हर्म्यप्रासाद मालिनी।
शतयोजन वीस्तीर्णा त्रिंशदायाम योजना॥
नित्य प्रमुदिता स्फीता लंकानाम महापुरी।
सा कामरूपिणां स्थानं राक्षसानां महात्मनाम्॥
आवासो बलदृप्तानां तद्विद्यादेव विद्विषाम्।
मनुष्याणामसम्बाधा ह्यगम्या सा महापुरी॥
तस्य द्वीपस्य वै पूर्वे तीरे नद नदीपतेः।
गोकर्णनामधेयस्य शंकरस्यालयं महत्"॥

गोकर्ण नामक पर्वतका जो यहां उल्लेख आया है वह भारतवर्षके पश्चिमी घाट पर करवार जिलेमें स्थित पवित्र स्थान आधुनिक गोकर्णनाथसे भिन्न है।

गोलाध्याय—कर्णाटक प्रदेशके हलेविड (बीजापुर) स्थानके निवासी प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् तथा गणितज्ञ भास्कराचार्यके वर्णनसे जो लंकाकी स्थितिके विषयमें ज्ञान प्राप्त होता है उससे उक्त सिद्धान्तका पूर्ण रूपसे समर्थन होता है। श्री भास्कराचार्यका जन्म "रसरामदशमिते १०३६ शके भारतवर्षभूषणरूपः साक्षाद्भास्करावतार एवोद्भवत्" अर्थात् सन् १११५ ई० में हुआ था, उन्होंने गोलाध्याय के भुवनकोषमें लिखा है—

लंकाकुमध्ये यमकोटिरस्या प्राक् पश्चिमे रोमकपत्तनं च।
अधस्ततः सिद्धपुरं सुमेरुः सौम्येऽथ याम्येवडवानलश्च"

इस श्लोकसे यह स्पष्ट हो जाता है कि लंका भूमध्यरेखापर (कुमध्ये) स्थित थी। भूमध्य रेखाको ज्योतिषशास्त्रमें निरक्ष अर्थात शून्य अक्षांश (लेटीचूट) कहते हैं। इसी अध्यायामें एक जगह पुनः वर्णन आया है कि लंका भूमध्यरेखा पर है और लंका तथा अवन्ती—उज्जैनके देशान्तर (तूलांश अर्थात् लेंगीचूड) में बहुत कम अन्तर है। इस मतसे तो भास्कराचार्यका यह दृढ़ विश्वास था कि अवन्ती (उज्जैन) का देशान्तर ७०।४३ पूर्व है तो लंकाका भी यही तूलांश है। लंका से लेकर सुमेरु पर्वत तक आकाशमें सूत्र बांधनेसे इससे नीचे जो नगरादि आते हैं उन्हींकी मध्य रेखा संज्ञा है। भूमध्य रेखा—

पुरीरक्षसां देवकन्याथकाञ्चीसितः—
पर्वतः पर्यलीवत्सगुल्मन्॥
पुरीचोज्जयिन्याह्वया गर्गराटं।
कुरुक्षेत्रमेरुभुवो मध्यरेखा॥"
इतिभास्करेणोक्ता उपलक्षणं चैतत्।
लंकातं आरभ्य सुमेरु पर्यन्तं यद्दत्तं
सूत्रं तदधो वर्तिनो ये देशास्ते
मध्यरेखा उच्यते तदुक्तं तेनैव॥
"यल्लंकोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादि—
देशान्स्पृशत्। सूत्रं मेरुगतं
बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः"॥

लंकापुरी उज्जैनसे तीन सौ सवा दस योजन दक्षिण दिशामें है।

"लंकावन्त्योरन्तर योजनानि ३१०।२६।
१५ एतत्षोडशगुणितं जातं भूमानम्।"

"निरक्षदेशात्क्षितिषोडशांशे भवेद-
वन्ती गणितेन यस्मात् ।"

अब हमें यह देखना है कि लंकाके सम्बन्धमें रामायणमें जो वर्णन आये हैं उनसे भास्कराचार्यके मतकी पुष्टि होती है या नहीं। समस्त भारतका भ्रमण करने वाले सुग्रीवजी कावेरी नदीके दक्षिण देशोंका विस्तृत वर्णन करते हुए कहते हैं कि जैसे नवयुवती रमणी पतिके पास जाती है इसी प्रकार समुद्रकी ओर जाती हुई महा नदी ताम्रपर्णीको पार करनेके बाद तुम्हें पांड्य देशका सुवर्णमय प्रवेशद्वार (कवाटं पाण्ड्यानाम्) मिलेगा 'इसके बाद समुद्र लांघना पड़ेगा।

ताम्रपर्णीं ग्राहजुष्टां तरिष्यथ महानदीम् ।
कान्तेव युवतीकान्तं समुद्रमवगाहते ॥
ततो हेममयं·········। कवाटं पाड्यानां·········
ततः समुद्रमासाद्य संप्रधार्यार्थ निश्चयम् ।"

तदनन्तर कहते हैं कि वहाँ एक खाई थी जिसके कारण समुद्रमें जाने वालोंको बड़ी असुविधा होती थी, अतएव अगस्त्यमुनिने विचित्र शिखर महेन्द्र पर्वतका स्थापन कर उस खाईको भर दिया। इस पर्वतका बहुत सा भाग अभी समुद्रमें है, यह महेन्द्र पर्वत सोनेका है।

अगस्त्येनान्तरे तत्र सागरे विनिवेषितः।
चित्रसानुनगाः श्रीमान्महेन्द्रः पर्वत्तोत्तमः ॥
जातरूपमयः श्रीमानवगाढोमहार्णवः ।"

इस श्लोकसे यह ज्ञात हता है कि महेन्द्र पर्वत कलिंग देशस्थ महेन्द्रपर्वतसे भिन्न है। और उसका एक भाग दक्षिणकी ओर बढ़कर समुद्रमें डूबा हुआ है। इसके आगे लंकाके विषयमें कहा है।

"द्वीपस्तस्यापरेपारे शतयोजन विस्तृतः।
सहि देशस्तु बध्यस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥
राक्षसाधिपतेर्वासः सहस्राक्षः समुद्यते।"

इससे अधिक स्पष्ट प्रमाण रावणके निवास स्थानके सम्बन्धमें और क्या हो सकता है। अब यह अनुमान सहजमें ही किया जा सकता है कि राक्षस द्वीप नाम रावण का देश था। और लंका उसकी राजधानी थी। वह भारत के दक्षिणतम तट पांड्यदेशके प्रवेश द्वार (पाण्ड्यकवाट) से पश्चिम दिशामें था। सिंहल अथवा सिलोनके लिए यह वर्णन कदापि लागू नहीं हो सकता। दक्षिण भारतीय इतिहासका प्रारम्भकाल नामक ग्रंथमें ग्रंथकर्त्ता मद्रास के प्रसिद्ध प्राच्यविद् डा० एस० के० आयंगर महाशयने बड़ी बुद्धिमत्ताके साथ यह सिद्ध किया है कि 'पांड्यानां कवाटम्' तामिल प्रांतका एक प्रसिद्ध कवाटपरम् या कवाटपुरम् ही है। आयंगर महाशयने इस पर व्याख्या करते हुए 'कवाटं पांड्यानाम्' को पाण्ड्य देशका प्रवेश द्वार बतलाया है। यह अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। टीकाकारने जिसको मलयकोटि बतलाया है वह वही उदग्र भूमि है जहाँ पश्चिमी घाट समुद्रमें निमग्न हो गया है। इस पांड्य-देशके प्रवेश द्वार सम्बन्धी उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट हो जाता है कि भारतका दक्षिणी कन्याकुमारी अन्तरीप ही वह स्थान है, क्योंकि इसीके समीर महेन्द्र पर्वत समुद्र में अन्तर्हित हुआ है और सुग्रीवने जो दक्षिण भारतके भूगोलका निदर्शन कराया है उससे भी यह पता चलता है कि रावणका निवास राक्षसद्वीप इस पर्वत श्रेणीसे पश्चिम था जिस स्थान पर इस समय मालडिव द्वीप समूह है। प्राचीन कालमें यही राक्षसद्वीप था। इसका विस्तार भूमध्य रेखासे ३ उत्तर अक्षांश तथा एक दक्षिण अक्षांशके तथा तूलांश (लेंगीचूड) ७३ से ७६ पूर्व देशान्तरके बीच विस्तृत था। किबे साहबके मतसे अमरकंटक जैकोबीके मतसे आसाम और अन्योंके मतसे सीलोन ही लंका है यह तीनों प्रमाण, भ्रमात्मक हैं। लंका निरक्षदेशमें है वहां पर प्रत्येक दिन १२ घंटेका होता है और १२ घण्टेकी रात होती है। वर्ष पर्यन्त दिनमानमें ह्रास वृद्धि नहीं होती। प्राचीन और अर्वाचीन ज्योतिषी दशम स्पष्टके लिए लंकोदय ही मानते आये हैं और मानते रहेंगे। आसाम अमरकंटक सिलोन मध्यरेखा पर नहीं है। सिद्धान्तशिरोमणिमें भास्कराचार्यने जो उज्जैनका और लंकाकी दक्षिणोत्तर मार्गकी दूरी मानी है वह भी सीलोनादिसे मेल नहीं करती, महा भारतादि आर्ष ग्रन्थोंमें सिंहल और लंका पृथक्-पृथक् माने हैं अतएव सिंहल (सिलोन) रावणकी लंका नहीं थी, प्रमाण अन्य भी प्राप्त हैं परन्तु लेख वृद्धिकशात् यहां ही विश्राम लेता हूं।

—

धरा साधार है या निराधार ?

[ले०—श्री पं० हनुमान शर्माजी]

इस विषयमें वेदोंका मत है कि पृथ्वी सूर्य नारायणके आकर्षण और (प्रलय कालमें शेष रहने वाले) परम ब्रह्मकी महान् शक्तिके अमित प्रभावसे (अपरिमित आकाशके किसी एक अंशमें) स्वयं ही स्थित है। इसके आगे पीछे या नीचे ऊपर कहीं भी कोई आधार नहीं है।

स्मृतियां कहती हैं कि पृथ्वीका आधार एक मात्र धर्म है, वह उसीके सहारे इस अति विस्तृत आकाशमें निराधार ठहरी हुई है। (वर्तमान सभ्य समाज उसी धर्मका विच्छेद कर रहा है।)

पुराणोंके अनुसार पृथ्वीके एकाधिक आधार हैं परन्तु वे सब रहस्यमय हैं। उनका आशय पुराणाचार्य ही जान सकते हैं, हम जैसे मोटी बुद्धिके मनुष्य उनको पूरा नहीं समझते।

श्रीमद्भागवतमें पृथ्वीको सहस्त्रशीर्ष वाले शेषके एक शीर्ष पर सर्षप समान स्थित बतलाया गया है। शेष वही ब्रह्म जो प्रलयकालमें शेष रहता है और वही सहस्त्रशीर्ष सहस्राक्ष और सहस्त्रपाद है। क्योंकि सर्पस्वरूप कोई भी शेष सहस्त्रशीर्ष होकर सहस्राक्ष नहीं हो सकता। द्विसहस्राक्ष हो सकता है, अतः पृथ्वी उसी शेष (परब्रह्म) पर स्थित बतलाई गई है।

अन्य पुराणोंमें मत्स्य कूर्म वाराहादिके आधार पर स्थित मानी है। उसका लक्ष्य भी उसी ब्रह्म पर है।

विष्णुपुराणमें वराह भगवान्की दंष्ट्रा (दाढ़) पर रखी हुई पृथ्वीको इस प्रकार बतलाया है मानो मत्तगजेन्द्रके दाँत पर पङ्क लिप्त पद्म पत्र सुशोभित हो रहा हो।

सूर्यसिद्धान्तका मत है कि ब्रह्माण्डके बीच केन्द्रस्वरूप आकाशमें यह पृथ्वी ब्रह्मकी परमशक्ति पर निराधार ठहरी हुई है।

ज्योतिर्विज्ञानके पूर्ण मर्मज्ञ भास्कराचार्यने युक्ति और प्रमाणोंके आधार पर यह सिद्ध किया है कि पृथ्वी साधार नहीं निराधार है। यदि इसको किसी मूर्तिमान्का आधार है तो प्रश्न होता है कि मूर्तिमान् किसके आधार पर है ? और आगे उसके क्या आधार हैं ? यही कि वह विना शक्तिके आधार पर हो तो पहले ही यह क्यों न मान लिया जाए कि पृथ्वी निज शक्तिके आधार पर स्थित है।

शिवकी आठ मूर्तियां हैं। उनमें एक पृथ्वी भी है। इस कारण भी यह निराधार है।

खगोल वेत्ता इस बातको जानते हैं कि आकाशमें विश्व निर्माताका निर्माण किया हुआ 'भपञ्जर' जिसमें प्रायः सभी गगनेचर गुम्फित हो रहे हैं, वही 'भपञ्जर' अहोरात्रमें सदैव पृथ्वीके नीचे होकर ऊपर आता है और ऊपर होकर नीचे जाता है। इस प्रकार नीचे ऊपर जानेको हम सदैव देखते हैं, यदि पृथ्वीके नीचे कोई आधार होता तो भपञ्जर उसमें लटक जाता इसलिए पृथ्वीको किसी का आधार नहीं है।

इस विषयमें यह सन्देह है कि इतनी भारी वस्तु अपने आप कैसे ठहर सकती है। इसका समाधान भास्कराचार्यने यह दिया है कि जिस प्रकार सूर्य और अग्नि स्वभावतः उष्ण होते हैं, चन्द्रमा स्वभावतः शीतल होता है। द्रव (बहने वाला) होता है। पाषाणादिमें स्वभावतः कठोरता होती है और वायु स्वभावत चञ्चल रहती है। उसी प्रकार यह पृथ्वी भी स्वाभाविक रूपसे ठहरी हुई है।

इसके अतिरिक्त इसके अन्दर एक आकर्षण शक्ति और है यह उसीके प्रभावसे ऊपरकी प्रत्येक वस्तुको अपनी ओर खेंच लेती है।

न्यूटन नामक एक पाश्चात्य ज्योतिषीने सिद्ध किया है कि संसारका प्रत्येक अणु अन्य प्रत्येक अणुका आकर्षण करता रहता है और जिस पदार्थमें अधिक अणु होते हैं उसकी आकर्षण शक्ति भी बढ़ जाती है। पृथ्वीमें वे अणु अपरमित हैं इसलिए इसकी आकर्षण शक्ति भी अपरिमेय है।

बौद्धमत वाले इसको निराधार तो मानते हैं परन्तु

इसके बहुत भारीपनको देखकर इसे नित्यप्रति जर्मीनमें जाती हुई मानते हैं, भास्कराचार्यने इसका बड़ी युक्तिसे खण्डन किया है। उन्होंने लिखा है कि यदि पृथ्वी अधोगामिनी होती तो इसके चारों ओर घूमने वाले ग्रह नक्षत्रादिमें यह अटक जाती या भारी वजन की होनेसे यह तो द्रुत गति से नीचे चली जाती। और ग्रह नक्षत्रादि ऊंचे रह जाते जिसमें पृथ्वीके ग्रहादिके बीच अद्यावधि अगाध अन्तर पड़ जाता। अथवा इसके ऊपरसे आकाशमें फेंके जाने वाले गेंद तीर या पत्थर आदि गिर कर भी इसको नहीं पहुंचते, अतः यह नीचे नहीं जाती यथास्थान स्थित रहती है।

इस विषयमें दिगम्बर जैनियोंकी एक विलक्षण कल्पना है। वह कहते हैं कि आकाशमें दो सूर्य दो चन्द्रमा, ५४ नक्षत्र, और चार स्तम्भका सुमेरु है। इसके प्रतिवादमें भास्कराचार्यने कहा है कि जैनी लोग पृथ्वीके धुरे (ध्रुव) के समीप ध्रुवमत्स्यके मुखमें सूर्यका अस्त और पूंछमें उदय प्रतिदिवस देखते हुए भी दो सूर्यकी जो कल्पना करते हैं—यह सर्वथा असम्भव है। श्रीपति ने भी इसका खण्डन किया है। आधारके विषयमें शास्त्रकारोंका यह भी कथन है कि पृथ्वीके चारों ओर चार दिग्गज हैं। उन्हींके आधार पर यह पृथ्वी ठहरी हुई है। इस सम्बन्धमें महामुनि बालमीकिजीने लिखा है कि भूगर्भ के अधोभागमें कुमुद अञ्जन मत्त और विरुपाद नामके चार पर्वत समान अंग वाले हैं। और पुराणोंमें उन्हींको दिग्गज या दिशागज नामसे प्रकट किया है।

जनश्रुतिमें यह भी विख्यात है कि पृथ्वीके चारों ओर प्रति दिन तिल भर मिट्टी चढ़ती है। इसकी पुष्टिमें आर्य सिद्धान्तका यह मत है कि ब्रह्माके एक दिनमें पृथ्वीके चारों ओर एक योजन (चार कोस) मिट्टी ऊंची चढती है और ब्रह्मा की रातमें वही एक योजन मिट्टी नीचे उतर जाती है।

—

भारतीय ज्योतिष शास्त्रका प्रारम्भिक शिक्षण

[लेखक—श्री देवेन्द्रनारायणजी पांडेय, एम० ए० एल० एल० बी०]

ज्योतिर्विद्याका उद्भव-स्थान भारत ही है :—

भारतीय ज्योतिषके सम्बन्धमें विद्वानोंमें बड़ा मतभेद है। कुछ लोग कहते हैं कि ज्योतिष सिद्धान्त पर भारतबासियोंके नवीन और मौलिक विचार बहुत कम हैं। इसके विरुद्ध कुछ लोगोंका कहना है कि भारतीय ज्योतिषशास्त्र प्राचीनकालमें उन्नतिके उच्च शिखर पर पहुंच गया था। यदि निष्पक्ष भावसे विचार किया जाय तो यह ध्रुव सत्य प्रतीत होगा कि भारत ही ज्योतिषशास्त्रका आदि आविष्कर्त्ता है। योगदर्शन जो कि भारतीय ऋषियोंकी विभूति माना जाता है, इसका पृष्ठाधार है। यहांके ऋषियोंने योगबल द्वारा अपनी सूक्ष्म प्रज्ञासे शरीरके अंतर्गत ही सौर जगत्के दर्शन किये और अंतस्-सौर जगत्के पर्यवेक्षण द्वारा आकाशीय सौर-जगतकी व्यवस्था की। अङ्कविद्या जो इस शास्त्रका प्राण है, उसका प्रारम्भ भी भारतवर्षमें ही हुआ। इस विद्याकी प्राचीनता श्रीलोकमान्य तिलक, श्रीडा० गौरीशङ्कर हीराचंद ओझा, श्री पं० सुधाकर द्विवेदी और डा० श्याम शास्त्री जैसे भारतीय विद्वानोंके साथ प्रो० मैक्समूलर, फ्रांसीसी पर्यटक फ्रांक्वीसवर्नियर, फ्रांसीसी यात्री टरबीनर, कौंट जर्मस्टर्जन, कर्नलटाड, मिस्टर मारिया, मिस्टर सी० बी० क्लार्क, प्रो० विल्सन, डाक्टर रावर्टसन, प्रो० कोलब्रुक, चीनी विद्वान् लियांग चिचाव डी० मार्गन, डा० थीवो, डा० वर्जेस प्रभृति विदेशी विद्वानोंने अंगीकार की है।

भारतीय ज्योतिषके सिद्धान्त—

भारतीय ज्योतिषको भली-भांति समझनेके लिए नक्षत्रोंका नाम स्मरण रखना आवश्यक है। यथा १—अश्विनी, २—भरणी, ३—कृत्तिका, ४—रोहिणी, ५—मृगशिरा, ६—आर्द्रा, ७—पुनर्वसु, ८—पुष्य, ९—आश्लेषा, १०—मघा, ११—पूर्वाफाल्गुनी, १२—उत्तराफाल्गुनी, १३—हस्त, १४—चित्रा, १५—स्वाती, १६—विशाखा, १७—अनुराधा, १८—ज्येष्ठा, १९—मूल,

२०—पूर्वाषाढ़, २१—उत्तराषाढ़, २२—अभिजित्,२३—श्रवण, २४—धनिष्ठा,२५—शतभिषा, २६—पूर्वाभाद्रपद, २७—उत्तराभाद्रपद, २८—रेवती।

यह नक्षत्र तारोंके वह समूह हैं जो चन्द्रमाके मार्गमें पड़ते हैं। इसी मार्गके निकट पृथ्वीका मार्ग भी है जिसे पहले समस्त देशोंके लोग सूर्यका मार्ग समझते थे। आजकल भी सुविधाके विचारसे यह मान लेनेमें कोई हानि नहीं है कि यह सूर्यका पथ है। चंद्रमा इन नक्षत्रोंका एक चक्कर २७ दिन ८ घंटेमें देता है। इसीलिए चन्द्र मार्गको पहले २८ असमान भागों में विभक्त किया गया और प्रत्येक भागको नक्षत्र कहने लगे। फिर गणनाकी सुविधाके लिए केवल २७ ही समान भागके नक्षत्र माने जाने लगे और अभिजित् नाम निकाल दिया गया। यह प्रकट है कि चंद्रमा एक नक्षत्रमें प्रायः एक दिन रात रहता है।

जिस नक्षत्र-चक्रको चंद्रमा २७ दिन ८ घंटेमें पूरा करता है उसे सूर्य १२ महीनों या ३६५ दिनोंमें पूरा करता जान पड़ता है। इसलिए सूर्य एक नक्षत्र में १३ या १४ दिन तक रहता है। ऋतुओंका बोध इसी सूर्यके नक्षत्रोंसे किया जाता है।

नक्षत्र-चक्र—

२७ नक्षत्रोंके चक्रको सूर्य एक वर्षमें अथवा मोटे हिसाब से ३६० दिनमें पूरा करता हुआ जान पड़ता है। इसलिए इस चक्रके ३६० बराबर भाग कर दिये गये जिसे अंश कहते हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि सूर्य एक दिनमें एक अंश चलता है। अंशके ६० वें भागको कला कहते हैं यही सूर्यकी एक घड़ीकी चाल है। कलाके ६० वें भागको विकला कहते हैं जो सूर्यकी एक पलकी चाल है।

जब २७ नक्षत्र ३६० अंश समान माना गया तो एक नक्षत्र $\frac{३६०}{२७}$ या $\frac{४०}{३}$ अंश या १३ अंश २० कला समान हुआ।

तिथि-बोध—

जिस समय सूर्य और चन्द्रमा आकाशमें एक साथ रहते हैं उस समय अमावस्या होती है। जब चन्द्रमा सूर्यसे १२ अंश बढ़ जाता है तब प्रतिपदा या पड़वा तिथि पूरी हो जाती है और द्वितीया लगती है। इसी दिन सूर्यास्तके बाद ही चन्द्रमा पच्छिम क्षितिजमें पतला-सा दिखाई पड़ता है। सूर्यसे २४ अंश आगे बढ़ने पर तृतीया या तीज आरंभ होती है। इसी तरह सूर्यसे बारह-बारह अंश चन्द्रमा के आगे बढ़ने पर तिथि बदलती है। जब सूर्यसे चन्द्रमा १८० अंश आगे बढ़ जाता है तब पूर्णमासी होती है। इस दिन चन्द्रमा पूरा गोल हो जाता है और सूर्यास्त कालमें पूर्व क्षितिज पर उदय होता हुआ दीख पड़ता है। इसी दिन शुक्लपक्षका अन्त होता है। जब चन्द्रमा इसके आगे बढ़ता है तब १६ वीं तिथि लगती है जिसे कृष्णपक्षकी प्रतिपदा कहते हैं। इसी दिनसे चन्द्रमा धीरे-धीरे घटने लगता है और इसके पूर्वमें उदय होनेका समय प्रतिदिन लगभग एक मुहूर्त या दो दो घड़ी पीछे होता जाता है। इन्हीं तिथियोंके विचारसे हमारे यहां पर्व और त्योहार निश्चित किये जाते हैं।

तिथियोंके नाम क्रमानुसार यह हैं—

क्रम संख्या	शुक्लपक्ष	क्रमसंख्या	कृष्णपक्ष
१	प्रतिपदा या पड़वा	१६	पड़वा
२	द्वितीया या दूज	१७	दूज
३	तृतीया या तीज	१८	तीज
४	चतुर्थी या चौथ	१९	चौथ
५	पंचमी	२०	पंचमी
६	षष्ठी	२१	षष्ठी
७	सप्तमी	२२	सप्तमी
८	अष्टमी	२३	अष्टमी
९	नवमी	२४	नवमी
१०	दशमी	२५	दशमी
११	एकादशी	२६	एकादशी
१२	द्वादशी	२७	द्वादशी
१३	त्रयोदशी	२८	त्रयोदशी
१४	चतुर्दशी	२९	चतुर्दशी
१५	पूर्णमासी या पूर्णिमा	३०	अमावस्या

पंचांगों में १६ वीं, १७ वीं तिथिके स्थानमें १, २, ३ आदि लिखा रहता है, केवल अमावसके लिए ३० की संख्या लिखी जाती है। तिथियोंके हिसाबसे मासका आरम्भ

जब शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे होता है तो उसका अन्त कृष्ण-पक्षकी अमावस्याको होता है। यह रीति बहुत प्राचीन है। ऐसे मासको अमान्त चान्द्रमास कहते हैं। परन्तु कई प्रान्तोंमें महीनेका आरम्भ कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे होता है। इसलिए ऐसे मासको पूर्णिमान्त चान्द्रमास कहते हैं। देखनेमें यह रीति सुगम जान पड़ती हैं क्योंकि पूर्णमासीको मासका पूर्ण होना स्वाभाविक जान पड़ता है। इन दोनों प्रकारके महीनोंके शुक्लपक्ष तो एक ही होते हैं परन्तु कृष्ण-पक्षके मासोंमें भेद हो जाता है। इसी कारण इस प्रान्तमें भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको कृष्ण जन्माष्टमी मनायी जाती है, जो महाराष्ट्र और गुजरात प्रान्तोंमें श्रावण कृष्णाष्टमी समझी जाती है।

सिद्धान्तोंमें अमान्त गणनाके अनुसार ही मलमासोंकी गणना रखी जाती है, इसीलिए हमारे प्रान्तके पंचांगोंमें मलमासकी गणनामें कुछ गड़बड़ी रहती है। मलमास वाले महीनेके पहले महीनेका कृष्णपक्ष शुद्ध माना जाता है फिर दो पक्ष मलमासके होते हैं, इसके बाद उसी नामके शुद्ध महीनेका शुक्ल पक्ष आता है।

तिथि वृद्धि और क्षय —

यदि सूर्य और चन्द्रमाकी गतियाँ एक सी होतीं तो प्रत्येक तिथिकी अवधि भी एक सी होती। परन्तु सूर्य और चन्द्रमाकी गतियाँ समान न होनेके कारण तिथियोंका मान भी बदलता रहता है, कभी तिथि प्रातःकाल समाप्त हो जाती है, कभी दोपहर, कभी संध्याके समय और कभी रातको। इसीलिए लौकिक व्यवहारमें तो हम वही तिथि सारा दिन और सारी रात मानते हैं जो सूर्योदय कालमें होती है परन्तु व्रत उपवास आदिके लिए दूसरे नियम हैं। तिथिका छोटेसे छोटा मान ५१ घड़ीके लगभग और बड़ेसे बड़ा मान ६६ घड़ीके लगभग होता है। इसलिए ऐसा होता है कि कोई तिथि सूर्योदयसे आधी घड़ी उपरान्त लगी और दूसरे सूर्योदयसे पहले ही समाप्त हो गई। ऐसी दशामें यह तिथि न तो उस दिन मानी जायगी जिसके सूर्योदयके उपरान्त लगी और न दूसरे ही दिन मानी जायगी जिसके सूर्योदयके पहले ही समाप्त हो गयी। ऐसी तिथिको क्षय तिथि कहते हैं। परन्तु यदि कोई तिथि ६० घड़ीसे बड़ी हुई और दूसरे दिन सूर्योदयसे कुछ पीछे समाप्त हुई वह दोनों दिन मानी जायगी। ऐसी तिथिको वृद्धि कहते हैं। यही कारण है कि कोई पक्ष १५ दिनका होता है कोई १४ दिनका और कोई १६ दिनका। बहुत दिनोंके बाद कभी-कभी कोई पक्ष १३ दिन का भी हो जाता है।

तिथियोंकी गणनामें एक कठिनाई और भी है। यह नियम है कि सूर्योदय कालमें जो तिथि वर्तमान रहती है वही दिन भर मानी जाती है। परन्तु सूर्योदय सब स्थानमें एक ही समय नहीं होता। पूर्वमें सूर्योदय शीघ्र होता है पच्छिममें देरसे। इसलिए पूर्व देशोंमें सूर्योदय कालमें जो तिथि वर्तमान है वह पच्छिमके स्थानोंमें सूर्योदयसे पहले समाप्त हो सकती है। ऐसी अवस्थामें दोनों स्थानोंकी तिथियोंमें भेद पड़ जाता है। दो ऐसे स्थान लीजिए जो एक दूसरेके समीप हो जैसे काशी और प्रयाग। इन दोनोंके सूर्योदय कालमें ४ मिनट ४० सेकण्ड अथवा लगभग १२ पल का अन्तर होता है। यदि कोई तिथि काशीके सूर्योदयसे २ मिनट पहले प्रारम्भ हुई तो वह काशीमें दिन-रात लिखी जायगी। परन्तु प्रयागमें उस तिथिका अन्त सूर्योदय से पहले ही हो जायगा। इसलिए प्रयागमें उसके आगेकी तिथि मनायी जायगी। इससे लौकिक व्यवहारमें बड़ी अड़चन पड़ सकती है इसीलिये लौकिक कामोंमें दूसरी पद्धतिका सहारा लेना पड़ता है। बङ्गाल और पंजाबमें तो सौर तिथियोंका चलन बहुत दिनोंसे है। उत्तर प्रान्तमें भी अब सौर तिथियोंका व्यवहार होने लगा है।

संक्रान्ति और सौर तिथि—

जिस प्रकार नक्षत्र-चक्र २७ समान भागोंमें विभक्त किया गया है उसी प्रकार वह १२ समान भागोंमें बांटा गया है, जिसे राशि कहते हैं। इनके नाम क्रमसे ये हैं:—१—मेष, २—वृष, ३—मिथुन, ४—कर्क ५—सिंह, ६—कन्या, ७—तुला, ८—वृश्चिक, ९—धनु, १०—मकर, ११—कुंभ, १२—मीन।

यह प्रकट है कि एक राशि सवा दो नक्षत्र या ३० अंशके समान होती है। सिद्धान्तोंमें बहुत दिनोंसे यह विवाद चल रहा है कि राशियों या नक्षत्रोंका आरम्भ स्थान क्या

माना जाय । इस प्रान्तमें आरम्भ स्थान वही माना जाता है जो सूर्यसिद्धान्तकी गणनाके अनुसार सिद्ध होता है । इसीसे मिलता-जुलता एक और नियम है जिसके अनुसार चित्रा तारा राशि चक्र के ठीक मध्यमें माना जाता है अर्थात् चित्रा तारा वहां है जहां छठी राशि समाप्त होती और सातवीं आरम्भ होती है ।

जब सूर्य मेष राशिमें प्रवेश करता है तब मेष की संक्रांति होती है । आज कल यह १३ या १४ अप्रैलको होती है ।

संक्रान्तिकके बाद जो सूर्योदय होता है उसीसे पहली सौर तिथिका आरम्भ होता है । दूसरे सूर्योदयसे दूसरी सौर तिथि चलती है । पंजाबमें जिस दिन संक्रांति प्रवेश हो—चाहे वह ५६।५६ पर ही क्यों न लगे—उसी दिन उस मासकी पहली सौर तिथि या प्रविष्टा माना जाता है ।

दिन, मास तथा वर्षका ज्ञान—

सूर्यसे दिन और रातका बोध मानवको सबसे पहले हुआ । वार-संज्ञायें सात हैं जो ग्रहोंके नामकी द्योतक हैं, यथा रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनिवार ।

रविवार स्थिर, सोमवार चर, मंगलवार उग्र, बुधवार सम, गुरुवार लघु, शुक्रवार मृदु एवं शनिवार तीक्ष्ण संज्ञक हैं ।

दिन रातका बोध हो जाने पर मनुष्यने यह देखा कि चन्द्रमा १५ दिन तक क्रमशः बढ़ता है और फिर १५ दिन तक क्रमशः घटते-घटते अदृश्य हो जाता है । इस प्रकार इसका एक चक्कर ३० दिन में पूरा हो जाता है । इसलिए चन्द्रमासे महीनेका बोध हुआ ।

अनेक वर्षोंके निरन्तर अध्ययन और विचारसे यह ज्ञात हुआ कि माससे भी कालकी बड़ी लम्बाई है जो सूर्य की उत्तर दक्षिण गतियों पर अवलम्बित है जिसमें गर्मी, वर्षा जाड़ेका एक चक्र पूरा हो जाता है । इसे वर्ष कहते हैं पीछे यह भी ज्ञात हुआ कि प्रायः उतने ही समयमें चन्द्रमा के १२ मास पूरे होते हैं । इसलिए यह निश्चय किया गया है कि १ वर्षमें १२ महीने होते हैं ।

ज्योतिष-शास्त्रका पहला पाठ—

एक महीनेमें ३० दिन और एक वर्षमें १२ मास अथवा ३६० दिन होते हैं । एक महीनेमें दो पक्ष और सात दिनों का एक सप्ताह होता है ।

महीनोंके नाम आदिकालमें मधु, माधव आदि रखे गये, जो ऋतु सूचक हैं । तीन हजार वर्षसे ऊपर हुए भारतीय नक्षत्र दर्शियोंने तिथि, मास और नक्षत्रोंका पारस्परिक सम्बन्ध स्थिर किया । चैत्र वैशाख आदि नामोंका चलन हुआ । सिद्धान्त यह है कि जिस मासकी पूर्णिमाको चन्द्रमा चित्रा या स्वाती नक्षत्रमें होता है उस मासको चैत्र मास कहते हैं । नीचेके दिये गये क्रमानुसार विवरणसे प्रत्येक मासकी पूर्णिमातिथिका सम्बन्ध नक्षत्रोंसे अवगत होगा ।

महीनों के नाम	पूर्णमासी तिथिका नक्षत्रोंसे सम्बन्ध
चैत्र	चित्रा या स्वाती
वैशाख	विशाखा या अनुराधा
ज्येष्ठ	ज्येष्ठा
आषाढ़	पूर्वाषाढ़ या उत्तराषाढ़
श्रावण	श्रवण
भाद्रपद	पूर्वाभाद्रपद या उत्तराभाद्रपद
आश्विन	अश्विनी
कार्तिक	कृत्तिका या रोहिणी
मार्गशीर्ष	मृगशिरा या आर्द्रा
	(अग्रहायण) Orion
पौष	पुष्य
माघ	मघा
फाल्गुन	पूर्वाफाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी

सुधार किमि होयगौ

है संसार अपार भिन्न रुचि जन समाजकी ।
निज मतिके अनुसार कथा मैं कहों आजकी ॥
बड़ी समस्या पेट भरनको है अनाजकी ।
लगी द्वेपकी खाज देश भरमें अकाजकी ॥
'कुल शेखर' लाज बचाय को भारतकौ प्रभु सोयगौ ।
जहँ वास करैं बगुला भगत तहँ सुधार किमि होयगौ ॥
या सरवर चहुँ ओर खड़े हिंसक मतवारे ।
दुखी मूक अतिदीन अनेकन मीन बिचारे ॥
भ्रष्टाचार बढ़ाय विकल जल-जीव नसे हैं ।
भरौ न इनकौ पेट भये उन्मत्त बसे हैं ॥
कहि 'कुलशेखर' इन खलनकौ मुखिया जग ते खोयगौ ॥
इमि भांति शुक्ल बगुलान ते अब सुधार किमि होयगौ ॥

गौतमीपुत्र सातकर्णि सातवाहन और शूद्रक विक्रमादित्य एक ही व्यक्ति था

[लेखक—म० म० श्री छज्जूरामजी शास्त्री विद्यासागर]

पुरन्दरबलो विप्रः शूद्रकः शस्त्रशास्त्रवित्।
धनुर्वेदं चौरशास्त्रं रूपके द्वे तथाकरोत्॥
सविपक्षविजेताभूच्छास्त्रैः शस्त्रैश्च कीर्तये।
बुद्धिवीर्ये वरे नास्य सौगताश्च प्रसेहिरे॥
तत्कथां कृतवन्तौ यौ कवी रामिलसोमिलौ।
तस्यैव सदसि स्थित्वा तौ मानं बहवाप्नुताम्॥
सतांमतः सोश्वमेधं कृतवानुरुविक्रमः।
वत्सरं स्वं शकान् जित्वा प्रावर्तयत वैक्रमम्।
भूयः समृच्छकटिकं दशाङ्कं नाटकं व्यधात्॥
व्यधात्तस्मिन्स्वचरितं विद्यानयबलोर्जितम्।
उपवेश्य निजं पुत्रं देवमित्रं निजासने।
वार्धके मुनि वृत्यैव नयन्कालं वनं ययौ॥
तस्याभवन्नरपतेः कविरात्मवर्ण्यः
श्रीकालिदास इति योप्रतिमप्रभावः।
दुष्यन्तभूपतिकथां प्रणायप्रतिष्ठां
रम्याभिनेयचरितां सरसां चकार॥
शाकुन्तलेन स कविर्नाटकेनाप्तवान्यशः।
वस्तु रम्यं दर्शयन्ति त्रीण्यन्यानि लघूनि च॥
(सम्राट् समुद्रगुप्त रचित श्रीकृष्णचरित-भूमिका)

अर्थात् इन्द्रके समान बलवान् शस्त्र और शास्त्रों का ज्ञाता शूद्रक ब्राह्मण हुआ। उसने धनुर्वेद चौरशास्त्र के ग्रन्थ और दो नाटक बनाये। किसी भी शत्रुको उसने बिना पराजित किये नहीं छोड़ा, बौद्ध लोग उसके बुद्धि और वीर्यको न सह सके। उसने अश्वमेधयज्ञ किया। और शकोंको जीत कर विक्रम संवत् चलाया। दशांकवाला मृच्छकटिक नाटक भी उसने बनाया या बनवाया था, जिसमें उसका चरित्र, लिखा गया। उसकी सभा में रामिल सोमिल और कालीदास आदि कवि रहे। रामिल सोमिलने मिलकर कोई शूद्रक कथा लिखी और कालिदासने सरस अभिज्ञान शाकुन्तल और तीन और रूपक लिखे। उसने अपने पुत्र देवमित्र को अपना राज्य दे दिया और स्वयं मुनिवृत्तिसे वनमें रहना पसन्द किया। सम्राट् समुद्रगुप्तके इस निर्भ्रान्त लेखसे शूद्रकका अस्तित्व सिद्ध हो गया। अब कोई भी शूद्रकको काल्पनिक व्यक्ति नहीं कह सकता। यही क्यों, देखिये महाकवि बाण अपने हर्ष चरितमें शूद्रकके सम्बन्ध में यों लिखता है। 'दूरीचकार चकोरपतिं शूद्रकदूतः चन्द्रकेतुं जीवितात्।' अर्थात् शूद्रकके दूतने चकोरपति चन्द्रकेतुको पराजित कर दिया। दण्डीने भी अवन्तिसुन्दरी कथामें शूद्रकके सम्बन्धमें पर्याप्त लिखा है।

पुराशौनक इत्यासीदश्मकेषु द्विजोत्तमः।
इन्द्राणीगुप्त इत्यासीद्यं प्राहुः शूद्रकं बुधाः॥

अर्थात् जो पहले शौनक ऋषि था वह अब अश्मक (विदिशा) में शूद्रक नामसे प्रसिद्ध हुआ। समुद्रगुप्त के लेखानुसार पुष्यमित्रका पुत्र अग्निमित्र भी बौद्धोंका शत्रु नर्मदाके दक्षिणी प्रान्त विदिशाका राजा और अश्वमेधयज्ञका कर्ता था। और क्षीर स्वामीने भी लिखा है—

"शूद्रकः अग्निमित्राख्यः।"

तथापि कई कारणोंसे हम शूद्रकको अग्निमित्र नहीं कह सकते क्योंकि अनेक शिलालेखोंसे यह अब सिद्ध हो गया है कि अग्निमित्रका राज्यकाल विक्रमसंवत्से लगभग ६० वर्ष पूर्व अवश्य था, न कि ईशासे। पुराणोंमें पुष्यमित्र तथा अग्निमित्रके अनेक पराक्रमों एवं अश्वमेध यज्ञका वर्णन हुआ है, परन्तु नया संवत् चलानेका कहीं भी संकेत नहीं। मृच्छकटिक तथा पद्मप्राभृतके आभ्यन्तरिक प्रमाण तो शूद्रकको अग्निमित्र सिद्ध करनेमें अत्यन्त

ही बाधक हैं। जो हम आगे दिखायेंगे। फिर शूद्रक कौन था? गौतमपुत्र शातकर्णि सातवाहन, गौतमी बालश्री इसकी माताका नाम है। जैसा कि नासिक लेखमें इसी सम्बन्ध में लिखा गया है।

राजराजय गौतमी पुत्रस्य, हिमवन्मेरुमन्दरपर्वतसमसारस्य, असिक अस्मक विदर्भाकरावन्तिराजस्य, सह्यमलयमहेन्द्रचकोरपर्वतपतेः क्षत्रियदर्प मानमर्दनस्य शकयवनपह्लव निषूदनस्य क्षहरातवंशनिशेषकरस्य विनिवर्तित चातुर्वर्ण्यसंकरस्य, सातवाहन कुल प्रतिष्ठापनकरस्य,

इस लेखके पर्वतोंके नामोंसे गौतमी पुत्रका दक्षिणापथका स्वामी होना पाया जाता है। इसके समयमें आंध्र राज्य पूर्ण उन्नति पर था। इसने राजपूताना गुजरात और मध्यभारतके क्षत्रियोंका मानमर्दन किया था। शक यवन पह्लवोंको मारा था। क्षहरात भी इसी वंशका था और नहपान भी इसी वंशका था। इसने चारों वर्णोंके सांकर्य को हटा दिया था। सूर्यवंशको रघुवंशकी तरह इसने आन्ध्रवंशको अपने सातवाहन नामसे प्रचलित किया था। यह प्रजाके सुख-दुःखमें सदा भाग लेता था। इसका दक्षिण हस्त दानके जलसे सदा भीगा रहता था, इत्यादि। गौतमीका पुत्र होनेके कारण यह गौतमीपुत्र कहलाया। और महेन्द्र दीपकर्ण या सातकर्णका पुत्र होनेसे सातकर्णि कहलाया। कथासरित्सागरमें इसको महेन्द्रादित्य का पुत्र लिखा है। महेन्द्र सातकर्णको महेन्द्रादित्य भी कहते होंगे, इसीलिए इस गौतमीपुत्रका भी एक जन्म नाम विक्रमादित्य था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके पुत्र कुमारगुप्तकी भी महेन्द्रादित्य उपाधि थी और उसके पुत्र स्कन्दगुप्तकी विक्रमादित्य। कथासरित्सागर बृहत्कथाका अनुवाद है। सागरकारने 'यथा मूलं तथैवतन्नमनागप्यति क्रमः' लिखा है परन्तु उसने 'विक्रमादित्य इत्यासीद्राजा पाटलिपुत्रके' लिखकर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यका भी निर्देश किया है। यह लेख बृहत्कथामें नहीं हो सकता। गौतमी पुत्र सातकर्णि ही कुन्तल सातकर्णि भी कहलाता होगा। क्योंकि इसकी प्रतिष्ठान राजधानी कुन्तलजनपदान्तर्गत है। बाण ने कादम्बरीमें शूद्रकको विदिशा (भेलसा) का राजा लिखा है। अभी भेलसा से एक लेख वाशिष्ठीपुत्र सातकर्णिका मिला है, संभवतः वह इसी गौतमीपुत्र सातकर्णि शूद्रकके पुत्र वाशिष्ठीपुत्रका होगा। चकोर पर्वतके अधिकारमें होना नासिक लेखमें आया है। बाणसे भी शूद्रकके दूत द्वारा उसका शूद्रक के अधिकारमें होना सिद्ध होता है। देखिये कादम्बरी में शूद्रकके सम्बन्धमें—'यस्मिन्नित जगति महींशासति, चित्रेषु वर्णसंकरा न प्रजासु' यह लिखा है। नासिक लेखमें भी गौतमीपुत्रके लिए 'विनिवर्तितचातुर्वर्ण्य संकरस्य' लिखा है। नासिक लेखमें भी गौतमीपुत्रको राम, कृष्ण-भीमार्जुनके सामान बली महान् दानवीर और प्रजाका सब दुःख हरने वाला लिखा है, और शूद्रकका भी कादम्बरीमें 'पर दुःख भञ्जन और दानवीर' होना लिखा है। अमरकोशकी टीकामें क्षीरस्वामीने शूद्रकके पर्यायवाचकशब्द किसी प्राचीन कोशसे उद्धृत किए हैं:—

'विक्रमादित्यः साहसांकः शकान्तकः शूद्रकस्त्वग्निमित्रो वा हालः स्यात्सातवाहनः' ये सब नाम एक ही व्यक्तिके गुण कर्म भेदसे माने गये प्रतीत होते हैं। भगवान् विष्णु के सहस्र नाम हैं, उन्हींके तुल्य पराक्रमी राजाके अनेक नाम रक्खे जाना असम्भव नहीं। पुराणोंके अनुसार सर्वप्रथम आन्ध्रराजा शिमुकने कण्ववंशी राजा सुशर्माको मार कर ई० सन् लगभग ५० वर्ष पूर्व अपने राज्यकी स्थापना की थी। कुछ विद्वान् शिमुकको ही शूद्रक मानते हैं। पर यह संभव नहीं, क्योंकि फिर उसके रूपकोंमें रुद्रदामा और कातन्त्र व्याकरणका नाम कैसे आ गया। इस का पुत्र शातकर्ण हुआ। इसने अपनी राजधानी पेठन (प्रतिष्ठान) बनाई, तभीसे पेठन आन्ध्रोंकी राजधानी होती चली आई है। ये सब आन्ध्र राजा ब्राह्मण थे। समुद्रगुप्त ने शूद्रकको ब्राह्मण ही माना है। कालिदासने भी रघुवंश में यही ध्वनित किया है— एतन्मुनेर्मानिनि सातकर्णेः पंचाप्सरो नाम विहारवारि'। यही नहीं नासिक लेखमें भी गौतमी बालश्रीने अपने पुत्रको श्रेष्ठ ब्राह्मण कहा है। ई० सन् से ८७।५८ वर्षोंसे पूर्व ही मालव लोग आकर पूर्वी मालवा और अवन्ति (पश्चिमी मालवा) में बसे हुए मिलते

हैं। इनकी किसी कलहवश उत्तमभद्रों (जो अजमेर प्रांत में रहने वाले चत्रिय थे) के साथ भिड़न्त हुई। मालवोंने उनको स्वयं या शिमुककी सहायतासे हरा दिया। जैसा कि प्राप्त शिला लेखों 'मालवानां जयः'इत्यादिकोंसे सिद्ध है। उन उत्तम भद्रोंकी जयके उपलक्ष्यमें मालवोंने कलि सं० ३०४४ में 'कृत'संवत्की स्थापना की। जो दो सौ तीन सौ वर्षों तक 'कृतसंवत्' नामसे पीछे 'मालवसंवत्' नामसे प्रचलित रहा। देखिये—-श्रीमालवगणाम्नाते प्रशस्ते' कृतसंज्ञिते' मालव सं० ४६१ और 'मालवानां गणस्थि-त्या याते शतचतुष्टये' ४, १, ३, मा० सं०।

कुछ समय बाद उज्जैनसे राजा गर्दभिल्ल द्वारा पराजित कालकाचार्य गर्दभिल्लको मरवानेके लिए शक-स्थान (सिन्ध) से पच्चानवे शकसेनाओंको और महाक्षत्रप राजवुल षोड़ाशको बुलाकर लाया। राजवुलने गर्दभिल्लको हरा कर भगा दिया। वह कहीं बनोंमें जाकर मर गया। लगभग १३ वर्ष बाद मालवोंने प्रतिष्ठानके राजकुमार गौतमीपुत्रको अपनी सहायताके लिए बुलाया। गौतमीपुत्र ने पच्चानवे शकसेनाओंके सहित राजवुलको जीत लिया, सन्धिमें उसकी कन्या विनयवती (इनेन्दु) को लिया, और उससे विवाह कर लिया। राजवुल पर प्रसन्न होकर गौतमीपुत्रने उसको मथुराका राज्य दे दिया। उज्जैनमें राजवुलने कुल १३ वर्ष राज्य किया था। षोड़ाश राजवुल का पुत्र था, मथुरामें दोनोंने दो पीढ़ी तक राज्य किया। भाण्डारकरके अनुसार वि० सम्वत् २०६ तक वहां षोडाश का राज्य था। कालिदासके ज्योतिर्विदाभरणमें इसी विक्रम के सम्बन्धमें निम्न श्लोक लिखा गया होगा।

येनास्मिन् वसुधातले शकगणान्सर्वादिशःसंगरे।
हत्वा पंचनवप्रमान् कलियुगे शाकप्रवृत्तिःकृता॥

९५ शक सेनाएं और शक राजा राजवुलके पराजयसे शकोंका ह्रास हो गया। इसी उपलक्ष्यमें यह शाक संवत् चलाया गया था। ज्योतिर्विदाभरणमें एक पद्य और दिया है-

'यो रूमदेशाधिपतिं शकेश्वरं जित्वा समानीय'

हेमचन्द्र कोशमें रूमा-पंजाब सिन्धका नाम लिखा है और डा० विलसनने भी यही माना है। सिन्ध पहले रूम देश भी कहलाता होगा। सातवाहन विक्रमने रूम (सिन्ध) देशके शक राजा राजवुलको हराकर उज्जयिनीमें छोड़ दिया होगा। अलबेरूनीने स्पष्ट लिखा है- 'सातवाहन विक्रमादित्यने शक राजाको कोरूरके पास हराया और उस उपलक्ष्यमें उसने शक संवत् चलाया। वराहमिहिर, ब्रह्म-गुप्त, भट्टोत्पल आदि ज्योतिष ग्रन्थकारोंने विक्रमादित्यो-त्पादित विक्रमसंवत् यही माना है। सम्राट् समुद्रगुप्तने भी तभी तो—'वत्सरं स्वं शकान् जित्वा प्रावर्तयत वैक्रमम्' ऐसा लिखा होगा। क्योंकि मालव संवत् तो तब तक वैक्रम सं० कहलाने ही नहीं लगा था। यहाँ यह भी जान लेना चाहिए कि क्षीरस्वामीसे उद्धृत नामोंके अतिरिक्त एक नाम 'हर्ष' भी इसीका था। राजतरंगिणीका निम्न पद्य इसी के सम्बन्धमें है—

तत्रानेहस्युज्जयिन्यां श्रीमान् हर्षापराभिधः।
एकच्छत्रश्चक्रवर्ती विक्रमादित्य इत्यभूत्॥

गौतमीपुत्रने राजवुलको हरा कर मथुरा भेज दिया था। और उज्जनको अपनी दूसरी राजधानी बना ली थी। देखिए— इसके सिक्कों पर उज्जैनका चिह्न होता है। तभी तो यहां 'तत्रानेहसि' (उस समय) लिखा है। पहलेसे तो वह प्रतिष्ठानका राजा है। राजतरंगिणीकी गणनासे हर्ष विक्रमका समय विक्रमका द्वितीयशतक आता है। जो प्रकरणमें ठीक बैठता है। इसके राज्यकालमें उज्जयिनीमें मातृगुप्त कवि आया, उसकी कविता पर प्रसन्न होकर इस हर्षने उसको कश्मीरका राजा बना दिया था। यह बात गौतमीपुत्र (शूद्रक) के राजकवि रामिलने बतलाई है—

'काश्मीरं नव्यकाव्यं किमपिरचयितुर्दत्तवानप्रमन्नम्?

इस बातका समर्थन सम्राट् समुद्रगुप्तने भी अपने कृष्ण चरितमें किया है—

'मातृ गुप्तो जयति यः कविराजो न केवलम्।
काश्मीरराजोप्यभवत्सरस्वत्याः प्रसादतः॥

कुछ विद्वान् मातृगुप्तको स्कन्दगुप्त विक्रमका सभ्य मानते हैं। वह उनकी निरी भूल है, क्योंकि मातृगुप्तके सम्बन्धमें, तो अभी स्कन्दगुप्तके पड़दादा समुद्रगुप्त ने लिखा है—किंबहुना शिलालेखों ताम्रपत्रों और ग्रन्थों के आभ्यन्तर प्रमाणोंसे गौतमीपुत्र सातवाहन ही प्रथम एवं असली विक्रमादित्य सिद्ध होता है। एक लेख बिना संवत्का मिला है—उसमें लिखा है—४१ संवत्

से ४६ तक नहपानने राज्य किया, पीछे उसको गौतमी पुत्र सातकर्णिने मार डाला। डा. भाण्डारकरका मत है कि यह संवत् निःसंदेह विक्रमी है, यहां एकका अंक गलती से रह गया, १४१ से १४६ होना चाहिए था। यह बात प्रसिद्ध भी है कि गौतमी पुत्रने नहपानको मारकर उसके सिक्कों पर अपनी मोहरें लगवा दी थीं। नासिक लेख में भी स्पष्ट लिखा है—'खहरातवंशनिरशेषकरस्य।' नहपान बड़ा ही अत्याचारी था। मृच्छकटिकमें संभवतः इसीके सम्बन्धमें 'अपापानां सहस्राणि हन्यन्ते च हतानि च' लिखा गया है। एक जैन सूत्रके भाष्यमें भद्रबाहुने निम्न पद्य दिए हैं —

भरूकच्छपुरेत्रासीद्भूपतिर्नरवाहनः (नहपान)
इतः प्रतिष्ठानपुरे नृपतिः सातवाहनः।
रुरोध नगरं तस्यं श्रीहालो मन्त्रिभिः सह।
बलेन महता भूयः सकुलं तं व्यनाशयत॥

इन श्लोकोंमें भी गौतमीपुत्र सातकर्णि और सात-विक्रम एक ही व्यक्ति सिद्ध होता है। कथासरित्सागरमें विषमशील विक्रमके वर्णनमें उसको म्लेच्छों (शकयवन पल्हव आदि) का ही अन्तकर्ता लिखा है न केवल शकों का। नासिक लेखमें गौतमीपुत्रको भी 'शकयवनपल्हव निषूदनस्य' लिखा है। सौराष्ट्र देशके भरूकच्छ नगरको नहपानसे जीतकर गौतमीपुत्र सातवाहनने वह नगर अपने व्याकरण-गुरु शर्व वर्माको दे दिया था और राजकुलके सहायक लाट राजाको जीतकर लाट देशका राज्य अपने योग्यभृत्य वीरवरको दिया था। गौतमीपुत्र शूद्रक विक्रमा दित्यकी उम्र कथासरित्सागर, वेतालपचीसी, मृच्छकटिक आदि ग्रन्थोंके प्रमाणोंसे सौ वर्षकी थी और राज्य काल ५० वर्ष। वेतालपचीसीका विक्रमसेन यही गौतमीपुत्र शूद्रक था और विक्रमसेन इसका पुत्र देवमित्र उपनामक वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावी था। गौतमीपुत्रने वि० सं० १८५ के लगभग पुलुमावीको राज्य दे दिया था। गौतमीपुत्रकी वाशिष्ठी बहन थी, उसीका पुत्र पुलुमावी इसने अपना दत्तक पुत्र अथ च उत्तराधिकारी बना दिया था। कुछ विद्वानोंका यह मत है—गौतमीपुत्र मुनिवृत्तिसे रहते थे, चटाई पर सोया करते थे, ४० वर्ष तक राज्य करके तपस्या करने वनमें चले गए थे। इनके पिता महेन्द्र दीपकर्ण या सातकर्ण भी इसी तरह इसको राज्य देकर वनमें चले गये थे। देखिये कथासरित्सागर—

वनं याते दीपकर्णि क्षितीश्वरे,
संवृत्तः सार्वभौमोसौ नृपतिः सातवाहनः।

सागरमें दीपकर्णि पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है 'दीप-कर्णेक्षितीश्वरे' होना चाहिये। देखिये गाथा सप्तशतीका अन्तिम भाग—"इतिश्रीमत्कुन्तल जनपदान्तर्गत प्रतिष्ठान पत्तनाधीश-मलयवती-प्राणप्रिय-दीपकर्णोपनामक सातकर्णात्मज - सातवाहननरेन्द्र-निर्मिता - रूप्तशत्य-वसान-मगात्।" कथासरित्सागरके विषमशीललम्बकमें विषम-शील विक्रमकी एक पत्नीका नाम मलयवती लिखा है। सातवाहनकी भी पत्नीका नाम मलयवती है। गौतमीपुत्र के साथ सातकर्णि विशेषण लिखा मिलता है। सातवाहन के भी साथ इतिश्री सातकर्णेः सातवाहनस्य (गाथासप्तशती) 'कुन्तलः सात कर्णिः सातवाहनो महादेवीं मलयवतीं जघान (वात्स्यायनकामसूत्र)। कथासरित्सागरके विषमशीललम्बकका विक्रम ही गौतमीपुत्र शूद्रक था। क्योंकि शूद्रकका एक मित्र मूलदेव (कर्णीसुत) अपनी एक कथा इसी शूद्रक विक्रमको सुनाता है। शूद्रक भी अपने मृच्छकटिकमें मूलदेवका शर्विलकरूपमें और पद्मप्राभृतमें मूलदेवनामसे वर्णन करता है। वात्स्यायन कामशास्त्रका दत्तकाचार्य भी यह मूल-देव ही है। यह पाटलीपुत्रका निवासी था। गौतमीपुत्र शूद्रकका विक्रमादित्य नाम प्राचीन ग्रन्थकार भी जानते थे।

तभी तो शार्ङ्गधरने 'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि' यह मृच्छ-कटिकका पद्य विक्रमादित्यके नामसे उद्धृत किया है। गौतमी-पुत्र शूद्रकके सभा कवि कालिदासका विक्रमोर्वशीय नाम रखना स्वामीके विक्रमनामको सिद्ध करता है। रामिल और सोमिल भी इसीके सभाकवि थे। मालविकाग्निमित्रमें भास सौमिल कविपुत्र (रामिल) का नाम आता है परन्तु अपने स्वामी शूद्रकका नाम नहीं लेता। कालिदास मृच्छकटिक नाटक और पद्मप्राभृतको शूद्रककृत नहीं मानता। संभवतः वे दोनों ग्रन्थ अपने स्वामी शूद्रकके नामसे सोमिलने बनाये होंगे, नहीं तो फिर सोमिलका नाटक कौनसा है, जिससे वह प्रथितयशा हुआ।

तभी तो उसमें 'लब्ध्वाचायुः शताब्दं दशदिनसहितं

शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः ।' 'चकार सर्वं किल शूद्रको नृपः' इत्यादि लिखा है । गाथा सप्तशती भी श्रीपालितने संगृहीत की थी । तभी तो उसमें अपने नामसे विक्रमादित्य और शालिवाहन की स्तुति है । अपनी स्तुति आप कौन करता है ।

कविपुत्र तो रामिलका ही दूसरा नाम है । उसका नाटक मणिभद्र है । रामिलका गुरु शंकरेन्द्र स्वामी था जो मातृगुप्तके आश्रित भर्तृमेण्ठका भी साहित्यविद्या गुरु था । रामिलने उसको सम्राट् हर्षका परम मित्र माना है । यथा—
हर्षक्षोणिरतेश्च हर्षमतुलं दृष्ट्वैव येतानिपुः ।
धीरांस्तान् गुरुशंकरेन्द्रयमिनः चित्ते स्मरन् रामिलः ॥

यह हम पीछे भी दिखा चुके हैं कि 'हर्ष' भी एक नाम गौतमीपुत्र सातवाहनका ही था । गौतमीपुत्र सातवाहनके गुरुके कातन्त्रव्याकरणका नाम पद्मप्राभृतमें आया है—'न नो वैयाकरणपारशवेषु कातन्त्रिकेष्वास्था' । और वहां पर हीवाशिष्ठी पुत्रका भी नाम आया है, वाशिष्ठीपुत्र निःसन्देह वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावी ही होगा, क्योंकि पद्मप्राभृतके निर्माताने सम्भवतः सोमिलने या गौतमीपुत्र शूद्रकने ही वाशिष्ठीपुत्रका भी चरित्र लिख दिया होगा । यथा—'समर्थितो वाशिष्ठीपुत्रेण-विटशब्दः' । मृच्छकटिकमें 'रुद्रो राजा' ऐसा लिखा है, कहते हैं कि यह 'रुद्र' निश्चयसे ही चष्टनका पौत्र 'रुद्रदामा' है, जिसका निश्चित समय १५० ई० है । तो मृच्छकटिक इसी समयके लगभग बना होगा । गुणाढ्यने भी अपनी बृहत्कथा सातवाहनको ही समर्पितकी थी । बृहत्कथाका भी निर्माण समय लगभग यही है । विक्रम सं० १९६ में टालेमी विद्यमान था । उसने पुलुमावीकी राजधानी अपने समयमें प्रतिष्ठान लिखी है । पुलुमावीके समकालीन होनेसे उसका लेख कम महत्वका नहीं है । उसने चष्टनको भी जो रुद्रदामाके दादा थे, पुलुमावीका समकालीन लिखा है । चष्टन महाराज कनिष्कका गवर्नर था । चष्टनने पुलुमावीके समय लगभग १३० में उज्जैन पर चढ़ाई की थी । काश्मीरके राजा प्रवरसेनकी सहायतासे पुलुमावी जीत गया । चष्टन हार गया । सन्धिमें रुद्रदामाकी कन्या ली और उससे विवाह कर लिया । काह्नेरीसे एक लेख मिला है, वह वाशिष्ठीपुत्र श्री सातकर्णिकी रानीका है—वह महाक्षत्रप रुद्र—(रुद्रदामा) की कन्या थी । एक दूसरा लेख जूनागढ़ से मिला है—उसमें लिखा है—रुद्रदामाने दक्षिणके राजा सातकर्णि पुलुमावीको दो बार परास्त किया । परन्तु निकट सम्बन्धी जानकर जानसे नहीं मारा । इससे उपर्युक्त बात की पुष्टि होती है । रुद्रदामाने दूसरी बार उसको हराकर उज्जैनका राज्य खोसलिया होगा, और वह केवल प्रतिष्ठानमें राज्य कर रहा होगा । डालेमीके अनुसार १९६ वि० के लगभग रोमनके भी एक लेखक ने वि० २१० में पुलुमावीका पैठनमें राज्य करना लिखा है ।

स्कन्द पुराणमें शूद्रकके सम्बन्धमें लिखा है—
त्रिषु वर्षसहस्रेषु कलेर्यातेषु पार्थिवः ।
त्रिशतेषु दशन्यूनेष्वस्यांभुवि भविष्यति ।
शूद्रको नाम वीराणामधिपः ॥

यह समय वि० सं० २४६ होता है, गौतमीपुत्र दीर्घजीवी होनेके कारण तब तक जीते रहे हों । नासिकलेख में—"हिमवन्मलयमन्दरपर्वतसमानसारस्य, रामकृष्णार्जुन भीमसदृशस्य" गौतमीपुत्रके लिये लिखा गया है । इससे भी गौतमीपुत्र ही शूद्रक सिद्ध होता है । वीर विक्रमादित्य भी असली यही था । वेतालपचीसी, सिहासनबत्तीसी आदि ग्रन्थोंमें इसीके अलौकिक चरित्रोंका चित्रण हुआ है । गुणग्राही दानवीर और प्रजा दुःख भञ्जन तो आज तक कोई भी नृप ऐसा 'न भूतो न भविष्यति' न हुआ न होगा ।

यही नहीं यह विद्वान् भी पूर्ण था । देखिये इसके सम्बन्धमें कथासरित्सागर---

'इत्यमृष्यवतारोयं नृपतिः सातवाहनः ।
दृष्टे स्वटयखिला विद्याः प्राप्स्यत्येव न संशयः ॥'

कुछ ऐतिहासिक वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावीको शूद्रक मानते हैं । परन्तु उसमें शूद्रक जैसी वीरता, शाकसंवत्का चलाना, विद्वत्ता, सातवाहनसे अभिन्नता आदिगुण नहीं हैं । ये सब गुण तो गौतमीपुत्रमें ही थे । और कथासरित्सागर में त्रिविक्रमसेन पुलुमावीको वेताल शूद्रक कथा सुनाता है, फिर यह कैसे संभव हो सकता ।

प्रश्न—पुराणोंमें सातवाहन (हाल) को आंध्रवंशका सत्रहवां राजा माना है । और गौतमीपुत्रको बाईसवां फिर दोनोंकी एकता कैसे ? उत्तर-पुराणोंमें आन्ध्रराजाओंके राज्य कालके वर्ष तो लिखे हैं, वेभी अशुद्ध, परन्तु उनका

पूर्वापर क्रम ठीक नहीं लिखा, कोई आगेका पीछे, कोई पीछेका आगे, कोई वही व्यक्ति नाम भेद करके दोबारा लिख दिया गया है। भविष्यपुराणके अनुसार तीन हजार चवालीस (३०४४) में कोई विक्रमादित्य इतिहाससे सिद्ध नहीं होता, न ही उस-समय शकोंकी किसी शाखाका भारतमें आना सिद्ध होता है। भारतमें शकोंकी दो ही शाखाओंका आगमन मिलता है। राजवुल नहपान और लिअक आदि लगभग समकालीन थे। इन सबका पराजय गौतमीपुत्रने किया था। चष्टन रुद्रदामा रुद्रसिंह दूसरी शाखाके थे, इनका अन्त चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने किया था। भविष्यपुराण, प्रबन्धकोश आदिके कर्त्ताओंने मालव विक्रम सं०के अनुसार उसका प्रवर्तक विक्रमादित्य स्वयं घड़ लिया है। बहुत ऐतिहासिक गौतमीपुत्रको ही मालवसंवत् प्रवर्तक मानते हैं, वह निरी भूल है, क्योंकि गौतमीपुत्र तो सातवाहन विक्रम था। जिसने १३५ वि०में शकोंको हराकर उनका हाससूचक शाक (शालिवाहन) संवत् चलाया था। शूद्रक भी यही था। यदि यह ई० सन्से ५७ वर्ष पूर्व होता तो इसके ग्रन्थ मृच्छकटिक और पद्मप्राभृतमें रुद्रदामा, कातन्त्रव्याकरण और वाशिष्ठीपुत्रका नाम कैसे आ जाता। रुद्रदामाके वंशधर रुद्रसिंह आदि गुजरात काठियावाड़ और सौराष्ट्रमें रहते हुए उज्जैन आदिका भी राज्य करते थे। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने ई० सन् ३६३ वि० (४२०) के लगभग चढ़ाई करके सौराष्ट्र और मालवेको जीत लिया था और भारतसे शकोंका नाम तक मिटा दिया था। उस समय रुद्रसिंह तृतीय वहां राजा था। शकोंका अन्त कर देनेसे ही चन्द्रगुप्त विक्रमका एक नाम शकारि भी पड़ गया था। जैसे कि लिखा भी है—

'ख्यातिं कामपि कालिदासकवयो नीता शकारातिना।
"अरिपुरे च परकलत्रकामुकं कामिनीवेशः चन्द्रगुप्तः शकपतिमपातयत्"

इस हर्षचरित कथाका भी सम्भवतः इसी चढ़ाईसे तात्पर्य है। मि० स्मिथने लिखा है कि इसने सारे भारतको जीता था, और उज्जैनको भी पश्चिम प्रांतकी राजधानी बना दिया था। इस जयके उपलक्ष्यमें इसने विक्रमादित्य पदवी धारण की होगी। कुछ भ्रान्त ऐतिहासिक अब तक भी इसी चन्द्रगुप्त विक्रमको सर्वप्रथम तथा असली विक्रमादित्य मानते हैं। परन्तु अब इस भ्रान्तिका सर्वथा निवारण कर दिया गया है। कथासरित्सागरकारने भी दो विक्रमादित्योंका स्पष्ट उल्लेख करके इस भ्रमका निवारण कर दिया था, पर विद्वान् दोनोंका पृथक् पृथक् स्वरूप नहीं समझते थे। कथासरित्सागरका पाटलीपुत्र विक्रमादित्य यही चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य था।

यह संस्कृतका विद्वान् तथा संस्कृत विद्वानोंका महान् आश्रयदाता था। इसका राज्यकाल संस्कृतका स्वर्णयुग माना जाता है। भोजने लिखा है—

के भूवन् नाढ्यराजस्यकाले प्राकृतिभाषणः,
केनर्श्रीसाहसांकस्य काले संस्कृतभाषिणः ॥

कालिदास आदि नवरत्न इसीकी सभाके थे। ये नवरत्न निम्नलिखित पद्यमें दिखाये गये हैं।

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशंकु
वेतालभट्टघटखर्पर-कालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरोनृपतेः समायां
रत्नानि वै वररुचिर्नवविक्रमस्य ॥

१. धन्वन्तरि—धन्वन्तरि उपाधिधारी हरिश्चन्द्र वैद्य। महेश्वरने अपने कोशमें इसका यों परिचय दिया है- 'श्री साहसांकनृपतेरनवद्यवैद्यः।' २. क्षपणक- जैन मतावलम्बी सिद्धसेन दिवाकर। ३ अमरसिंह- पहले इसका नाम दुर्गसिंह था। इस विक्रमने इसको अमरसिंहकी उपाधि दी थी। सर्ववर्मा के कातन्त्र व्याकरणकी दुर्गवृत्ति और अमरकोष इसीके हैं। ४. शंकु—भरतसूत्र टीकाकार शंकुक, लाघवसे छन्दमें शंकु लिख दिया है। ५. वेतालभट्ट- रुद्रयामलतन्त्र का कर्त्ता, यह पाटलीपुत्रका रहने वाला था। ६. घटखर्पर- एतत्काव्यरचयिता। इसीकी प्रतिद्वन्द्वितामें कालिदासने 'नलोदय' काव्य बनाया था। कालिदास द्वितीय- इसका असली नाम हरिषेण था। कालिदास इसकी उपाधि थी। देखिए सम्राट् समुद्रगुप्तका कृष्णचरित—

हरिषेणकविर्वाग्मी शास्त्रशस्त्रविचक्षणः।
यशोऽलभेत काव्यैः स्वैर्नानाचरितशोभनैः ॥
काव्येन सोध रघुकार इति प्रसिद्धो।
यः कालिदास इतिलब्ध महार्हनामा ॥
चत्वार्यन्यानिकाव्यानि व्यदधाच्चलघूनि सः।
प्राभावयच्च मां कर्तुं कृष्णस्य चरितं शुभम् ॥
यही द्वितीय कालिदास नवरत्नोंमें कालिदास था।

इसने रघुवंश, मेघदूत, कुमारसम्भव, ऋतुसंहार, नलोदयं, काव्य लिखे थे और इसीने एक ज्योतिषका ग्रन्थ ज्योतिर्विदाभरण लिखा था, परन्तु समुद्रगुप्तके मरनेके बाद यह ग्रन्थ बना होगा। यह भी प्रसिद्ध है कि कालिदास दीर्घजीवी था। वह स्कन्दगुप्तके बाद तक जीवित रहा। रघुवंश में उसने गुप्त राजाओंका पूर्ण उदय और अन्तमें ह्रास भी दिया है। उसने व्यंजनावृत्तिसे अपने काव्यमें गुप्त राजाओं का उल्लेख किया है। ह्यूनशांगने यह भी लिखा है कि दिङ्नाग भी इस कालिदासका समकालीन था। सर्वप्रथम कालिदासका नाम भारविके साथ वि० सं० ६९१ के शिलालेखमें खुदा मिला है। सीलोनकी कथाओंमें प्रसिद्ध है कि वहां के राजा कुमारदासने इस कालिदासको अपने यहां बुलाया था। वहां जाने पर कुछ समय बाद दोनोंकी अति घनिष्ठ मैत्री हो गई। अकस्मात् वहीं पर कालिदासकी मृत्यु हो गई। कुमारदास भी उसी चितामें जल कर मर गया। पराक्रम बाहुचरितसे भी इस बातकी पुष्टि होती है। महावंशके अनुसार कुमारदासकी मृत्यु वि० सं० ५८१ में हुई थी। कुमारदास भी कवि था। उसने जानकीहरण बड़ा सुन्दर काव्य लिखा है। दोनोंकी मैत्रीका होना सम्भव है। उसने लिखा भी है—

जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति।
कविः कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमः॥

ज्योतिर्विदाभरणकारने स्पष्ट लिखा है—

काव्यत्रयं सुमतिकृद्रघुवंशपूर्वं।
जातं ततो ननु कियच्छ्रुति कर्मवादः॥
ज्योतिर्विदाभरणकाल विधानशास्त्रं।
श्रीकालिदासकवितो हिततो बभूव॥

और—

मत्तोऽधुना कृतिरियं सति मालवेन्द्रे।
श्रीविक्रमार्कनृपराजवरे समासीत्॥
यद्राजधान्युज्जयिनी महापुरी।
सदा महाकालमहेशयोगिनी॥

चन्द्रगुप्त विक्रम भारतसम्राट् होते हुए मालवेन्द्र भी माना जाता होगा। मि० स्मिथके कहे अनुसार उसने अपनी दूसरी राजधानी उज्जयिनी भी बना ली थी। यह कालिदास दशपुर (मन्दसौर) का रहने वाला था। और शूद्रक काश्मीरका रहा होगा। राजशेखरके कथनानुसार तीन कालिदास हुए हैं और तीनों ही श्रृंगारी। जैसे कि उसने कहा है—

नैकोपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।
श्रृंगारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु॥

तीसरा कालिदास पद्मगुप्त परिमलका समकालीन था, जो भोजके पिता सिन्धुलविक्रमका राजकवि था। अस्तु।

चन्द्रगुप्त विक्रमका राज्यकाल ई० ४१३ वि० ४७० तक निश्चित है, परन्तु ज्योतिर्विदाभरणका निर्माण समय उसने ३०६८ कलिवर्ष दिया है। और यह भी लिखा है कि यह ग्रन्थ मैंने वराहमिहिरादिके मतानुसार लिखा है।

८—वराहमिहिर भी नवरत्नोंमें से एक था।

कहते हैं वराह मिहिर सूर्यके वरदानसे बाल्यकालमें ही पूर्ण ज्योतिषी हो गया था, वह १२५ वर्षकी उम्र भोग कर मरा। वह तीस-चालीस वर्षकी उम्रमें ही चन्द्रगुप्त विक्रमकी सभामें रहा होगा। उसने अपनी संहिताका निर्माण समय ५६२ वि० संवत् लिखा है। कालिदास और वराहमिहिरका सम्पर्क दोनोंके दीर्घजीवी होनेसे हो सकता है। परन्तु ज्योतिर्विदाभरणका निर्माण समय उसने किस गणनासे दिया है यह समझमें नहीं आता। हमारी सम्मत्ति में ज्योतिर्विदाभरणके कुछ अन्तिम श्लोक प्रक्षिप्त हैं। पीछे से किसी ज्योतिषीने बनाकर मिला दिये होंगे। पं० सुधाकर जीने लिखा है कि ज्योतिर्विदाभरणका कर्त्ता कालिदास वि० सं० ग्यारहवें शतकमें रहा होगा। परन्तु यह भूल है। एक विद्वान् पुरुषका ऐसा लिखना सम्भव नहीं। वह रघुवंशादि काव्यत्रयको अपनी रचना कैसे बतला सकता था। उनका निर्माता तो समुद्रगुप्त के लिखे अनुसार हरिषेण कालिदास था ही। ९—वररुचि यह कवि था। उसने पत्र कौमुदी और विद्यासुन्दर आदि कई ग्रन्थ लिखे हैं। पत्र कौमुदीमें इसने लिखा है—

विक्रमादित्यभूपस्य कीर्त्तिसिद्धेर्निदेशतः।
श्रीमान्वररुचिर्धीमांस्तनुते पत्रकौमुदीम्॥

इसने विद्यासुन्दरमें कालिदासका भी नाम दिया है। सुबन्धु इसकी भगिनीका पुत्र था।

'सारसवत्ता विहता नवका विलसन्ति चरति नोकंकः
सरसीवकीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये।'

यह उसका विलाप चन्द्रगुप्त विक्रमके ही सम्बन्धमें था। यह चन्द्रगुप्त विक्रमका पुत्र कुमारगुप्त उपनाम महेन्द्रादित्य था। इसका राज्यकाल वि० ५२० तक था। इसका पुत्र स्कन्दगुप्त क्रमादित्य या विक्रमादित्य हुआ। यह भी अपने दादाकी तरह बड़ा ही वीर था। पहली बार हूणों को इसीने पराजित किया था।

हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां
धरा कम्पिता।

कथा सरित्सागरमें एक कथा लिखी है—

"एक समय उज्जैनमें महेन्द्रादित्य नामक राजा राज्य करता था। उसके समय भारत पर म्लेच्छोंने अपना अधिकार बढ़ाना आरम्भ किया, परन्तु उसके पुत्र विक्रमादित्यने उनका नाश कर डाला।" इस कथाका और कुमारगुप्तके भिटारी और जूनागढ़के लेखोंका भाव बिलकुल मिलता हुआ है। अतः इस कथाका सम्बन्ध क्या इन्हीं दोनोंके समय से है। नहीं ?

घुणाक्षर न्यायसे यह कथा दोनों तरफ लग सकती है। अन्यथा तो यह सिद्ध होगा कि बृहत्कथाकार तथा कथासरित्सागरकारके मतमें इन दोनोंसे प्रथम विक्रम कोई था ही नहीं, परन्तु यह सम्भव नहीं, क्योंकि ई० सन् प्रथम शतीकी गाथा सप्तशतीमें भी विक्रमादित्यका वर्णन मिलता है। विषमशील विक्रमलम्बकमें मूलदेवका वर्णन है, वह शूद्रक विक्रमका ही मित्र था। शूद्रकने मृच्छकटिक और पद्मप्राभृतमें भी मित्ररूपेण मूलदेवका वर्णन किया है। हम पीछे दिखा चुके हैं कि मृच्छकटिकका एक पद्य शार्ङ्गधरने विक्रमादित्यके नामसे उद्धृत किया है। कालीदास के विक्रमोर्वशीय नामकी भी उपपत्ति फिर कैसे हो सकती है। उसमें जगह जगह पर 'महेन्द्रेण कृतः कुमारस्यायुषोऽभिषेकः', 'अनुत्सेको हि विक्रमालंकारः' इत्यादि रूपसे व्यंजना शक्ति द्वारा महेन्द्र सातकर्णि और गौतमी पुत्र शूद्रक विक्रमका नाम लिखा गया है। हां निरभिमानताके कारण गौतमीपुत्र शूद्रक अपनेको विक्रमादित्य नहीं कहते लिखते होंगे। वे लोकमें शालिवाहन (सातवाहन) नामसे ही प्रख्यात हो गए। शनैः २ उनका विक्रमादित्य नाम लोग भूलते चले गए। चन्द्रगुप्त विक्रम की प्रसिद्धिके कारण लोग चन्द्रगुप्त विक्रमको ही सर्वप्रथम मानने लगे और दूसरे स्कन्दगुप्तको। स्कन्दगुप्त उपनाम पुरगुप्तका पुत्र द्वितीय कुमारगुप्त उपनाम नरसिंहगुप्त था। दशपुर (मालवा) के सूर्य मन्दिरका जीर्णोद्धार इसी 'द्वितीय कुमार गुप्तके समयमें हुआ था। इस नरसिंहगुप्त बालादित्य के राज्य पर तोरमाणके पुत्र मिहिरकुलने अधिकार कर लिया था परन्तु फिर बालादित्य नरसिंहगुप्तने उसको हराकर भगा दिया। मन्दसौरसे तीन लेख यशोधर्माके मिले हैं।

एकमें लिखा है—

"चूडापुष्पोपहारैर्मिहिरकुलनृपेणार्चितं पादयुग्मम्"

अर्थात्—यशोधर्मन्के पैरों पर प्रतापी राजा मिहिरकुल को भी सिर झुकाना पड़ता था। वि० सं० ५९६ के लगभग यशोधर्माने मिहिरकुलको हराकर अपनेको उत्तरी भारत का सम्राट् घोषित किया होगा। इसी समय गुप्त साम्राज्य की समाप्ति हुई। राजतरंगिणीकारने मिहिरकुलका समय गलतीसे बहुत पहले लिख दिया है। इसकी राजधानी स्यालकोट थी। यशोधर्मन्के अन्य भी नाम थे। शिलादित्य धर्मादित्य और विष्णुवर्द्धन भी इसीको कहते थे। इसका भाई भट्टिभर्तृ या भर्तृहरि था। इसने भट्टिकाव्य और भर्तृहरिशतकत्रय ग्रन्थ लिखे। इनका पिता धरसेन था, जिसको लोग गन्धर्वसेन कहते हैं। वलभी के सभी राजा शैव तथा सूर्यवंशी थे। यह बात इनके अनेक लेखों से स्पष्ट है। भर्तृहरिने भी शतकत्रयमें तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे' लिखकर अपनेको शैव सिद्ध किया है। और भट्टि काव्यमें सूर्यवंशी श्रीरामका उसने चित्रण किया है। यशोधर्मन् वलभीसे चलकर दशपुरमें आया और अपनी वीरतासे वहांका गणतन्त्रराष्ट्रपति बन गया। वहां के तत्कालीन राजा मिहिरकुलको हरा कर अपने विजयस्तम्भ गड़वाये और उज्जयिनीको अपनी राजधानी बनाकर 'वीर विक्रमादित्य' पदवीधारण की। मालवगणने इस पर सन्तुष्ट होकर मालव सं० ६०१ में मालवगणसे प्रचालित कृत या मालव संवत्का इसके विक्रम नाम पर विक्रम संवत् नाम रख दिया। डा० कीलहार्नके कथनका भी यही तात्पर्य है। तबसे वह सम्वत् आज तक बराबर विक्रम सं० कहलाता जा रहा है। सं० के ही लिहाजसे अनभिज्ञ लोग इस विक्रम को ई० ५७ वर्ष पूर्व घसीटकर ले जाते हैं।

भाग्य फल

[श्री पं० नेमिचन्द्रजी शास्त्री ज्योतिषाचार्य]

श्रावण मासमें जन्मे व्यक्तियोंका फलादेश

इस मासमें उत्पन्न हुए व्यक्ति अधिक भावुक और संवेदनशील होते हैं। इनकी इच्छा और अनिच्छा दोनों ही उत्कट हुआ करती हैं और वे बहुधा मनःस्थितिके प्रवाहमें प्रवाहित होते रहते हैं। कभी-कभी ये अपनी भावुकताके कारण दूसरोंके लिये कष्ट-दायक भी हो जाते हैं। घर तथा परिवार इन्हें अधिक प्रिय होता है। इस मासमें जन्मे व्यक्ति परिवर्तनको अधिक पसन्द करते हैं। नवीन सुधार और क्रान्ति इन्हें प्रिय होती है परन्तु अन्ततोगत्वा निन्दाके भयसे ये सुधारसे मुंह मोड़ लेते हैं, इनकी अन्तरात्मा अधिक बलिष्ठ नहीं होती; शरीर इनका साधारणतः बलिष्ठ होता है, स्वभाव से मिलनसार होते हैं, किन्तु कृष्ण-पक्षमें जन्मे व्यक्ति शुक्ल पक्षमें जन्मे व्यक्तियोंकी अपेक्षा अधिक मिलनसार होते हैं।

जिनका जन्म श्रावण कृष्ण प्रतिपदाको ११ घटी ३० पल इष्ट काल पर होता है वे व्यक्ति बड़े भाग्यशाली और धर्म-प्रचारक होते हैं।। ये जगत्में एक नई क्रान्ति करते हैं और साधारण जनताके लिये एक आदर्श मार्ग चलाते हैं, पर इसी दिन जिनका जन्म १७ घटी ३५ पल इष्ट काल पर होता है वे संसारके लिये कष्ट-दायक होते हैं। प्रायः इस समयमें उत्पन्न हुए व्यक्ति डाकू, चोर और व्यभिचारी होते हैं, इनकी आजीविका हिंसाके प्रधान साधनोंसे होती है। जिन व्यक्तियोंका जन्म ३१ घटी ५४ पल इष्ट काल पर होता है वे पक्के राजनीतिज्ञ होते हैं। शासन व्यवस्था चलानेमें पटु होते हैं। श्रावण कृष्णा द्वितीयाको अनुराधा नक्षत्रमें ११ घटी ४६ पल इष्ट काल पर जिन व्यक्तियोंका जन्म होता है वे निश्चितरूपसे डाक्टर, प्रोफेसर, स्पीकर और लेखक होते हैं। साधारणतः इस दिन उत्पन्न हुए व्यक्ति कविता-प्रेमी होते हैं, २५ घटी ३७ पल इष्टकालके पश्चात् जन्म लेनेवाले निश्चित कवि होते हैं, ये अनेक भाषाओंमें कविता करते हैं। इनकी प्रतिभा विलक्षण होती है तथा कभी-कभी ये पक्के दार्शनिक बन जाते हैं। अनुभव बतलाता है कि इसमें ग्रहोंकी स्थिति ऐसी होती है जिससे इस महीनेमें उत्पन्न हुए व्यक्ति

यह भी विक्रम अन्य विक्रमोंकी तरह बड़ा ही वीर था। इसने हूणोंको जड़से उखाड़कर विक्रम सं० ६६७ तक अखण्ड भूमण्डलका राज्य किया था। इसका भूतपूर्व धर्माध्यक्ष पुष्करनिवासी नागस्वामीका पुत्र हरिस्वामी या हरि था। उसने वाक्यपदीय, पाणिनि सूत्रभाग वृत्ति, और शतपथ-ब्राह्मणका भाष्य ग्रन्थ लिखे थे। उसने अपनी भाष्य वृत्तिमें भट्टिके एक पदको अशुद्ध लिखा है। इत्सिङ्गने जिस भर्तृहरिकी मृत्यु ई० सन् ६५१ वि० ६०७में लिखी है वह यही था। वाक्यपदीय कारिकाएं हरि-कारिकाएं ही कहलाती हैं। इत्सिंगको इन दोनोंका पृथक् पृथक् ज्ञान नहीं हुआ। क्योंकि विक्रमके भाई भर्तृहरि और उसके भागिनेय धारानरेश गोविन्द (गोपीचन्द) तो अमर थे। हरिने अपना समय शतपथ भाष्यके अन्तमें दिया है—

श्रीमतोऽवन्तिनाथस्य विक्रमस्य क्षितीशितुः।
धर्माध्यक्षो हरिस्वामी भाष्यं कर्तुं समारभे॥
यदाब्दानां कलेर्जग्मुः सप्तत्रिंशच्छतानि वै।
चत्वारिंशत्समाश्चान्याः तदा भाष्यमिदं कृतम्॥

ह्यूनसांगने भी शिलादित्य (यशोधर्मन् की अवन्ति) पश्चिम मालवाका ही नरेश लिखा है। निःसंदेह यशोधर्मन् ही हरिस्वामीका विक्रमादित्य था।

सफल दार्शनिक या नैयायिक नहीं बन सकते हैं। हाँ, यद्वा-तद्वा रूपसे दार्शनिक हो सकते हैं। अंग्रेजी ज्योतिषके गोचर सिद्धान्तके अनुसार ज्ञात होता है कि श्रावण कृष्णा ७ और शुक्ला १३ को उत्पन्न हुए व्यक्ति गणितज्ञ और वैज्ञानिक होते हैं तथा इन्हीं तिथियोंमें उत्पन्न हुए व्यक्ति ज्योतिर्विद और वैदिक भी होते हैं। पाश्चात्य ज्योतिर्विदोंने श्रावणमें उदय होने वाली ताराओंका परीक्षण कर बतलाया है कि इस मासमें जन्मे व्यक्ति संस्थाओंके अधिष्ठाता, जहाजोंके कप्तान, घर सजानेवाले और पारिवारिक आवश्यकताकी वस्तुओंके व्यापारमें कुशल व्यवसायी होते हैं। इनका स्वभाव झक्की होता है, सदा इन्हें अपनी बात ही सच्ची जंचती है। श्रमजीवी (मजदूर) विभागमें काम करने वाले इस मासके व्यक्ति कार्य कुशल होते हैं, कलाके ये मर्मज्ञ होते हैं। ये अपने अधिकारीकी सदा उपेक्षा करते रहते हैं और अवसर मिलने पर अधिकारियोंके विरोधमें बगावत भी करते हैं।

पूर्वीय ज्योतिषके अनुसार इस मासमें उत्पन्न हुए व्यक्ति दलाल, पुरानी वस्तुओंके विक्रेता, शिक्षक, डाक्टर और कवि अथवा लेखक होते हैं। जो व्यक्ति मैनेजर हों, उन्हें सदा घरेलू वस्तुओंके व्यवसायकी मैनेजरी करनी चाहिये, इसमें उन्हें अच्छी सफलता मिलनेकी सम्भावना है। पराशरका मत है कि इस मास वाले व्यक्ति कल्पना-शील होनेके कारण बड़े बडे व्यवसायोंकी स्कीम सुन्दर बना सकते हैं, तथा सफल प्रबन्धक हो सकते हैं। किंतु अपने तुनुकस्वाभावके कारण कभी कभी इन्हें बड़ी भारी हानि उठानी पड़ती है। इनका स्वभाव नम्र होनेके साथ-साथ क्रोधी भी होता है। अपनी आलोचना और निंदा इन्हें जरा भी पसन्द नहीं होती है। सदा ये अपनी हलचलमें ही लगे रहते हैं। घी का व्यवसाय यदि ये करें तो इन्हें अच्छा लाभ हो सकता है।

गृह निर्माणके कार्यमें इस मासमें उत्पन्न हुए श्रमजीवी विशेष सफल हो सकते हैं और शिल्प-कलामें पूर्ण योग्यता भी प्राप्त कर सकते हैं। परिश्रम और व्यवसाय करनेमें ये किसीसे पीछे नहीं रहते कुछ लोग इनके, अनुयायी भी बन जाते हैं।

जैनाचार्य नारचन्द्रका मत है कि इस मासमें उत्पन्न हुए व्यक्ति साहसी और कार्यकुशल होते हैं। अपने ऊपर किसीका अंकुश सहन नहीं करते, व्यवसायमें सदा उच्चश्रेणीके रहते हैं। यदि किसी विभागके मैनेजर या अधिकारी हो जाते हैं तो उस कार्यको बड़ी योग्यताके साथ संभालते हैं, अधिकांश उन्नति इस मास वाले व्यक्तियोंकी सहयोगियों पर आश्रित रहती है। इनका स्वभाव कुछ झक्की होता है और "क्षणे रुष्टा, क्षणे तुष्टा" वाली कहावत इनके साथ लागू होती है। बुद्धिमान् और भावुक होनेके साथ-साथ भयभीत भी इस मास वाले व्यक्ति होते हैं, रातमें अकेले कहीं आना जाना इन्हें अधिक भयप्रद होता है। इनका मस्तिष्क ४० वर्षकी आयुके पश्चात् कुछ विकृत सा हो जाता है तथा अपने झक्की स्वभाकके कारण कुछ अप्रिय हो जाते हैं। सामान्यतया समस्त जीवन पर दृष्टि डालनेसे ज्ञात होता है कि इस मास वाले व्यक्ति उद्योगी और परिश्रमी होते हैं। इनका जीवन मन्थर-गतिसे उन्नतिकी ओर बढ़ता चला जाता है। कृष्ण पक्षकी १, २, ४, ७, ८, ९, ११ और १२ तिथियोंमें जन्म-लेनेवाले व्यक्ति प्रायः नौकरी करते हैं। यदि कदाचित् व्यवसाय करते भी हैं तो इन्हें पूर्ण सफलता नहीं मिलती है। कृष्ण-पक्षकी अवशेष तिथियोंमें जन्मलेनेवाले व्यक्ति व्यवसायमें अधिक सफल होते हैं। यदि कदाचित् नौकरी करते हों तो भी इन्हें नौकरी छोड़ कर व्यवसाय ही करना चाहिये। शुक्ल-पक्षकी १, २, ५, ८, ११, १२ और १३ तिथियोंमें उत्पन्न हुए व्यक्ति व्यापारी अच्छे हो सकते हैं। तथा ११ और १३ तिथियोंमें जन्म ग्रहण करनेवाले मिल मालिक हो सकते हैं, अवशेष शुक्ल-पक्षकी तिथियोंमें जन्मलेनेवाले नौकरीमें ही लाभ उठा सकते हैं।

विवाह और मित्रता—श्रावण मासमें जन्म लेनेवाले व्यक्तियोंका विवाह ९, १२, १४, १६, १७, १८, २०, २१, २४, २६, २८, ३२ और ४२ वर्षकी आयुमें होता है। जिनका जन्म कृष्ण-पक्षकी १, २, ३, ५, ८, ११, १२ और ३० तिथियोंमें होता है उनका विवाह युवावस्थाके प्रारम्भमें ही हो जाता है तथा इनका दाम्पत्य-जीवन सुखमय बीतता है। किसी किसीका मत है कि कृष्ण-पक्षकी ३, ५, ८ तिथियोंके उत्तरार्धमें जन्म लेने वाले व्यक्तियोंके दो या तीन विवाह भी होते हैं तथा इनकी पत्नियाँ चतुर और सुन्दर

होती हैं। ये व्यक्ति अपनी भावुकताके कारण कुट्टिनी स्त्रियोंके पंजेमें भी फंस जाते हैं, तथा आचरण हीन बन जाते हैं। शुक्ल-पक्षको २, ६, १०, १२, और १५ को जन्म लेने वाले व्यक्तियोंका विवाह प्रायः छोटी आयुमें हो जाता है। शुक्ल-पक्षकी अवशेष तिथियोंमें जन्म लेनेवाले व्यक्तियोंका विवाह प्रौढ़ावस्थामें होता है।

जिनका जन्म श्रावणी पूर्णिमाको होता है उनके विवाह प्रायः दो होते हैं और इस दिन जन्मे व्यक्ति अधिक कामुक भी होते हैं, जिनका जन्म इस मासकी किसी भी तिथिको १६ घटी ४७ पल इष्ट काल पर होता है उनका विवाह प्रायः नहीं होता है। इस मास वाले व्यक्तियोंके मित्र कम होते हैं तथा इनके रूक्ष व्यवहारके कारण शत्रु अधिक होते हैं। इनके शत्रुओंकी संख्या ३० तक हो सकती है, जो इन्हें समय-समय पर हानि पहुंचा सकते हैं। रूक्षी स्वभावके कारण इनके मित्र भी इनसे तंग रहते हैं। और हार्दिक मित्रता रखने वाले इनके लिये बहुत कम होते हैं। कभी कभी ये अपने व्यवहारके कारण अनेकों मित्र बना लेते हैं, परन्तु थोड़े दिनोंके बाद वे सब मित्र इनका साथ छोड़ देते हैं और कारणवश शत्रुका कार्य्य करने लगते हैं। जिन व्यक्तियोंका जन्म कृष्ण-पक्षकी ११ को हो तथा इस दिन रोहिणी नक्षत्र हो तो ये व्यक्ति बहुत मिलनसार होते हैं, इनसे इनके परिवारके लोग सन्तुष्ट और प्रसन्न रहते हैं।

शुक्ल-पक्षकी १० को जन्मे व्यक्ति व्यवहार कुशल होते हैं और अपनी चतुराईके कारण जहाँ रहते हैं वहाँके वातावरणको अपने अनुकूल बनाये रखनेका प्रयत्न करते हैं। यदि इस दिन जन्मे व्यक्ति किसी शिक्षा-संस्थामें प्रविष्ट हो जायँ तो निश्चितरूपसे ये उस संस्थाकी उन्नति कर सकते हैं। शिक्षा-प्रिय होनेके साथ साथ ये सदाचार-प्रिय भी होते हैं और अवसर मिलने पर इस दिशामें अधिक प्रगति कर सकते हैं।

अच्छा और बुरा समय—इस मासमें उत्पन्न हुए व्यक्तियों की १७, १८, १९, २२, २४, २६, २८, २९, ३१, ३२, ३३, ३४, ३६ ३८, ४१, ४४, ४५, ५४, ५५, ५६, ५७, ५९, ६४, ६४, ६६, और ७० वें वर्षोंमें विशेष उन्नति होती है और इन्ह ीं वर्षोंमें इनके भाग्यका सितारा चमकता है। १५, १६, २०, २१, २३, २५, २७, ३०, ३२, ३९, ४७ और ६३ वें वर्षोंमें कुछ आर्थिक कष्ट रहेगा। जिन व्यक्तियों की मेष, मिथुन, कर्क और तुला राशियां होती हैं, वे इस मास वाले व्यक्ति ३१ वें वर्षकी आयुमें सुख और शान्ति प्राप्त करते हैं। उनका समय इस आयु से अच्छा व्यतीत होने लगता है। प्रायः इस मासमें उत्पन्न व्यक्तियोंको ३४ वर्षकी आयुमें अशुभ ग्रहों का प्रभाव अनिष्टकर होता है। अतः इस समय दानादि द्वारा अशुभ ग्रहोंकी शान्ति करनेसे उनका प्रभाव न्यून होता है।

घातक वर्ष—श्रावण मासमें उत्पन्न हुए व्यक्तियों को जन्मसे ३, ५, ६, ७, ८, और ११ वें मास कष्ट कारक होते हैं; जिनका जन्म अश्विनी, मघा, अश्लेषा, रोहिणी और श्रवणमें होता है वे व्यक्ति प्रायः अल्पायुवाले होते हैं। १, २, ३, ५, ७, ९, १०, ११, १४ १६, १७, १९, २०, २४, २६, २८, २९, ३०, ३५, ३८, ४५, ४७ ४९, ५४ ५६, ५७, ६२, ६४, ६८, ७२ और ७५ वें वर्षमें रोग उत्पन्न होता है। इस मास वाले व्यक्तियों को बालारिष्ट रहता है। अतः जन्मसे लेकर ८ वर्ष की आयु तक नाना प्रकारके रोग होते रहते हैं। २३, २८, ३२, ३६, ३८, ४७, ४९, ५४, ५८, ६४ और ७२ वें वर्षमें विशेष रोग उत्पन्न होते हैं। जिनका जन्म कृष्ण पक्षकी २, ३, ५, ११, १४ को होता है उन्हें २८ वें वर्ष में विशेष रोगका सामना करना पड़ता है, तथा जिनका जन्म शुक्ल-पक्षकी १, २, ४, ८, १२, १५, को होता है, उन्हें जन्मसे लेकर ११ वर्षकी आयु तक प्रायः कष्ट रहता है और ५४, ५८, एवं ६४ वें वर्ष विशेष कष्टमय व्यतीत होते हैं।

जीवनका विकास—श्रावण मासमें उत्पन्न हुए व्यक्तियोंके जीवनका विकास २३ वें वर्षसे आरम्भ होता है। २८ वें और ३७ वें वर्ष विशेष महत्वपूर्ण होते हैं। इन दोनों वर्षोंमें अनुकूल साधनोंके मिलने पर ये अपने जीवनका शारीरिक मानसिक आर्थिक एवं आध्यात्मिक विकास अच्छी तरहसे करते हैं। ४५ वर्षकी आयुसे लेकर ५३ वर्षकी आयु तकका समय विशेष सावधान रहनेका है। इतने समयमें अनेक उत्थान और पतन व्यक्तिके सामने आते हैं। यदि इस समयका व्यक्ति सदुपयोग कर लेता

है तो उसका जीवन सदाके लिए सुख-मय हो जाता है। इस मास वाले व्यक्रियों पर अन्यका प्रभाव कुछ नहीं पड़ता है, स्वतन्त्र विचारक होनेके कारण ये स्वयं ही अपने पुरुषार्थ द्वारा अपने मार्गको प्रशस्त करते हैं। ३१ वां वर्ष प्रायः परिवर्तनशील रहता है। इसमें घबड़ाना नहीं चाहिए। जो व्यक्रि ३१ वें वर्षको अच्छी तरह बिता देते हैं। उनका भाग्योदय पूर्णरूपसे ३७ वर्षकी आयु तक अवश्य हो जाता है। ३१ वें वर्षमें इस मासमें जन्मे व्यक्रियोंके समक्ष कुछ ऐसी परिस्थितियां आती हैं जिससे विकास रुक जाता है।

कुछ व्यक्रि १८ वें वर्षकी आयुमें विकासकी ओर बढ़ते हैं, किन्तु २३ वें वर्षकी आयु तक उनके समक्ष केतुका प्रभाव रहनेसे अनेक बाधाएं आती हैं। जिससे उन्नतिके समस्त मार्ग रुद्ध हो जाते हैं। इसीलिए इस मास वाले व्यक्रियोंको १८ वर्षकी आयुसे लेकर २२ वर्षकी आयु तक दृढ़ अध्यवसाय करना चाहिए, जिससे उन्नतिके मार्ग रुद्ध न हों। यदि अपने स्वभाव में इस मास वाले व्यक्रि कुछ सुधार कर लें तो इनकी सारी कठिनाइयाँ दूर हो सकती हैं। ईमानदार और सच्चरित्र होना अत्यावश्यक है।

अनुकूल समय—माघ फाल्गुन और श्रावण ये तीन मास श्रावणमें जन्म लेने वाले व्यक्रियोंके लिए शुभ दायक होते हैं। अगहन और कार्तिक अधिक अनिष्टकर होते हैं, तथा अवशेष मास सामान्यतया अच्छे होते हैं। रविवार और सोमवार इस मासमें जन्मे व्यक्रियोंके लिए विशेष सिद्धिदायक होते हैं। संक्रान्ति आरम्भ होनेका समय विशेष लाभदायक होता है। तिथियोंमें २, ३, ६, ७, ११, १३ अधिक शुभ होती हैं।

सन्तान सुख - इस मासमें उत्पन्न हुए व्यक्तियोंको संतान सुख अच्छा होता है। जिनका जन्म रविवारको १७ घटी ४६ पल इष्टकाल पर होता है उन्हें ७ पुत्र और २ कन्यायें; इसी दिन १६ घटी २० पल इष्टकाल पर होता है उन्हें सन्तानाभाव, २१ घटी ४१ पल इष्टकाल पर होता है उन्हें ४ कन्यायें और २ पुत्र; २६ घटी ३१ पल इष्टकाल पर होता है उन्हें ४ पुत्र और ७ कन्यायें, २४ घटी ३० पल इष्टकाल पर होता है उन्हें ३ पुत्र और २ कन्याएँ। ३२ घटी ५४ पल इष्टकाल पर होता है उन्हें १ पुत्र और एक कन्या। ३७ घटी ४३ पल इष्टकाल पर होता है उन्हें ४ पुत्र ३ कन्यायें। ३६ घटी १४ पल पर होता है उन्हें ५ पुत्र और ४ कन्यायें। ४४ घटी ५८ पल पर होता है उन्हें सन्तानाभाव, ५१ घटी ३७ पल पर होता है। उन्हें २ पुत्र ५ कन्याएँ एवं ५५ घटी इष्टकालसे अधिक इष्टकाल पर जिनका जन्म होता है उन्हें साधारणतः ५ सन्तानें होती हैं।

सोमवारको १६ घटी १६ पल इष्टकाल पर जन्म लेने वाले व्यक्रियोंको संतानभाव और इससे कम या अधिक इष्टकाल पर जन्म लेने वाले व्यक्रियोंको संतानाभाव और इससे कम या अधिक इष्टकाल पर जन्म लेने वाले व्यक्रियोंको सन्तानसुख होता है। प्रायः अधिकसे अधिक ११ सन्तान और कमसे कम ४ सन्तानें होती हैं। मंगलवार को २३ घटी ४८ पल इष्टकाल पर जन्म लेने वाले व्यक्रियोंको सन्तान सुखका अभाव और इससे कम या अधिक इष्टकाल पर जन्म लेने वाले व्यक्रियोंको अच्छा सन्तान सुख होता है। बुधवारको ११ घटी १४ पल इष्टकाल पर जन्म लेने वाले व्यक्रियोंको सन्तानाभाव और इससे अधिक इष्टकालमें जन्म लेने वाले व्यक्रियों को पूर्ण सन्तान-सुख होता है। गुरुवार और शुक्रवार को ४१ घटी ५२ पल इष्टकाल पर जन्म लेने वाले व्यक्तियों को सन्तान सुखका अभाव या अल्प सन्तान सुख। इससे अधिक व कम इष्टकाल पर जन्म लेने वाले व्यक्रियोंको पूर्ण सन्तान सुख होता है। शनिवारको जन्म लेने वाले व्यक्तियोंको सामान्य संतान-सुख होता है। श्रावण मासकी १, २, ३, ४, ६, ८, १०, ११, तिथियोंमें जन्म ग्रहण करने वाले व्यक्तियोंको संतान सुख साधारण होता है। अवशेष तिथियोंमें जन्मे व्यक्तियोंको अच्छा संतान सुख होता है।

आर्थिक स्थिति—इस मासमें जन्मे व्यक्रियोंकी आर्थिक स्थिति मध्यम श्रेणीकी होती है। इनका प्रधान व्यवसाय व्यापार होता है। नौकरीमें थोड़ी आय होती है। १६, २२, २६, ३०, ३५, ३८, ४०, ४२, ४८, ५२, ५४, ५७, ५६, ६२, ६३, ६७ वें वर्षोंमें आय अधिक

और १८, २०, २१, ४०, ५३, ५५, ५६ वें वर्ष धन नाश करने वाले होते हैं।

श्रावण मासमें उत्पन्न हुई नारियोंका फलादेश

इस मासमें उत्पन्न हुई नारियां योग्य माता और गृहिणी होती हैं। इनमें मातृत्व-भावना अधिक प्रबल रहती है, इन्हें बाल-बच्चे अधिक प्रिय होते हैं, कारण इस मास की नारियां अपना सारा समय संतानके सुख चिंतनमें व्यतीत करती हैं। घर और परिवारकी प्रत्येक वस्तुसे इन्हें अधिक प्रेम होता है तथा यथासाध्य प्रत्येक कुटुम्बके सदस्यकी सेवाके लिये ये नारियां तैयार रहती हैं। इनका स्वभाव साधारणतः मिलनसार और विशेषतः झक्की होता है। मोह और माया इन नारियोंमें विशेषरूपसे पाई जाती है। घरेलू प्रबन्ध भी इस मास वाली नारियाँ अच्छा करती हैं। नर्स और डाक्टरी करनेमें ये निपुण होती हैं। इस मासकी कुछ नारियां सुन्दर और सुयोग्य लेखिकाएं होती हैं। शिक्षिकाका कार्य भी बड़ी निपुणतासे करती हैं। इनमें कामुकता और भावुकता दोनों ही अधिक रूप से विद्यमान रहती हैं। कभी-कभी इन्हें उपयुक्त कारणोंसे कष्टोंका भी सामना करना पड़ता है।

ये नारियां प्रायः संचयशीला होती हैं और पुरानी वस्तुओंके संग्रहमें इन्हें अधिक आनन्द आता है। इनका घरेलू जीवन प्रायः सुख मय बीतता है। पति इन्हें सुन्दर और शिक्षित मिलते हैं। शुक्ल-पक्षमें उत्पन्न हुई नारियां प्रायः शिक्षिता होती हैं। संगीत और चित्र-कलामें ये निपुणता प्राप्त कर सकती हैं। ये प्रायः धनी होती हैं और आमोद-प्रमोद इन्हें अधिक पसन्द होते हैं।

गुरुवार और मंगलवारको जिन नारियोंका जन्म होता है वे पुरुषोंके समान कठोर कार्य करनेमें समर्थ होती हैं। इस मासमें उत्पन्न होने वाली सभी नारियोंको संतान सुख होता है, किन्तु जिनका इस महीनेके किसी भी दिन २१ घटी ५६ पल इष्टकाल पर जन्म होता है वे प्रायः निःसंतान होती हैं। हां, इनमें एक विशेषता यह होती है कि ये अपनी बचन चातुरीसे बड़े-बड़े बुद्धिमान् व्यक्तियोंको भी मोहित कर लेती हैं। अनुशासन करनेकी क्षमता इनमें अधिक होती है। मालकिन और गृहस्वामिनीके पद पर आसीन होकर ये अच्छा कार्य कर सकती हैं। कृष्णपक्षकी नारियोंका चरित्र रहस्यमय होता है, तथा कोई दुराचारिणी भी होती है। परन्तु शुक्ल पक्षमें जन्म लेने वाली सभी नारियां सदाचारिणी और मधुर-भाषिणी होती हैं।

इस मासमें जिन नारियोंका जन्म शुक्र, बुध और सोमवारको १८ घटी ५३ पल इष्ट कालसे लेकर २६ घटी १६ पल इष्ट कालके भीतर होता है उन्हें प्रायः वैधव्य दुःख उठाना पड़ता है। प्रायः ये सुन्दर होती हैं; स्त्रियोचित गुण इनमें पर्याप्त मात्रामें पाए जाते हैं। इनके लिए १, ३, ५, ६, ७, ८, १०, १२, १३, १४, १५, १८, २२ २४, २५, २६, ३०, ३२, ३४, ३८, ४२, ४८, ४६, ५३, ५५, ६२, ६३, ६४, ६६ और ६७ वें वर्ष घातक होते हैं।

विवाह - इनका अगहन (मार्गशीर्ष) माघ, वैशाख, और आषाढ़ मासमें उत्पन्न हुए व्यक्तियोंके साथ विवाह होनेसे अधिक सुखमय जीवन होता है। क्वार (आश्विन) मासमें उत्पन्न हुए व्यक्तियोंके साथ विवाह होने से बराबर कलह रहता, तथा जीवनका वास्तविक आनन्द नहीं आता है। २२ वें और २५ वें वर्षकी आयुमें उन्हें सुख और शान्ति, अधिक मिलती है। जिनका जन्म कृष्ण पक्षमें २, ३, ५, को होता है वे नारियां माता पिताका सुख कम प्राप्त करती हैं।

—+—

सूक्ति सुधा

सरवन झलक कपोल लखि, अस उपमा हिय आन।
तिय-तन गढ़ प्रविस्यौ प्रतनु, छोड़ी उड़त निशान॥
तिल दिल भरे सनेह सों, तौलों पावत मान।
नेह बिहूने होत ही, खर कह सकल जहान॥
तिय इक बैनीकी डसन, बरनत कवि न बनैन।
अब त्रिबैनि निकसन लगीं, तीनहुँ लोक बचैन॥
राकापति दिनकर जलज, यदपि लगत छबि छीन।
मान इतौ या सों कविन, प्रिय मुख उपमा दीन॥
रोम, रोम छिटकत प्रभा, लखहि दीठि कस दीन।
पावस खंजन लौं स्वयं, भई आप में लीन॥

❀ मकर लग्न जातक ❀

[श्री अम्बालाल गोविन्दराम दवे बी. एस. सी.]

मकर राशि पहली राशि है जिसका स्वामी शनि है। इसके अतिरिक्त यह भी मेष, कर्क, और तुलाकी भाँति केन्द्र राशि है। अतः इसकी प्रबलता भी उन्हींके समान है। मेष, कर्क, तुला और मकर—ये चार ही राशिवृत्त की मुख्य राशियाँ हैं।

शनिदेव इस राशिके स्वामी हैं; अतः मकर लग्न वालोंके चेहरे पर एक शनि प्रभावित शून्य भाव प्रायः देखा जाता है। वे कदके लम्बे होते हैं। उनकी आँखें सुन्दर होती हैं और कमर पतली। मुख पर विचारशीलता व चैतन्यता नहीं झलकती। बुध, चन्द्रमाका चुलबुलापन उनमें नहीं होता और वे चुप और गम्भीर अधिक होते हैं। यदि विद्वान् हुए तो वे अति मननशील, आध्यात्मिक और अपनी अनोखी गम्भीरता लिये रहते हैं। उनकी चालमें एक शून्य-भाव होता है। शनिकी उदासीसे वे परिवेष्टित रहते हैं, किन्तु अन्य ग्रहोंकी अच्छी स्थिति होनेसे सुन्दर भी होते हैं।

वे अधिक आशावादी नहीं होते। भविष्यके रंगीन चित्र बनाना वे नहीं जानते और न कभी अपने भावोंमें ही बहते देखे जाते हैं। मेष वालोंमें तेजी और व्याकुलता होती है; कर्क वाले भावोंमें बहते जाते हैं और रोते रहते हैं। तुला वाले ऊंच, नीच का विश्लेषण करते हैं, किन्तु मकर वाले इन सब से ऊपर होते हैं। वे अति गंभीर, शान्त, और कार्यशील होते हैं। किसी न किसी कार्यमें वे तल्लीन रहते ही हैं। जितना श्रम मकर लग्न वाले कर लेते हैं किंचित् अन्य नहीं कर पाते हैं। वे किसी कामको आगे बढ़कर करनेमें पहले झिझकते हैं। उन्हें इसका डर बना रहता है कि कहीं कोई हँसी न उड़ाए अथवा कहीं वे गलत न साबित हों। इस भाँति उनके कितने ही जीवनके अवसर व्यर्थ चले जाते हैं, और वे आगे नहीं बढ़ने पाते। उन्हें इन असफलताओंका अधिक शोक भी नहीं होता। किन्तु जब उनमें लगनका भाव जाग्रत हो जाता है, तब वे अत्यन्त प्रयत्नशील हो जाते हैं। जिस लगनसे कार्य मकर लग्न वाले कर सकते हैं, अन्य कोई लग्न वाले नहीं कर सकते हैं। फिर उनके प्रयत्न उन्हें सफलता तक पहुंचा ही देते हैं। जिस भाँति अपनी असफलता पर अधिक शोक नहीं करते उसी भाँति सफलता पर भी अपने भावोंको नियमित रखते हैं वे कभी फूले फूले और डींग मारते हुए नहीं फिरते छोटी मोटी सफलतासे उन्हें शान्ति नहीं होती। वे स्थायी रूपसे सफल होना चाहते हैं और उसीके लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

जिस भाँति शनि धीरे धीरे चलता रहता है, ये लोग भी धीरे धीरे प्रयत्न करते रहते हैं और कभी हताश होकर नहीं बैठते। जहाँ ये लोग लगातार शारीरिक परिश्रम कर सकनेकी क्षमता रखते हैं, वहाँ बुद्धि व मस्तिष्कसे भी अविराम रूपसे कार्य कर सकते हैं। लिखने पढ़नेका कार्य वे बड़े धैर्यसे करते हैं। अपने इसी गुणसे वे अच्छे अनुसन्धानकर्त्ता, वैज्ञानिक और शास्त्री बन जाते हैं।

शनिके वर्णनमें कहा जा चुका है कि शनिका सम्बन्ध इतिहाससे है। अतः मकर लग्न वालोंको इतिहाससे, राजनीतिसे, साम्यवाद व समाजवाद आदिसे प्रेम होता है और इन विषयोंकी ओर उनकी विशेष रुचि पाई जाती है। वैसे अपनी लगनके कारण वे किसी भी विषयके शास्त्री बन सकते हैं।

शनिकी स्थिति अच्छी होनेसे वे बड़े आध्यात्मिक और सेवापरायण होते हैं और अपने सिद्धान्तोंको कभी नहीं छोड़ते; कष्टोंमें अडिग रहते हैं और किसीकी परवाह नहीं करते। शनि भौतिक ग्रह नहीं है और यदि वह प्रबल हुआ तो उन्हें बड़ा ही दार्शनिक, सादा और त्यागी बना देता है।

मकर लग्न वाले अति धैर्यशाली होते हैं। उनका उदाहरण यदि किसी पुरानी पहाड़ी व चट्टानसे दिया जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। एक उदासी मिली निराशाका आवरण उन पर पड़ा अवश्य रहता है, किन्तु वह सावधानी द्योतक है, निराशा और अकर्मण्यताका नहीं। वे अत्यन्त सहनशीलतासे किसी भी आक्रमणको सहन कर लेते हैं

और फिर अति सावधानीसे वार करते हैं। भले ही मेष, और धनु लग्न वालोंकी तेज़ी न हो, किन्तु वे ऐसे नपे-तुले होते हैं कि उनका धारावाही प्रवाह प्रबलसे प्रबल शत्रुको भी हटा कर रहता है।

कभी कभी वे बड़े अड़ियल सिद्ध होते हैं और अपनी बात छोड़नेमें तत्पर नहीं होते हैं। उनकी यह हठधर्मी वृष-लग्न वालोंसे मिलती है—अन्तर केवल इतना होता है कि वे मेष लग्न वालोंकी भाँति कभी भी भयानक रूप धारण नहीं करते। उनकी एक लटक होती है और एक चाल होती है।

वे अधिक भावुक नहीं होते और न कला तथा चित्र-कारीसे ही उन्हें विशेष प्रेम होता है। किंचित् वे जीवनमें इनसे भी अधिक महत्वकी वस्तु ढूंढते हैं और उसीके लिए लिए प्रयत्नशील रहते हैं। शनिकी प्रबलतामें वे उच्च विचारोंसे आकृष्ट होते हैं और वे उनमें बड़ी आशा संचार कर देते हैं। संसारके कुछ विख्यात सूक्ष्म द्रष्टा इसी लग्नमें हुए हैं। वे अधिक दिखावा पसन्द नहीं करते और अपनी प्रशंसा करना वे अधिक नहीं जानते क्योंकि उनकी सफलताका आदर्श अति ऊंचा होता है। वे वास्तविकता चाहते हैं और अपनी सफलताका निर्णय अपने-हृदयसे करते हैं, अन्य व्यक्तिसे नहीं। इसलिये वे मेष, कर्क और तुला राशिसे प्रभावित व्यक्तियोंसे कहीं अधिक संयमी, धैर्यवान् और वास्तविकतासे पूर्ण होते हैं।

उनके प्रयत्नों और उच्च विचारोंसे प्रेरित हो जनता उन्हें कभी कभी अपना विश्वासपात्र भी बना लेती है। और वे नेता बन जाते हैं। तब वे अपने अनुयायियों को किसी महान् लक्ष्यकी ओर ले जाते हैं और समय पड़ने पर कभी साथ नहीं छोड़ते। यदि शनि की स्थिति अच्छी न होगी तो इन गुणोंका प्रभाव भी कम होगा।

संक्षेपमें अति कर्मशील संयमी धैर्यवान् अतिशय प्रयत्नशील और गम्भीरता लिए होते हैं।

सूर्य अष्टमेश होने से अशुभ होता है।

चन्द्रमा सप्तमेश होनेसे शुभ होता है।

मङ्गल चतुर्थेश और एकादशेश होनेसे सम होता है।

बुध षष्टेश और नवमेश होनेसे सम होता है।

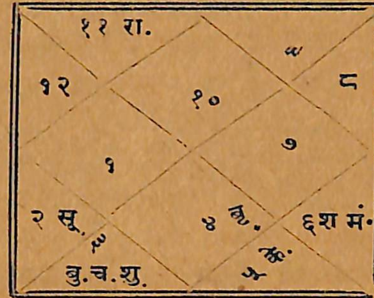
बृहस्पति द्वादशेश और तृतीयेश होनेसे अशुभ होता है।

शुक्र पंचमेश और दशमेश होनेसे शुभ होता है।

शनि लग्नेश और द्वितियेश होनेसे शुभ होता है।

नीचे महाराणा प्रताप और किसियन लिनाकस (बोटेनिस्ट) ×की कुण्डलियां दी जाती है। जिनमें ये गुण देखे जाते हैं:—

महाराणा प्रताप



फिलिग्रन लिनाकस (बोटेनिस्ट)



× आधुनिक 'बोटेनी' शास्त्रको रूप देने वाला स्वीडन का वैज्ञानिक।

—

"जय जय श्री राधारमन"

जै वृन्दावन-विपिन-विहरण ब्रज रखवारे।
नटवर नागर नंद-नंदन नैननके तारे॥
जै कालिन्दी कूल-केलि कल्लोल कमल कुल।
मोर मुकुट छबिधाम श्याम मोहनमुख मंजुल॥
करुणाकर 'कवि कृष्ण' जय विष्णु रूप अशरनशरन।
गोकुलेश गिरवरधरन जै जै श्री राधारमन॥

—कृष्ण कवि

—

विजयादशमीके राम

[ले०—श्री हरिकृष्ण मैत्रेय शास्त्री साहित्यरत्न]

कविकुल चूड़ामणि बाल्मीक जी धन्य हुए ।
प्रेम से बखान कर लीला राम नाम की ॥
तुलसी सरीके 'मित्र' अनेक अनेक बार ।
पारावार पार हुए नाव कर नाम की ॥
सुन्दर सुमन लिए राम राज्य स्वप्न बीच ।
गांधी गुण गाथा गाते राम गुण धाम की ॥
आज महा पुरुष की लीला पर पानी फेर ।
राम के बहाने लीला होती हराम की ॥१॥

इधर तो चार घण्टे चक्कर चढ़ाई माला ।
उधर समूल मेटी बेली भगवान की ॥
रामलीला नाम पर नग्न नृत्य हो जहां ।
विधि वहां बन जाती राम अपमान की ॥
लोक के हितार्थ 'मित्र' कला प्रदर्शन होता ।
नग्न नृत्य होना ही क्या विधि है कल्याण की ॥
हिन्दुत्व के अभिमानी बड़े भक्त ! कान खोलो ।
गन्दे गाने गाना ही क्या ? औषधी उत्थान की ॥२॥

सीखो लोकतन्त्रवाद सच्चा रामलीला ही से ।
धोबी कथन मात्र से भेजी बन जानकी ।
यज्ञ के बहाने राम शुद्ध साम्यवाद किया ।
पूंजीवाद मेटने को द्रव्य भूमिदान की ॥
कुत्ते के भी नाम पर खुला जहां न्यार द्वार ।
वहां आवश्यकता 'मित्र' रही क्या प्रमाण की ॥
हुए सुरनर नारी राम गुण बलिहारी ।
महिमा बखानूं क्या मैं राम गुण खान की ॥३॥

बन्धु प्रेम लेना हो तो लछमण भरत से लो ।
पितृभक्ति देखनी हो देखो लीला राम की ।
पुत्र से विशुद्ध प्रेम दशरथ सिखाता है ।
सिखाती है स्वामी भक्ति लीला हनुमान की ॥
कच्ची सीख मानने का बुरा परिणाम देखो ।
वही सीख जड़ हुई प्राणों के प्रस्थान की ।
पत्नी का पति से प्रेम सीखना चाहो तो सीखो ।
पतिव्रत धर्म मूर्ति प्रत्यक्ष है जानकी ॥४॥

अन्याय शिखर पर चढ़ा हुआ गिरता है ।
शिक्षा मृत्यु देती यह रावण महान की ॥
सर्व शास्त्र पारंगत ज्ञानी भक्त बली भी हो ।
सब ही को मेट देती मात्रा महामान की ॥
मर्यादा पुरुषोत्तम राम का व्यक्तित्व देखो ।
लीला गन्दी करो मत गुणों के निधान की ॥
राम लीला बन जाती हराम लीला होने से ।
आर्य हिन्दु संस्कृति के मिट्टी में मिलान की ॥५॥

सीख लो "साम्राज्यवाद" दिव्य लीला ही से ।
दिव्य लीला वपुधारी राम भगवान की ।
मिटाया रावण राज्य पर राज्य किया नहीं ।
राज्य सत्ता उस ही के भाई को प्रदान की ॥
तैल कोयला बाजार लेना क्या साम्राज्यवाद ? ।
भारतीय विधि बनी सभ्यता विधान की ॥
कुछ सोचो करो ध्यान यह तो नहीं उत्थान ।
मानव संहार ही क्या पटुता विज्ञान की ? ॥६॥

मेट आपने आपको मिटाने का है मूल्य क्या ।
इसमें मित्र बात क्या बनी है उत्थान की ।
वैज्ञानिक चमत्कार आज का प्रलयंकार ।
झलक है बारम्बार युद्धों के निदान की ।
स्वार्थ घन गर्जना में क्या है विद्युत प्रकाश ॥
ले रही विनाश श्वास बुद्धि बुद्धिमान की ॥
अभारतीय संवाद सभी बने हैं विवाद ।
एक भारतीयवाद विधि है कल्याण की ॥७॥

कुछ खोया नहीं

जिसने उर अंतरके मलको, सत साधनासे कभी धोया नहीं।
'कवि कृष्ण'जु' वासनाके विपरीत विशुद्ध विराग संजोया नहीं।
पल-एक भी प्रीतमके पथमें, अपना मन माणिक खोया नहीं।
फल पाएगा क्या वह अन्तमें रे जिसने पहिले कुछ बोया नहीं।

परीक्षोपयोगी लेख माला

[ले—श्री भगवतीस्वरूप 'कश्चित्']

वह युग समाप्त हुआ जब हिन्दी को 'डेडलैंग्वेज' कह कर लोग नाक सिकोड़ लेते थे तथा राष्ट्रभाषाके पदको सुशोभित करने वाली भाषाको पथोकड़ी भाषा कहने में भारत के ये काले अंग्रेज संकोच नहीं करते थे। यदि हम कभी राष्ट्र भाषा पढ़नेके लिए आग्रह भी करते तो लोग 'कंजरवेटिव' माइण्ड बताया करते, पर वाह रे, भाग्यचक्र! वे ही नकली अंग्रेज अब 'हिन्दी प्राइमर' रटते दिखाई देते हैं। पंजाब विश्वविद्यालयकी परीक्षाओंमें तो परीक्षार्थियोंकी संध्याकालीन तारों की भाँति प्रगति हो रही है बड़े-बड़े कोट सूट बूटधारी भी आज छिप छिपकर हिन्दी पुस्तकें पढ़नेके लिए आग्रह करते दीखते हैं। सत्य मानिए मैं अध्यापककी हैसियत से ही कह रहा हूं फर्स्ट आर्ट की संस्कृत हिन्दी पढ़ानेके लिए ५) रु० से अधिक देनेमें उन्हें हिच-किचाहट होती थी जो आज कहते हैं पंडित जी ५०) रु० ले लीजिये पर जल्दी से जल्दी हिन्दी लिखना पढ़ना सिखा दें। पर जैसे २ हमारे हिन्दी प्रेमियोंकी दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति हो रही है उधर रत्न, भूषण, प्रभाकर परीक्षाओं तथा उसके समकक्ष अन्य परीक्षाओंकी वृद्धि हो रही त्यों-त्यों ये परीक्षा भूत बनती जा रही हैं।

एक तो वैसे ही आज बेकारीके युगमें लोग कौड़ी-कौड़ी दांत से पकड़ते हैं फिर हमारे प्रकाशक महोदय न जानें क्यों धन कुबेर बननेके स्वप्नमें प्रति तीसरे वर्ष आमूल-चूल कोर्सके परिवर्तनके लिए जुटे रहते हैं इतना ही नहीं छः पैसेकी जिल्दकी आड़में अजिल्द और सजिल्दका बहाना लगाना प्रति पुस्तक आठ आना तक ऐंठकर हजारों का लाभ यूनिवर्सिटीसे निर्धारित मूल्य पर कमाते हैं, दूसरी ओर गाइड और कुंजियें जो बाजारोंमें आती है एक तो पहले ही 'बाबाका मोल' वाले मूल्यकी होती है। विवशता से छात्र खरीदते भी हैं तो पुस्तकका कलेवर महाभारतसे कम नहीं होता, जिनमें लेखक महोदय अपना पाण्डित्य प्रदर्शनके लिए मूल पुस्तक से भी उसे दुरूह बना डालते हैं। ऊपर अध्यापक वर्ग भी भगवान्की कृपा से इन परीक्षाओंके 'सुभान अल्ला' ऐसे मिलते हैं जो ४ बार परीक्षाएं देकर भी अभी प्रभाकर नहीं कर पाए, भला क्या भला होगा इन अनाथ परीक्षार्थियोंका ऐसे वातावरण में। केवल इन्हीं कुछ परिस्थितियों को सामने रखते हुए, हमारी प्रार्थना पर 'श्रीस्वाध्याय' के विद्वान् सम्पादक महोदयने अपने इस पत्रमें यह 'परीक्षा स्तम्भ' आर्थिक घाटा सहन करके भी निकालनेका प्रयत्न प्रारम्भ किया है। अब हिन्दी के प्रत्येक विद्यार्थी एवं अध्यापकोंका यह पुनीत कर्तव्य है कि वे 'श्रीस्वाध्याय' के अधिक से अधिक ग्राहक बनाकर सहयोग दें ताकि आगेके प्रत्येक अङ्कमें इस 'परीक्षा-स्तम्भ' को विशेष उपयोगी एवं ठोस सामग्री से परिपूर्ण बनाया जा सके।

स्तम्भ की विशेषताएं—

(१) परीक्षाके प्रत्येक विषयको सरल शैली से निबन्ध रूपमें अच्छे विद्वानों द्वारा लिखवाकर प्रकाशित करना।

(२) परीक्षा सम्बन्धी आवश्यक प्रश्न, सम्भावित, अनुमानित प्रश्न अनुभवी अध्यापकों तथा परीक्षा विशेषज्ञों द्वारा छात्रों तक पहुँचाना।

(३) अच्छे लेखकोंको लेख प्रकाशनकी सुविधा देकर साहित्य संसारमें लाना।

(४) परीक्षार्थियोंकी परीक्षा सम्बन्धी सभी गुत्थियोंको सुझाकर उन्हें सब प्रकार ठीक सुझाव देना।

(५) अधिकारी वर्ग और छात्रोंकी दूरी एवं विचारोंकी खाईको मिटाकर उन्हें वास्तविकताका ज्ञान कराना।

(६) जिन परीक्षार्थियोंका कोई अध्ययनका सहारा नहीं, उन्हें पत्र व्यवहार से निःशुल्क शिक्षा देना और प्रश्न-पत्र भेजना एवं हल पत्रोंकी जांच करना।

———

प्रभाकर परीक्षोपयोगी—

काव्यमें रसका महत्त्व

शरीरमें जो स्थान आत्माका है वही काव्यमें रसका, अनेक काव्यके उद्भट विद्वानोंने इस रस रूपी अगाध रत्नाकरकी गहराईको परिभाषाकी रज्जु से मापनेका प्रयत्न किया है फिर भी वे स्वयं ही उससे सन्तुष्ट नहीं हुए और बाद में इसे केवल अनुभवकी वस्तु कहकर पीछा छुड़ाने का प्रयत्न किया है। अन्य भाषाओंमें भी इसका पर्यायवाची शब्द नहीं मिलता, वास्तवमें जैसा विवेचन साहित्यांगोंका भारतमें हुआ, सभ्यताकी दौड़में आगे भागने वाले देश इस दृष्टि से अभी बहुत पीछे दिखाई देते हैं, भले ही आज के हमारे नवीनताके पुजारी इसे मानें या न मानें।

वेदमें रसको आनन्द स्वरूप माना है। 'रसो वै सः' कहकर ईश्वरीय रूप भी ठहराया गया है। रस परमानन्द सहोदर होनेसे ही प्रत्येक रसानुभवीको अलौकिक आनन्दका हेतु है। नाट्य-शास्त्रके आदि प्रणेता शास्त्राचार्य भरतने नाटकके अन्य अङ्गों पर विचार करते हुए रस पर भी अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है।

'विभावानुभावसंचारि-संयोगाद्रसनिष्पत्तिः'

भरत मुनिके इस विचार पर भी अनेक आचार्योंने पर्याप्त छान-बीनकी है और बहुत कुछ लिखा है, उद्भट, मम्मट, लोल्लट, कुन्तल, अभिनवगुप्त, दण्डी, विश्वनाथ शास्त्री, पण्डितराज जगन्नाथ आदि अनेक आचार्यों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें कुछ लोगोंने तो इस विचार को ज्योंका त्यों स्वीकार कर लिया है कुछ आचार्योंने निष्पत्ति शब्दको, अनुत्पत्ति, उत्पत्ति, मुक्ति और अभिव्यक्ति रूप से स्वीकार किया है, वैसे अभिव्यक्तिवाद रसके अधिक समीप जंचता है, कहना न होगा कि विभाव अनुभाव संचारी भावके संयोग से अभिव्यक्त स्थायी भाव ही रसका स्वरूप ग्रहण करता है।

रसोंके अनुसार स्थायी भावोंकी संख्या कोई ८, ९ और कोई १० तक स्वीकार करते हैं। भरत मुनिने शान्त रसका अभिनय न हो सकनेके कारण रसोंकी संख्या नौ ही मानी है। लौकिक पक्षमें मधुर अम्ल कटु कषाय तिक्त लवण छः रस माने गए हैं। किन्तु, काव्य रस इनसे पृथक् होते हैं, और इन्हें अलौकिक माना है भरत मुनिके अनुसार इनकी गणना इस प्रकार हैः—

शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, वत्सल।

जो भाव रस रूपमें परिणत होते हैं उन्हें स्थायी भाव कहते हैं, वे क्रमशः ये हैं—रति, हास, शोक, क्रोध उत्साह, भय, घृणा, विस्मय, स्नेह।

जो रस अवस्था तक पहुँचने के लिए मानसिक विचार को उद्बोधित करते हैं उन्हें विभाव कहते हैं ये दो प्रकार के हैं १. आलम्बन, २. उद्दीपन।

आलम्बनः—जिसके द्वारा आश्रयके हृदयमें स्थायी भाव प्रकट होकर रस रूप में परिणत होता है। जैसे परस्पर शकुन्तला, दुष्यन्त।

२. उद्दीपनः—आलम्बन की वे चेष्टाएं जिनसे स्थायी भावको उत्तेजना मिले, जैसे—दुष्यन्तके लिए, शकुन्तला का सौंदर्य. एकान्त, चांदनी रात आदि।

अनुभावः—आलम्बन द्वारा प्रकट किए जाने पर उद्दीपन द्वारा उद्बोधित करने पर आश्रयके हृदयमें जो चेष्टाएं हों वे अनुभाव कहलाती हैं, जैसे शृंगार रसमें परस्पर अवलोकन आलिङ्गन चुम्बन आदि।

अनुभाव दो प्रकारके होते हैंः—

१. सात्विक—[अयत्नज] कायिक (यत्नज)

कायिक अनुभाव तो असंख्य हैं, किन्तु सात्विक अनुभावों की संख्या ८ मानी गयी है, स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, कम्प, विवर्णता, स्वरभंग, अश्रुपात, मूर्छा।

संचारि भाव—ये अस्थायी होनेके कारण व्यभिचारी या संचारी भाव कहे गए हैं। यह स्थायी भाव के बीच बीचमें आते जाते रहते हैं, संख्या में ३३ माने गए हैं।

कुछ लोग वत्सल रसको भी स्वीकार नहीं करते

भारतवर्षमें हिन्दीका स्थान

[श्री मदनलाल अग्रवाल प्रभाकर]

राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके उपरान्त हमारे सामने दूसरा प्रश्न है हमारे उन्नतिके शिखर पर पहुंचनेका ! कहनेका तात्पर्य है आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका तथा समाजको पतनोन्मुख ले जाने वाले दोषोंको नष्ट-भ्रष्ट करनेका ! इस मार्ग पर पदार्पण करते ही हमें अपनी भाषाको अपनाना होगा ! यह एक प्रमाणित सत्य है कि जिस राष्ट्रकी भाषाका साहित्य उच्च कोटिका होगा, निश्चयसे वह उस राष्ट्रका उत्थान होता है । अतः इस ओर दृष्टि रखते हुए हमें हमारी भाषा हिन्दीके साहित्यमें वृद्धि एवं उन्नति करनी होगी । परन्तु ऐसा उसी दशामें होगा जब कि हम हिन्दीको अपनालेंगे और इसे 'राष्ट्र भाषाके' पदसे सुशोभित कर देंगे । हमारी दीर्घकालीन राजनीतिक दासताने, हमारे मस्तिष्कको मलिन तथा स्वतन्त्र विचारोंसे हीन बना दिया है । अतः सुविचारोंसे हीन हम मानव कहलवा कर भी मानव न रहें ! किसी कविने सत्य ही कहा है :—

परभाषा, परभाव, परवेश, परिधान, ।
पराधीन पुरुषकी यह पूरी पहिचान ॥

इन 'दो पादोंमें कविने यथार्थ सत्यका चित्रण किया है । हममें बहुतसे व्यक्ति अंग्रेजी अर्थात् परभाषाके प्रेम पाशमें बंध चुके हैं । उन्हें हिन्दी भाषाकी तथा हिन्दू संस्कृतिकी चिन्ता कहां ? उन्हें तो रोमन और ग्रीक सिद्धान्त पसन्द हैं न कि मनु, याज्ञवल्क्य, कौटिल्य वा चाणक्य इत्यादिकी नीतियाँ तथा सिद्धान्त ! बाहरसे चमकीले तथा पैसों रहित बटुएकी भाँति पश्चिमी सभ्यता तथा संस्कृतिसे प्रेम करने वाले भारत वासियोंको सन्मार्ग पर लानेके लिए हिन्दीको अंग्रेजीसे उच्चतर स्थान देना होगा और इसका ज्ञान प्राप्त करना प्रत्येकके लिए अनिवार्य होगा । भारतमें हिन्दी भाषियोंकी संख्या दूसरी भाषा-भाषियोंसे निश्चय ही अधिक है । गणनाके पश्चात् विदित हुआ है कि भारत वर्षकी बंगला, उड़िया, मराठी, तेलगु, तामिल, गुजराती, मलयालम् तथा हिन्दी इत्यादि भिन्न २ भाषाओंमें से हिन्दी-भाषियोंकी संख्या पचीस (२५) करोड़ है । तेलगु-भाषियोंको लगभग चार (४) करोड़ और दूसरी भाषाओंके जानने वालोंकी संख्या तो लगभग २ करोड़ या इससे भी कम है । अतः बहुसंख्यक हिन्दी भाषियोंका होना इसकी सरलता, सुबोधताका सूचक है । यह केवल भारतमें ही नहीं अपितु सारे संसार (विश्व) में बहुसंख्यकोंकी भाषा है, आंगल भाषाभी इस प्रकारसे इसका अवरोध करनेमें तथा इस पर विजय पानेमें असमर्थ है, पुनः रूसी-भाषियोंका तो कहना ही क्या जिनकी, संख्या इससे आधी भी नहीं । अतः निश्चय ही हमारी मातृ भाषा पूर्ण सम्मानयोग्य है और इसका निरादर हमें शोभा नहीं देता ।

हिन्दी भाषाकी लिपि देवनागरी है जो कि बहुत सरल, तथा साधारण है, यहाँ तक कि गुजराती तथा मराठीकी भी यही लिपि है इसके अतिरिक्त वर्णमाला क्रम तो लगभग प्रत्येक भाषाका यही है । यह लिपि संस्कृत भाषाकी लिपि है अतः विश्व-विदित तथा विश्व-व्यापी है । यहाँ तककी संस्कृतके प्रेमी जर्मनी तथा लंदन इत्यादिके निवासियोंने अपने देशमें संस्कृतके-पुस्तकोंके अध्ययनके निमित्त भारतीय मुद्रणालयोंसे बहुत सुन्दर देवनागरी लिपिके मुद्रणालयोंका प्रबन्ध किया हुआ है । हमारी पोषण-कर्तृ, हमारी धातृ, मातृ हमारे शरीरके उच्छ्वास सहित तथा सब भाषाओंकी जननी संस्कृत है । इस प्रकारके भिन्न-भिन्न गुण युक्त हमारी माता मही संस्कृतका साहित्य अधिकतर इसी लिपिमें उपलब्ध है । अतः लिपिकी दृष्टिसे इसमें एक और गुण विद्यमान है

और केवल आठ रस ही मानते हैं । किन्तु हमारे विचार से रसोंकी संख्या दस ही उपयुक्त हैं । यथा—

वात्सल्य रौद्र बीभत्स शान्त,
श्रृंगार वीर अद्भुत जानो ।
हास्य भयानक अरु करुणा,
इन दस को तुम रस मानो ॥
''कश्चित्''

×::–::×

कि इसमें जो अक्षर जिस प्रकारसे उच्चारण किया जाता है वह उसी भांतिसे लिखा जाता है । परन्तु दूसरी लिपियोंमें यह दोष विद्यमान हैं । अतः एव ऋषि, मुनियों द्वारा आदर की गई हमारी हिन्दी भाषाकी लिपि देवनागरी ही सर्वगुण आगरी है ।

यदि हिन्दीको हमारे विश्व-विद्यालयोंमें शिक्षाका माध्यम बना दिया जाय तो निश्चयसे विद्यार्थी समूहको इसे तोतेकी भांति रटना न पड़े । इससे उनके विचार भी उन्नत तथा स्वतन्त्र हो जायेंगे तथा उन्हें अपने विचारोंको प्रकट करनेमें सुलभता तथा सुगमता हो जायगी ।

कई देशद्रोही व्यक्तियोंने तो अपने बुद्धिमान्द्यका परिचय देते हुए चरम सीमाका भी उल्लंघन किया है । उन्होंने हिन्दु-मुस्लिम समस्याका समाधान अरबी तथा फारसी मिश्रित हिन्दी अर्थात् हिन्दुस्तानीमें बतलाया है । परन्तु साम्प्रदायिक-कलह इत्यादि समस्याएं भाषासे कोई सम्बन्ध नहीं रखती इसके अतिरिक्त मेरा प्रश्न (तर्क) है, कि क्या बंगालमें हिन्दुओं तथा यवनों (मुसलमानों) की एक भाषा नहीं ? क्या पंजाबी मुसलमान पंजाबी भाषा नहीं जानते ? निश्चय ही यह एक कोरी कल्पना है कि हिन्दुस्तानी राष्ट्रभाषा हो ! ऐसा करनेसे हिन्दीका बहुत अपमान है, और यह साहित्य-रहित भाषा हमें कभी भी श्रेयस्कर नहीं हो सकती, यह बेचारी हिन्दी पर कब विजय पा सकती है जब कि इसके रक्षक भी बहुत थोड़े हैं और यह केवल पंजाब दिल्ली तथा मध्य-भारतके कुछ भागमें ही समझी तथा बोली जाती है ।

अन्तिम बात यह है कि इस भाषाका सम्बन्ध हमारी संस्कृति तथा सभ्यतासे है । अतः हमारी प्राचीन संस्कृतिको तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करने वाली सभ्यताको अपनानेके लिए निश्चय हमें अपनी राष्ट्र भाषा हिन्दी को अपनाना होगा।

अन्तमें यह मेरी धारणा है कि बहुत कालसे प्रचलित विदेशी शब्दोंको हमें भारतीय रूप देनेमें कभी भी नहीं सकुचाना चाहिए । । आंगल-भाषियोंने भी हमारी मातामही संस्कृतसे बहुतसे अक्षरोंको अपना कर निजत्व रूप प्रदान किया है :—

यथा त्रि व Three; Near व नियर तथा प्लु Plow इत्यादि २। अतः हमें भी विदेशी शब्दोंको भारतीय रूप देनेमें कदापि संकोच नहीं करना चाहिए । यथा हम 'स्कूल्ज़' न कहकर 'स्कूलों' ही कहें । अतः हमारा व्याकरण भली भांति सब प्रकारसे नियमबद्ध तथा संशोधित है । केवल भाषा ही एक ऐसी है जिसमें दूसरी भाषाओंके शब्दोंका एकीकरण करनेकी शक्ति है ।

यह पाठ तो England अर्थात् वर्तानियासे भी समझा जा सकता है । जब तक उन्होंने अपनी आंगल भाषाको नहीं अपनाया तथा उसके साहित्यमें वृद्धि नहीं की तब तक वह देश अस्वतन्त्र रहा और सैंकड़ों वर्षों तक दूसरोंसे शासित रहा । अतः हमें भी अब सावधान होकर अपनी भाषाको राष्ट्र भाषाके पदसे सुशोभित कर देना चाहिए अन्यथा परिणाम जो कुछ होगा वह हमसे अविदित तथा गुप्त नहीं ।

अतएव हमें हमारी भाषा हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनानेके लिए पूर्णरूपेण प्रयत्न करना चाहिए और हमारे जो परभाषा-प्रेमी नेता हैं उनसे अनुरोध तथा आग्रह करना चाहिए । ऐसा हमसबका कर्तव्य है ।

—

व्रजराज

कटि पति पीत पटं मुख वेणु धरं स्वर हैं मधुरं सब रागयुतं ।
वपु है मृदुलं चख कज्जलयं कर कंज दलं प्रिय हास उतं ॥
"कुलशेखर" देत अभयं संग हैं सम वैस सखा बहुतं ।
चित चोरत मोर अमन्द द्युति रविजा निकटं लखिनंद सुतं ॥

—

समानाधिकार

[श्री पं० रघुनाथचन्द्रजी शास्त्री 'वाशिष्ठ']

"तू भी रानी मैं भी रानी, कौन भरेगा घर का पानी?" "दोनों भरेंगे" "सो कैसे? क्या पानी ही पियेंगे या कुछ खायेंगे भी?" "नहीं भाई जो भी काम करनेको होगा। दोनों करेंगे"— मैं आग सुलगाऊं, खाना बनाऊं—पच पच मरूं और तुम—तुम दफ्तरमें कुर्सी पर आरामसे बैठे —थोड़ी बहुत कलम घिसाई--आ गए टहलते हुए— मौज उड़ाते—डट गए पाकशालामें—चट्ट कर गए मेरा सारा परिश्रम—अब यह नहीं होगा साम्यवादका युग है–मेरे साथ आग सुलगानी होगी—पानी भरना होगा—खाना बनाना होगा"—"अजी दफ्तरमें कौन जायगा?" "मैं और तुम दोनों" "समझमें नहीं आया, दिन भर दफ्तर में मरो और घर पर फिर घड़ी भरके लिए चैन नहीं—भूखे मरो या फिर पच पच मरो—यह भी कोई जीवन है?" "आप कलपते क्यों हैं? मेरे लिए भी तो वैसा ही है" "ठीक कहा वैद्य जी ने कड़वी पुड़िया रोगीको दी। वह झल्लाया—वैद्य जी भी वैसी ही पुड़िया खानेको प्रस्तुत हो गए, भला, रोगीको उससे क्या लाभ?" "अच्छा तो ऐसा करो—एक दिन तुम दफ्तर जाओ, मैं खाना बनाऊं; दूसरे दिन तुम खाना बनाओ मैं दफ्तर जाऊंगी; कहो क्या ठीक रहा, यह नहीं हो सकता—मैं ही रसोई घर में नौकरानी बन कर रहूं" "नौकरानी नहीं—नौकारानी अवश्य नौका बिहार में अग्रसर।"

"पर··· ·····पर ········पर" "पर पर लगाकर कहां उड़ रहे हो?" "कहीं नहीं, पर·······" "है फिर वही पर" मैं कह रहा था—बस, बंटवारा हो लिया न? आगे तो नहीं बढ़ोगी? यह गाड़ी तो मैं जैसे तैसे खींच लूंगा— पर·······"; "पर क्या?" "इसके आगे मेरे वश का नहीं" "क्यों? समानता से रहना होगा।" भूल जाओ—"ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी-"अब तुलसी का युग नहीं" "झुलसी-नहीं जलसीका (Jealousy) युग है। अस्तु, मैं कह रहा था--मातृत्व का बंटवारा?" "क्यों नहीं होगा? अवश्य होगा। वैज्ञानिक विश्वामित्र सब कुछ कर सकता है— नहीं नहीं मातृत्वकी आवश्यकता ही क्या है?" "तो क्या अनादि दाम्पत्यको तिलाञ्जलि?" "गणित की भाषा जानते हो? "नारी + (धन) पुरुष + (धन) अविरल विलास—(ऋण) मातृत्व = (समान) दाम्पत्य" की परिभाषा चलेगी।"

—

आत्म शान्ति

[श्री राधाकृष्ण गुप्त 'कृष्णकवि']

यदि आत्म-शांतिकी खोज नहीं कर पाये।
तुम मानवताके कण-कण में सन्देश जगा दो तो क्या!

दुनियांकी दौलत चाहे सभी मिल जाये,
या ज्ञान और विज्ञान सिद्ध हो जाये,
जगके सब वैभव चाहे प्राप्त हो जायें,
सुरगण भी चाहे पद तल शीश झुकायें॥
यदि आत्म······

चाहे रुस्तमको नीचा भले दिखा दो,
चाहे हातिमको बढ़कर धूल चटादो,
त्रैलोकोंका वैभव चाहे लुटा दो,
हिम-गिरिको भी ठोकरसे चाहे हटा दो,
यदि आत्म······

पावक सा बनकर सारा विश्व जला दो,
या पावस बन कर सुधाधार बरसा दो,
हिम बनकर चाहे जड़ चैतन्य को कँपादो,
या बन वसन्त जीवनकी कली खिला दो॥
यदि आत्म······

रच ग्रन्थ अनेकों कवि-पुंगव बन जाओ,
या वक्ता बनकर खर-तर-शंख बजाओ,
या नायक बनकर नित नव-मार्ग सुझाओ,
या शासक बनकर सिर पर मुकुट सजाओ॥
यदि आत्म······

—

विद्यार्थियोंके लिए सात स्वर्ण-सूत्र

(१) जो पाठ तुम्हें याद करना हो उसे पहली ही बार चित्त मन लगा कर अच्छी प्रकार पढ़ो, क्योंकि जो बात पहली बारकी पढ़ाईसे याद हो जाती है वह दूसरी या तीसरी बारकी पढ़ाईसे नहीं होती।

(२) पढ़नेमें किसी प्रकारकी भूल मत करो। जिस पाठका अर्थ भली भांति समझमें न आ गया हो उसे कभी याद करनेका यत्न न करो। आरम्भमें ही सावधानीके साथ काम करना चाहिये, यदि एक बार भूल हो जाय तो उसे दूर करनेके लिये बहुत समय लग जाता है। इतना अधिक समय लग जाता है कि उतने समयमें दस नये पाठ याद कर लिये जा सकते हैं।

(३) जो पाठ याद करना हो उसे अधूरा कभी मत छोड़ो, यह ढंग अच्छा नहीं है कि कुछ पंक्तियां एक बार याद की जायँ, और कुछ दूसरी बार। ऐसा करनेसे अधिक समय नष्ट होता है। यदि उस पाठको आरम्भसे अन्त तक कई बार ध्यान देकर पढ़ लिया जाय तो थोड़े ही समयमें याद हो जायगा।

(४) किसी पाठको एक ही क्षणमें याद कर लेनेका यत्न कभी न करना चाहिये। किसी पाठको लगातार घंटे दो घंटेकी एक ही बैठकमें रटनेका यत्न न करो। थोड़े-थोड़े समयके अनन्तर बार बार एक ही पाठकी अनेक आवृत्तियां होनी चाहिएँ। मस्तिष्कका यह स्वभाव है कि वह बहुत शीघ्र भूल जाता है। कोई नई बात याद करने या सीखनेके बाद पहले घण्टेमें वह जितना भूल जाता है उतना दिन भरमें नहीं भूलता, पहले दिन जितना भूल जाता है उतना एक सप्ताहमें नहीं भूलता, अतएव पहले ही घण्टेमें और पहले ही दिन अनेक पुनरावृत्तियोंकी आवश्यकता है। नई बात याद करने या सीखनेमें इस बातकी अधिक चिन्ता न करनी चाहिये कि हम इस बातको याद कैसे करें, किन्तु चिन्ता इस बातकी होनी चाहिये कि हम उसको भूल न जायँ। इस लिये जब तक एक बार याद की हुई वस्तु मस्तिष्कमें ताजी बनी है-जब तक वहांसे मिट नहीं गई-तभी तक उसको दुहराना तिहराना चाहिये, इसी समय अनेक आवृत्तियां कर लेनी चाहिएँ। ऐसा करनेसे मन कभी उचटने नहीं पाता, वह सदा ताजा बना रहता है। थके हुए मनसे कभी याद मत करो और न याद करनेके समय कभी मनको सुस्त होने दो। जिस समय चित्त लगे उसी समय खूब जम कर कड़ा परिश्रम करो। स्मरण रहे कि ध्यान या चित्तकी एकाग्रता ही याद करनेकी कुंजी है।

(५) किसी विषयको याद कर लेनेके बाद कुछ समय तक मस्तिष्कको विश्रान्ति मिलनी चाहिये, कुछ समय तक कोई नया शोच विचार या काम न करना चाहिये। तुरन्त ही दूसरा विषय याद करनेमें लग जाना बहुत बुरी बात है। मान लीजिये कि इस समय आपने कविताका पाठ याद कर लिया है यदि इसके बाद तुरन्त ही भूगोलकी बातें रटने लगोगे तो आप कविताका पाठ अवश्य भूल जाओगे। मस्तिष्कका यह नियम है कि वह नई बातोंको लेता और पुरानी बातोंको (यदि वे दृढ़ न हों तो) मेटता जाता है। अतएव यदि सीखनेके बाद कुछ समय तक कोई काम न किया जाय तो, इस विश्रान्तिके समयमें आपके बेजाने ही आप ही आप आपका मस्तिष्क सीखे हुए विषयको अपनेमें अंकित कर लेनेका काम करता रहेगा। क्या आप नहीं जानते कि यदि रातको सोनेके पहले कोई पाठ याद किया जाय (और यदि वह अच्छी तरह याद न हो) तो सवेरे नींदसे उठने पर वह अच्छी तरह याद हो जाता है। इसका यही कारण है कि नींदमें विश्रान्तिके समय मस्तिष्क याद करनेका काम करता रहा।

(६) सदा वास्तविक स्थितिके अनुसार याद करना चाहिये। यदि कोई बात कंठ करना हो तो उसे लिख कर कभी कंठ मत करो। और यदि कुछ लिखनेका काम सीखना हो तो उसे कंठ करते रहनेका यत्न मत करो, लिखनेका काम लिखनेसे ही और बोलनेका काम बोलने ही से आता है। यदि इन नियमोंके अनुसार कोई भी नया काम सीखा जाय तो वह अल्प समयमें और बड़ी सुगमतासे आ जायगा। नया स्वभाव डालने और पुराना स्वभाव छोड़नेके लिये इन बातोंकी ओर ध्यान देनेसे बहुत लाभ होगा। स्वभाव स्मरण

शक्ति ही का रूपान्तर है। जब किसी बातका नया स्वभाव डालना हो या पुराना स्वभाव छोड़ना हो तब यह काम ठीक उसी समय आरम्भ कर देना चाहिये, कि जब तुम्हारे मनका निश्चय संकल्प (इरादा) नया और बलवान् हो। तुम अपने मनके निश्चय या इरादेको कभी ढीला मत होने दो, कहा भी है "शुभस्य शीघ्रं" अर्थात् शुभ कार्यमें देर न करना चाहिये, यदि कुछ विलम्ब हो जायगा तो निश्चय ढीला हो जायगा, इरादा ठण्डा पड़ जायगा और नियमका भी भंग हो जायगा। एक बार नियमका भंग हो जानेसे निश्चयके अनुसार काम करना बहुत कठिन हो जायगा। महीनोंका किया हुआ काम नष्ट हो जायगा॥

(७) अतएव जब आपको किसी बातका नया अभ्यास डालना हो (जैसे सवेरे शुद्ध वायुसेवनके लिए जाना या किसी प्रकारका अन्य शारीरिक व्यायाम करना) अथवा जब आपको कोई पुरानी आदत छोड़ना हो (जैसे चुरट पीना, नास सूंघना झूठ बोलना आदि) तब ज्यों ही मनमें निश्चय या इरादा पक्का हो जाय त्यों ही उसके अनुसार काम प्रारम्भ कर देना चाहिये। एक क्षणका भी विलम्ब न होने देना चाहिये और नियम पूर्वक कई दिनों तक उसी कामको करते रहना चाहिये। यदि आप इन नियमों पर चलते हुए पठन करोगे तो निश्चय समझो कि परीक्षामें पास होना कोई कठिन बात नहीं है। प्रायः प्रत्येक मनुष्यकी स्मरण शक्ति अच्छी होती है परं मस्तिष्क संबंधी इन सिद्धान्त नियमोंका पूरा ज्ञान न होनेके कारण विद्यार्थीगण परीक्षामें अनुत्तीर्ण होते देखे जाते हैं।

यदि आपका मस्तिष्क किसी कारणसे निर्बल हो तो ठीक दो तोले गौके घृत में ७ गोल सफेद या कालीमिर्च भूनकर प्रातः नित्य पीनेका अभ्यास रक्खो, अवश्य मस्तिष्क पुष्ट होकर स्मृति मेधा ओज अतुल होगा (हीनमेधास्मृतीनां च सर्पिष्पानं प्रशस्यते) अभ्यास होनेसे बारों मास पी सकते हैं, पहिले कुछ ग्लानि सी होगी, फिर चित्त प्रसन्न रहा करेगा, इससे शरीरमें स्फूर्ति और बलकी भी वृद्धि होगी।

परीक्षामें निश्चित सफलता—जो विद्यार्थी परीक्षामें निश्चितरूपसे सफल वा उत्तीर्ण होना चाहते हैं वे नित्य प्रातः सायं ५ मिनट श्री परशिव प्रार्थना (प्रभो! शम्भो० महामंत्र) का जप श्रद्धा पूर्वक करें तो वे निश्चितरूपमें उत्तीर्ण होंगे। अनेकों परीक्षार्थी इस प्रयोगसे उत्तम श्रेणिमें उत्तीर्ण हुए हैं। इस महामंत्रका पूरा विधान हमने 'श्रीस्वाध्याय' प्रथमवर्षके ४ अङ्क और सं० २०१० के 'श्रीविश्व विजय पंचांग' में प्रकाशित किया था। यह महामंत्र अर्थ सहित अलग पत्र पर भी छपा हुआ है। दो आनेका टिकट डाकखर्चके लिए भेजकर श्रीस्वाध्याय सदन सोलनसे मंगवा सकते हैं।

साहस से आगे बढ़ता चल

[श्री राधाकृष्ण गुप्त 'कृष्णकवि']

डरना झंझा झकझोरोंसे,
अपने मनमें मृदु हास लिये।
कुछ श्वास लिए निश्वास लिए,
शुभ पूर्ण विजयकी आस लिये।
जग जीवनका उल्लास लिए,
करतब शृंगों पर चढ़ता चल--
साहस से···

तू अटल अविचलित बना हुआ
अपने प्रणकी दृढ़ ठान लिये।
इस जीवनका आह्वान लिए,
सम्मान लिए ये प्रान लिये॥
मधुरी वीणाकी तान लिये।
कुछ गान विजयके गढ़ता चल—
साहस से·······

तन टूटी जर जर तरनीमें,
अपने जीवनका भार लिए।
सरकार युगल के चरण रूप,
युग हाथों में पतवार लिए॥
हिय में मोहक उद्गार लिये,
भीषण भंवरों से कढ़ता चल॥
साहस से·······

सह चोट सभी वक्षः-स्थल पर,
आत्म - अभिमान लिए।
मतवाला हो प्याला पीकर,
अरमानोंका बलिदान लिए॥
वीरत्वशौर्यकी शान लिये,
प्रति द्वन्द्व वृन्दसे लड़ता चल॥
साहस से·····

नेत्र-रक्षाका अद्भुत उपाय

संसारमें नेत्र ही सब कुछ है। आज कल वनस्पति वृतके सेवन और ब्रह्मचर्यके ह्रासले नवयुवक विद्यार्थियोंकी भी दृष्टि निर्बल होकर छोटी अवस्थामें ही ऐनक लगानी पड़ जाती है। ऐसे व्यक्तियोंके लिए हम यहां नेत्र रक्षाके लिए कुछ अनुभूत प्रयोग बता रहे हैं।

नित्य प्रातः विस्तरसे उठकर सबसे पहले मुखमें जितना पानी भर सके उतना ठण्डा पानी भरें, फिर शीतल जलसे २१ छींटे आंख पर मार कर धो डालें, पश्चात् अंगूठे तथा एक अंगुलीके द्वारा नरमीसे नेत्रोंकी पलकोंको धीरे धीरे पांच या सात बार मलकर आंखके डेलोंको दाईं बाईं ओर घुमाओ, जैसे कोई वस्तु देख रहे हो, इसी प्रकार डेलोंको ऊपर नीचे तथा दोनों ओर तिरछे और गोल वृत्तमें घुमाओ। तदनन्तर आंखोंको जोरसे बन्द करो और डेलोंको दृढतासे सुकेड़ो और खोलो, यह सब नेत्रोंके व्यायाम शिरको एक जगह स्थिर करके ही किये जाते हैं, प्रत्येक व्यायाम कमसे कम ११ बार अवश्य करना चाहिये, जैसे दाईं से बाईं ओर ११ बार डेलोंको घुमाना आदि। इन व्यायामोंके अनन्तर शौच स्नानादिसे निवृत्त होकर सूर्योदयके अनन्तर किसी खुले स्थानमें या किसी ऊंचे स्थानमें खड़े होकर सूर्यके रक्त वर्ण बिम्बको खुली आंखसे देखते रहो। पहिले पहिल दो मिनट देखना ही पर्याप्त है। पीछे १० मिनट तक देखनेका धीरे २ अभ्यास बढ़ा लो। यदि आध घंटे तकका अभ्यास बढ़ जाय तो अत्युत्तम होगा। यदि सूर्य बिम्ब एकटक देखनेके समय (ॐ ह्रां हंसः शुचिषत् ॐ ह्रां मित्राय नमः) यह मन्त्र भी मनमें जपते रहें तो कुछ दिनोंमें ही अतुल स्थायी लाभ प्रतीत होगा। यह साधन सूर्योदयके पीछे १॥ घटी या ३६ मिनटके भीतर और सूर्यास्तके २ घड़ी या ४८ मिनट पहिलेसे प्रारम्भ करना चाहिये, दोपहर या उक्त समयके पश्चात् सूर्य बिम्बमें तेजी आने पर करना मना है। इस सूर्य दर्शनके साधनसे नेत्रोंकी दृष्टि तीव्र रोग रहित हो जाती है। यदि नेत्रोंमें किसी प्रकारका रोग वा आंखें दुखती हों तो सूर्य दर्शन नहीं करना चाहिए।

साधक जितनी बार मुंहमें पानी डाले उतनी बार ठण्डे जलसे आँख और मत्था धोना न भूलें, प्रतिदिन दोनों समय तैल लगाना हो तो दोनों पैरोंके अंगूठेके नाखून तैलसे तर कर पीछे शरीर पर मलना योग्य है।

जिनको नेत्र विकार वा दृष्टि मान्द्य हो उन्हें रविवार व्रत और विधि पूर्वक "नेत्रोपनिषद्" का पाठ नित्य करनेसे नेत्ररोग नष्ट होकर दृष्टि तीक्ष्ण हो जाती है। विधि पूर्वक नेत्रोपनिषद्के पाठ-प्रयोगसे ही कई पुरुषोंके उपचक्षु (ऐनक) छूट गई और उनकी दृष्टि तीक्ष्ण हो गई। 'नेत्रोपनिषद्' का पूरा विधान हम आगामी किसी अंकमें प्रकाशित करनेका प्रयत्न करेंगे।

सूक्ति सुधा

लखी परन तिय लंक नहिं, होत मनहिं अनुमान।
ब्रह्म न ज्यों देख्यो, परहिं पै श्रुति देत प्रमाण॥
लंक बिना किहि विधि कहो, तनको होय मिलान॥
नभ भू बिच कहा टेक है, जानत नहीं प्रयान॥
लख लटकी बैनी सुधर, कवि हिय भौ अनुमान।
मनु कमंद कल-कामकी, विधि विरची सुद मान॥

'सदाशिव'

पग पद्म युगं गजचर्म शुभं तन भस्म बिभूषित चार करं।
शर चाप कमण्डलु शूल धरं मन-मोहित शैल सुता सुधरं।
'कुलशेखर' के दुख मोचन कै त्रय लोचन देत सुखं सुवरं।
शिर गंग धरं अघ सर्व दरं नर क्यों न भजं भुवनेश हरं॥

हरिहरके

उड़ि जाय हैं जानें न जानें कबै, तन ते यह प्राण घड़ी भरके।
'कवि कृष्णजु' कीरति पुन्यनसों, सुकरी न करी करनी करके।
पुनि जन्म जरूर मिलै न मिलै, महिपै विधिके वशमें परके।
विष हैं अगके रसरी रसना, रट लो रट नाम हरी-हरके॥



मानस पर विचार



[ले०—श्री पं० चिमनलालजी शर्मा ज्योतिषी गणितमार्तण्ड]

'श्रीस्वाध्याय' के प्रेमियों के सम्मुख "मानस पर विचार" गत कई अंकोंसे चल रहा है। इस विषय पर मैं दो लेख प्रथम लिख चुका हूँ। प्रथम लेख २०१० 'ग्रीष्मांक' में दूसरा २०१० 'हेमन्तांक' में। प्रथम लेख दक्षिण विषयकके उत्तर में श्री पं० रामजी वेदपाठी कर्मकाण्डकेसरीजी और पं० यशोदानन्दन जी गौड साहित्यरत्न इन दोनों महानुभावों ने मेरे प्रथम लेखके विपरीत भाव दर्शाये थे, परन्तु मैंने दूसरे लेखमें इन दोनों विद्वानोंके भावोंके विरुद्ध यही सिद्ध किया था, कि कन्या-दानके समय दाताकी पत्नी वामाँगमें जैसे कि मानसमें "जनक वामदिसि सोह सुनयना" सीता की माता विवाह में जनकके वामांग विराजमान थी, एक नहीं पचासों विद्वानों ने यही अर्थ किया है। पं० यशोदानन्दजी तो अपने लेख में यही वामांग अर्थ मान गए थे, परन्तु केसरी जी का मत इसी चौपाई के अर्थमें दक्षिणांग था और प्रमाण भी दक्षिणांगके लिखे थें। परन्तु उन्होंने जो प्रमाण लिखे थे वे शब्दोंको न्यून करके लिखे थे, वे वाक्य प्रमाणोंमें नहीं लिखे थे जो मेरे मतके पोषक थे। 'हेमान्तांक'में पूर्ण प्रमाणों के साथ केसरीजीके प्रमाण लिखे थे, जिसमें यह दर्शाया गया कि आपके प्रमाणोंसे कन्याका मुख पश्चिम दिशामें होना योग्य है, तब दाताकी पत्नी दक्षिणांगमें लिखी है। ऐसा प्रथम लेखमें भी लिख चुका हूँ जो कि 'ग्रीष्मांक' २०१० में छप चुका है। दूसरे लेखका भी सार यही था। । जब फिर श्री पं० रामजीलाल कर्मकाण्ड 'केसरी' जी ने श्रीस्वाध्याय 'ग्रीष्मांक' २०११ में 'मानस पर विचार' लिखते हुए फिर लिखा है कि दाताकी पत्नी दक्षिणांगमें होनी उचित है,परन्तु इस लेखमें पिछले दो प्रमाणोंको ही फिर लिखा है जो कि शरदंक २०१० में लिख चुके थे। और उसका उत्तर हेमन्तांक २०१० में सप्रमाण लिख चुका था। इन दो प्रमाणोंसे यही ज्ञात होता है कि केसरी जीको अब दो ही प्रमाणोंका भरोसा है।

केसरी जीसे सानुरोध प्रार्थना है कि लेख लिखते समय आप अपने पूर्व लेखको और जिस बातका उत्तर देना है वह क्यों भूल जाते हैं? प्रथम लेखमें केसरीजी लिखते है कि—"दाताकी पत्नीका दक्षिण और वामांग दोनों दिशाओंमें वर्तमान प्रयोग चल रहा है।"—परन्तु दूसरे लेखमें लिखते हैं कि "दक्षिण वामभाग न्यूनाधिक भावसे चल रहे हैं।" मैंने अपने दोनों लेखोंमें रत्नमालाके नामके कश्यप और भारद्वाज के वचन नहीं लिखे। आपने किसी अन्य का लेख देखा होगा। रत्नमालाके कर्त्तासे पांच सौ वर्ष पूर्व के निबन्ध ग्रंथ का प्रमाण जिसमें कश्यप और भारद्वाजके आर्ष वचन हैं लिखे थे। उस निबन्ध ग्रंथका नाम रत्नकोश है जो कि लल्लाचार्य कृत है। दोनों लेखोंमें पूर्व लिख चुका हूं। कश्यप और भारद्वाज ऋषिके वचनों पर केवल इतना लिख देना कि यह वचन प्राचीन कर्मकांडके निबन्धोंमें उपलब्ध न होनेके कारण मानने योग्य नहीं है, क्या यही शास्त्र वचन हैं? ऋषि वचनोंका ऋषि वचनों से ही खंडन किया जा सकता है।

"वामे सिन्दूर दाने······जाया प्रियार्थिनी" जाया शब्द विषयकमें प्रथम भी लिख चुका हूं शब्द सागरके प्रमाणसे संतान उत्पत्तिके बाद जाया शब्द उचित है।

परन्तु इसके उत्तरमें केसरी जी लिखते हैं—शब्दार्थ चिन्तामणि कोश'का प्रमाण पृष्ठ ६६८ से जाया—स्त्री०। विधिना विवाहितायाम् स्त्रियाम्। पत्न्याम्, तथा रघुवंशे द्वितीय सर्गाद्य पद्ये······मनुसंधेदम्। केसरी जी इसी कोशके मध्यका पाठ और अन्तका पाठ लुप्त कर गए हैं जो कि इस तरह है, "जायते अस्याम्", जनी०।

पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते॥
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः॥"

स्त्रीके पर्यायवाची नाम बहुत हैं यथा—नारी, पत्नी, भार्या, वधू, वामा, दयिता, अबला, योषिद्, जाया, प्रिया,

सहधर्मिणी इत्यादि, इन शब्दोंके कहनेका प्रयोजन है—

"आप्रदानाद् भवेत्कन्या प्रदानानंतरं वधूः।
पाणिग्रहे तु पत्नी स्याद्भार्या चातुर्थ कर्मणि"॥
एतच्छब्दप्रवृत्तिप्रयोजनमाह—
कन्या दर्शनमात्रं स्याद्वरस्य वचनं नहि॥
वध्वा दर्शन संस्पर्श भाषणं मुनिभिः स्मृतमित्यादि"॥

इसी प्रकारही जाया शब्द कहनेका प्रयोजन है मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य मिताक्षरा में स्पष्ट लिखा है कि—

"जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः।"
"तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः।"(शत०)

श्रुति भगवती कहती है वही जाया होती है जिसमें यह पुत्र (संतान) रूप से पुनः पैदा होय। मल्लिनाथ ने भी रघुवंशकी टीकामें श्रुतिप्रमाण जाया-विषयक इस प्रकार लिखा है यथा—"पतिर्जायां प्रविशति·········तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः॥" केसरी जी कोश प्रमाण से विधिना विवाहितायाम् स्पष्ट लिखते हैं विधि पूर्वक विवाह संस्कार होने पर। मैं केसरी जी से पूछता हूं कि सिन्दूरी कर्मसे पूर्व विवाह संस्कार पूर्ण हो जाता है? कदापि नहीं, विवाह संस्कार तब पूर्ण होता है जब चतुर्थी कर्म हो जावे, चतुर्थी कर्म से तो पहले वह भार्या भी नहीं बनती, क्योंकि भाष्योंमें स्पष्ट लिखा है —

प्राक्चतुर्थीकर्मणः पत्न्या भार्यात्वस्यानुपपत्तेः
सभार्यस्य च आधानेऽधिकारः॥"
"चतुर्थी कर्मणः प्राक् तस्याभार्यात्वमेव-
नोत्पन्नं विवाहैकदेशत्वाच्चतुर्थीकर्मणः॥"
"चतुर्थी कर्मणः प्राक् तस्या भार्यात्वमेव
नसंवृत्तं विवाहैकदेशत्वाच्चतुर्थीकर्मणः"।

मनुजी ने तो स्पष्ट लिखा है:—

पतिः शुक्र रूपेण भार्यां संप्रविश्य।
गर्भमापाद्य तस्यां भार्यायां पुत्ररूपेण जायते॥"

सिन्दूरी कर्म तक तो भार्या भी नहीं हुई तब वह जाया कैसे हो सकती है? जाया शब्द विषयक वेद वचन ऊपर लिख चुका हूं। "श्रुतिर्यत्र प्रमाणं स्याद् युक्तिः का तत्र नारद।" अतएव आपका "वामे सिन्दूर दाने च इत्यादि लिखना असंगत है। शतपथ ब्राह्मण की जो श्रुति है, "उत्तरत आयतना हि स्त्रीतिश्रुतिः" इसलिए श्रुति वाक्य का जो अर्थ है वह ठीक है जो कि वामांग है। केसरीजी का दूसरा प्रमाण "चतुरिकोत्तरतः।" "दक्षिणतः पत्नी-तिष्ठेत्" यह जो विश्वनाथका भाष्य लिखते हैं; इसका उत्तर प्रथम लेखमें और विस्तारसे दूसरे लेखमें भी लिख चुका हूं परन्तु केसरी जी ने फिर इसी प्रमाण को लिखा है। अब दूसरे लेख से भी विस्तारपूर्वक उत्तर लिखा जाता है। इसका कन्यादान विषयक संकल्प गदाधर हरिहर से भी भिन्न है। उसकी सङ्कल्पादि विधिः लघुदर्पण, संस्कार भास्कर, संस्कार मार्तण्ड, संस्कार दीपक, संस्कार प्रकाशकर्त्ता की पद्धति, कर्मठगुरु, दशकर्मपद्धति, काशीस्थ श्री विद्याधरकी पद्धति, नवरत्न विवाह पद्धति, चतुर्दश नवरत्न विवाहपद्धति, चतुर्थी लालकृत विवाह पद्धति, निबाहुराम कृत विवाहपद्धति, रामनाथबौद्धेय कृत विवाह पद्धति, पंचांग दिवाकर प्रणेतृ कृत विवाहपद्धति, विवाहपद्धति-प्रभा, और प्राचीन हस्तलिखित विवाह पद्धत्यादिके विपरीत विधि है, ॐ द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी त्वा प्रतिगृह्णातु" इस मंत्रका विश्वनाथकी विधिमें अभाव है। इसलिए विश्वनाथके मतसमर्थकोंको यह विवाह संस्कारमें हेय होना चाहिए परन्तु इस मन्त्रका त्याग किसी भी विवाह संस्कार विषयक पुस्तक वा विवाह पद्धतिमें नहीं है, अर्थात् सभीने ग्राह्य किया है, इससे यही भासता है कि विश्वनाथका मत पूर्वजोंको मान्य नहीं था। दूसरी बात यह है कि विश्वनाथ कन्यादानका संकल्प कन्याको दो वस्त्रोंके देनेसे प्रथम मानता है और कन्यादानकी दक्षिणा लेनेके उपरान्त वर कन्याके साथ कौतुकागारमें प्रवेश करे। परन्तु अखिल विवाह संस्कारकी पद्धतियोंने कौतुकागार से कन्या आने पर और कन्याको दो वस्त्र देने पर और "समंजन्तु" इत्यादि मंत्रोच्चारणके बाद कन्यादानकी विधि लिखी है। केसरी जी अब आप सच्चे मन से सोचें कि विवाह संस्कारकी विधि विश्वनाथ भाष्यके अनुसार कराते हैं? अथवा अन्य कोई विद्वान् भी कराता है? कदापि नहीं, इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि विश्वनाथका मतपूर्वज विद्वान् भी मानते नहीं आये; तो अब कैसे माना जा सकता है? "प्रमाणं तत्र भूयसाम्" इसकी पुष्टिमें लिखा था अतएव यही न्याय्य है।

केसरी जी लिखते हैं कि एक संख्याका भी

माननीय प्रमाण ऐसा नहीं है कि कन्यादानमें दाताकी पत्नी दाताके वामभागमें बैठे । कोशकारोंने नारीके पर्यायवाची शब्द बहुत ही लिखे हैं । उन्हीं के मध्य में वामा शब्द भी स्त्रीका पर्यायवाची है क्या किसी कोशकारने भी दक्षिणांगा शब्द भी पर्यायवाची दिया है ।

"मार्जने चाभिषेके च कन्या पुत्र विवाहके ।
आशीर्वचन काले च पत्नी स्यादुत्तरे सदा ।"

इति लघ्वाश्वलायन स्मृति ।

यहां पर कन्या विवाहमें वामांग नहीं लिखा यह प्रमाण माननीय है या अमाननीय है । क्या यह ऋषि वचन नहीं है ? यही वचन साहित्यरत्न जी ने इसी स्मृति के नामसे लिखा है परन्तु बहुव्यापक और अल्प व्यापक शब्द देकर अपना मत सिद्ध किया था, यह भी उन्हीं का लिखना अनुचित था । ऐसा आप कोई मूल प्रमाण (ऋषिवचन) देते जिसमें यह लिखा हो कि कन्याका मुख पूर्वमें हो तब दाताकी पत्नी दक्षिण भागमें विराजमान रहे । जैसा कि मैंने कश्यप और भारद्वाज ऋषिके वचन दोनों लेखोंमें लिखे थे कि कन्या पूर्वाभिमुखी होते हुए दाताकी पत्नी कन्यादानमें वामांग विद्यमान होनी चाहिए । संस्कार मार्तण्डका प्रमाण क्या अयोग्य है ?

"यज्ञे होमे च दानादौ भवेयं तव वामतः ।
यत्र त्वं तत्र तिष्ठामि पदे षष्ठेऽब्रवीद्वरम् ॥"

लल्लाचार्य कृत रत्नकोशसे प्राचीन निबन्ध ग्रन्थका नाम तो लिखते कि अमुक अमुक ग्रंथमें इसके विपरीत लिखा है । अर्थात् रत्नकोशसे प्राचीन निबन्ध ग्रन्थोंमें इस पाठका अभाव है । रत्नकोशके कर्त्ताको हुए डेढ सहस्र (१५००) वर्ष हो चुका है उन्होंने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि दाताकी पत्नी पतिके वामांगमें कन्यादानके समय हो । भारद्वाज—

तिष्ठेदुदङ्मुखो दाता, कन्या पूर्वमुखी भवेत् ।
वामाङ्गे च स्थिता जाया सुतां दद्यात् सदक्षिणाम् ॥

कश्यपः—

दाता उदङ्मुखो भूत्वा, कन्या प्राङ्मुखी भवेत् ।
वामभागे स्थिता पत्नी, कन्यादानं करोति सः ॥"
"वाम भागे स्थितिः प्रोक्ता, भार्याया धर्म कर्मसु ।"

उपरोक्त प्रमाणोंसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि दाता की पत्नी वामांगमें होनी चाहिये । यदि कन्यादानके समय कन्याका मुख पश्चिम दिशामें हो तब दाता अपनी पत्नीको दक्षिणांग बिठाकर कन्यादान कर सकता है ऐसा मैं प्रथम दोनों लेखोंमें धर्मसिन्धु इत्यादिके प्रमाणोंसे लिख चुका हूँ । परन्तु कन्यादान कालमें कन्याका मुख पश्चिम दिशामें कहीं भी नहीं देखा गया । अतएव दाताकी पत्नी वामांगमें होनी शास्त्र संमत है । केसरी जीको यह भी लिखना चाहिये कि विश्वनाथने पारस्करगृह्यसूत्र प्रथम कांड तृतीय कंडिकाके किस सूत्रके भाष्यमें "चतुरिकोत्तरतः ...तिष्ठतु" अर्थात् वह मूल सूत्र कौन है । अथवा अन्य प्रमाण ऋषिका लिखना उचित है कि अमुक मूल प्रमाण से इस प्रकार विधिः विश्वनाथ ने लिखी है । मैं प्रथम भी लिख चुका हूं कि अखिल विवाह पद्धतिकारोंने और विवाह संस्कार विषयक ग्रंथोंके निर्माताओं ने विश्वनाथके मतका तिरस्कार किया है । तो अब वह कैसे माननीय हो सकता है ? सैंकड़ों नगरों वा ग्रामोंमें विवाह संस्कारके समय दाताकी पत्नी वामांग में बैठी देखी है । गोसाईं मुरलीधर जी जिनकी चर्चा बनारस के विद्वानोंमें होती थी वह भी विवाह संस्कार के समय दाताकी पत्नी वामांगमें बिठाते थे । यह बात हमको पितामहसे ज्ञात है, इसीलिए यह लिखनेका भाव उत्पन्न हुआ कि जो शास्त्रीय मर्यादा है । उसका अनुसरण ही होना चाहिए । अतएव दाताकी पत्नी कन्यादानके समयमें वामांगमें रहे यही शास्त्राज्ञा है ।

—

दीनता देखी नहीं

जिसने इस जीवनमें धनसे, नित खेल अधीनता देखी नहीं ।
सुख साज संयोगनके रुखमें, दुखकी छवि छीनता देखी नहीं ॥
'कवि कृष्ण' न चिंतन की चितमें हितमें हियहीनता देखी नहीं ।
प्रभुताकी प्रभा वह क्या परखे, जिसने कभी दीनता देखी नहीं ॥

तुलसीकी उपयोगिता, महत्ता और पूजाविधि

[ले—श्री पं० मदनगोपालजी शर्मा शास्त्री ज्योतिषाचार्य]

तुलसीके वृक्षमें आधिदैविक और आधिभौतिक दोनों शक्तियां बहुत ही प्रबल रूपसे विद्यमान रहती हैं। जिस प्रकार तुलसीके सेवनसे रोगोत्पत्तिका भय नहीं रहता उसी तरह तुलसीकी पूजासे देवताओंकी कृपा और आत्मशुद्धि भी प्राप्त होती है। एतदर्थ आर्यललनाओंको चाहिये कि वे कुमारी, सधवा या विधवा किसी भी स्थितिमें क्यों न हों उन्हें प्रातः सायं अवश्य ही तुलसीकी पूजा करनी चाहिये।

"तुलसीके महत्वको समझनेके लिये निम्नाङ्कित श्लोकोंको देखिये।

तुलसी काननं चैव गृहे यस्यावतिष्ठते।
तद् गृहं तीर्थ भूतं हि, नायान्ति यम किङ्कराः॥
तुलसी विपिनस्यापि समन्तात् पावन स्थलम्।
कोशमात्रं भवत्येव गाङ्गेयेनैव चाम्भसा॥

हमारा भारतवर्ष धर्मप्रधान देश हैं, यहाँके नरनारी पीपल तुलसी, धात्रो, (आंवला का वृक्ष) कदली वृक्ष (केला) आदिके नीचे दीप दान किया करते हैं। तुलसीकी पूजा तो प्रत्येक सदाचारी गृहस्थके यहाँ होती है जो कि इसके रहस्यसे अवगत हैं, अतः सर्वसाधारणकी जानकारीके लिये इसकी उपयोगिता और महत्ताका दिग्दर्शन कराया जाता है।

तुलसीके वृक्षमें जो सद्धार्मिक भक्ति भावना निहित है उसमें वैज्ञानिक रहस्य भी भरा पड़ा हैं। तुलसीके आसपासका स्थान पवित्र तो माना ही जाता है इसकी पूजासे या तुलसी दल पान करनेसे हमारी आत्माको वह दिव्यशक्ति प्राप्त होती है जिसके कारण हम सुख शान्ति प्राप्त करनेमें अपने आपको समर्थ पाते हैं। चरणामृत (विष्णुपादोदक) के साथ तुलसी पानसे आयु-वृद्धि होती हैं। तुलसीके पौधेमें (वृक्षमें) मलेरियाके विषाक्त वायुको दूर करनेकी अद्भुत क्षमता रहती है, चाहे जैसेभी विषैली वायु क्यों न हो तुलसीके पौधेसे स्पर्श होते ही स्वच्छ हो जाता है। मलेरियाके उत्पन्न करनेमें सहायक मच्छरोंको नष्ट करनेकी विचित्र शक्ति वर्तमान है। जहाँ यह वृक्ष रहता है, वहाँ मच्छर पास तक नहीं फटकने पाते—दूरही रहते हैं। तुलसी सर्व प्रकारके ज्वरोंको हटाकर स्वास्थ्य लाभ देनेमें अद्वितीय औषधीका कार्य करती है। इसके अतिरिक्त यहाँ तक भी देखा जाता है, कि मृत-प्रायः प्राणीको भी तुलसी मिश्रित गंगाजल पिलाया जाता है। उसमें वैज्ञानिक रहस्य यह है कि मरने वाले प्राणीकी आत्म शुद्धि तो होती ही है साथ २ उसकी वेगपूर्ण श्वास जो कि उसे कष्टकर प्रतीत होती है इसके पान कराते ही कम हो जाती है। धार्मिक दृष्टियोंसे अपने कर्मानुसार लोकान्तर-प्राप्ति भी सहज संभव हो जाती है।

हमारे पूर्वज ऋषि और महर्षि जडोपासक नहीं थे, अपितु जड़ वस्तुओंके अधिष्ठातृ देवता मानकर उनकी पूजा किया करते थे। सबल स्वास्थ्य रहनेसे ही धर्माचरणमें प्रवृत्ति हो सकती है, अतः शरीर स्वास्थ्य वर्धक तुलसीका धर्मसे कितना सम्बन्ध है इसमें अनुचित कुछ भी नहीं। इसका पौधा इतना छोटा होता है कि प्रत्येक गृहस्थ अपने घरमें सुगमतासे लगा सकता है इस वृक्षकी पूजा और आराधनासे त्रितापोंकी निवृत्ति सुगमतासे हो जाती है।

तुलसीकी संक्षिप्त पूजाविधिः निम्न प्रकारसे है—

अथ शुभ पुण्यतिथौ सकल पुराणोक्त फल प्राप्त्यर्थं, अखण्डित सुख सन्तत्यारोग्यैश्वर्याभिवृद्ध्यर्थ धर्मलाभार्थे तुलसी देवता प्रीत्यर्थं च तुलसीपूजनमहं करिष्ये—

उपरोक्त वाक्य पढ़कर संकल्प छोड़े, पश्चात् हाथ जोड़कर निम्नलिखित श्लोकोंके द्वारा तुलसीका ध्यान करे—

ध्यायेच्च तुलसी देवीं, श्यामां कमल लोचनाम्।
प्रसन्नां पद्म वदनां वराभय चतुर्भुजाम्।
किरीट हार केयूर कुण्डलां दिवि भूषणाम्।
धवलाङ्कुश संयुक्तां पद्मासन निषेविताम्॥

"अथवा"

प्रियां च सर्वदा विष्णोः, सर्वदेवनमस्कृताम्।
आगच्छ वरदे मातः, प्रसीद तुलसी प्रिये।

तदनन्तर जलसे तुलसी वृक्षको स्नान करायें और उस जलको आंखोंमें अंजनकी तरह लगावें (इस जलके आंखोंमें लगानेसे नेत्ररोग दूर होते हैं। पुनः चन्दन (रोरी) पुष्प,

धूप, दीप, और नैवेद्यके द्वारा तुलसीकी पंचोपचार अथवा यथारुचि—"तुलस्यै नमः" "हरिप्रियायै नमः" मन्त्र उच्चारण करती हुई पूजा करें—नैवेद्य समर्पित कर देवें। इसके बाद—अधोलिखित मन्त्रों से प्रदक्षिणा करें—प्रत्येक परिक्रमामें मन्त्रोच्चारण होते रहना चाहिये और झुक २ कर नमस्कार करती हुई १०८ प्रदक्षिणा करें।

प्रदक्षिणाके मन्त्र यह हैं—

नमस्ते गार्हपत्याय नमस्ते दक्षिणाग्नये।
नमः आवहनीयाय तुलस्यै ते नमोनमः॥

अथवा

यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिण पदे पदे॥

गर्भावस्था या अशक्त होने पर ७ प्रदक्षिणका भी विधान शास्त्र-सम्मत है, कर कती हैं। सधवा स्त्रियोंको स्फटिक सुवर्ण मौक्तिक और प्रवालकी माला ही उपयोगमें लेनी चाहिये और विधवा स्त्रियोंको तुलसी काष्ठकी मालासे काम करना चाहिये।

तत्पश्चात् निम्न प्रार्थना करें—

अभीष्ट फल सिद्धिं च सदा देहि हरिप्रिये।
पतेरायुश्च भाग्यञ्च कृपा दृष्ट्या विलोकय॥

विधवा निम्न मन्त्रसे प्रार्थना करे—

पूतनाभयसन्त्रासात् रक्षितश्च यथा हरिः।
तथा संसारसन्त्रासात् रक्ष मे वंशमुत्तमम्॥

अन्तमें जल चढाकर नीचे लिखा वाक्य कहे—

अनेन मम यथाशक्ति पूजनेन
श्री तुलसी देवता प्रीयताम्

वृक्षसे तुलसी दल ग्रहण करनेका मंत्र इस प्रकार है—

तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिया।
केशवार्थं चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने॥१॥

तुलसी लेकर खानेका मन्त्र यह है—

पूजनानन्तरं विष्णोरर्पितं तुलसीदलम्।
भक्षये देहशुद्ध्यर्थं चान्द्रायणशताधिकम्॥२॥

एक झलक दशाकी ओर

[ले०—श्री पं० हंसराजजी 'कपिल' ज्योतिषाचार्य]

हजारों वर्ष बीत चले, जबकि हमारे प्राचीन ज्योतिषके आचार्योंने अनेक प्रकारके दृग्वेध-सौम्य-याम्य फणीन्द्र-चाप-तुरीय यन्त्र तथा अम्बु आदि यन्त्रोंकी रचना की थी, तथा साथ ही उन यन्त्रों द्वारा, ग्रहोंसे प्रभावित भिन्न २ देशोंकी गतिविधिका स्पष्टीकरण किया था। जिसके अनुसार आज भी देश तथा नगरोंसे सम्बन्ध रखने वाले अंशों द्वारा ग्रहोंकी स्थितिका निश्चय किया जा रहा है। दूसरे शब्दोंमें देशांश तथा अक्षांशके अन्तरको निकालकर प्रत्येक स्थानके अनुसार ग्रह-संस्करणकी जानकारी प्राप्त करना उन आचार्योंकी ही देन है।

परन्तु भलीभांति शुद्ध गणितके किये जाने पर भी, जब दशा वा अन्तर्दशाके सामयिक फलितको अनुभवकी कसौटी पर परखा जाता है, तो वहाँ पर वह ठीक उतारू नहीं होता। प्रायः देखा गया है कि "सिद्धा उडुदाये" इस सूत्र द्वारा कथित नक्षत्रमूलक विंशोत्तरी दशा अपने भोग्यकालको उल्लंघन कर कालान्तरमें ही फल देती है। तथा वहाँ पर उक्त ग्रह फल तथ योगफल सारे के सारे व्यर्थ सिद्ध हो जाते हैं।

किन्तु यदि "तातस्य कूपोऽयमित्यादि" मिथ्या हठ तथा अभिमान छोड़कर, गम्भीर दृष्टि से दशानिर्माण-कलाका यथोचित विचार किया जाए तो हमें आकाश-पातालका अन्तर दीख पड़ेगा। जैसा कि उक्ति है "जन्मर्क्षसंख्या द्गुणिता" आदि। जिसके अनुसार "अश्विनी तथा भरणी" इन दो नक्षत्रोंका परित्याग कर ६ का भाग देकर दशाके जाननेका क्रम कहा गया है। भला सोचिए तो सही, कि इन बिचारे दो नक्षत्रोंने किस जन्मका अपराध किया हुआ है? जिनको कि नक्षत्र पंक्तिसे इस प्रकार बाहर निकाल दिया जाता है, जिस प्रकार कि किसी ऋषि पंक्तिमें गुप्त

रूपेण प्रविष्ट दो अस्पृश्य जनोंका बहिष्कार हो।

मैंने पिष्टपेषण रहित "ज्योतिषनाडी" आदि ग्रन्थोंकी रचना करते समय, जब दशा के लिखनेका क्रम आरम्भ किया तो उस समय सबसे जटिल समस्या मेरे सामने यह उपस्थित हुई थी, जिसका सुझाव अन्ततो गत्वा यही उपलब्ध हुआ कि विंशोत्तरी दशाके रचयिता श्री पराशरजी ने जयपुर वा कानपुर प्रदेशमें स्थित होकर दशाके निर्माणका क्रम स्थापित किया। यहां तक कि उनको २६ अंश ४० कला दो मुक्त नक्षत्रोंके अक्षांशका परित्याग करना पड़ा, तथा उसी अक्षांश २६ अं० ४० क० के अनुसार नाक्षत्रिक दशाका आरम्भ करना पड़ा। जिस दशाका फलित सर्वत्र उपयोगी हो सके, यह सम्भव नहीं। जैसा कि हम पंजाब में ३१।३० अक्षांश पर रहते हैं तथा वहां का अक्षांश २६। ४० है। स्मरण रहे, एक पादसे दशाका चौथाई भाग जाना जाता है। जो कि २६ अंश ४० क० से ऊपर ३० अंश तकका है तथा एक चरणकी २०० कलाएँ होती हैं। एवं शेष १३ अंशकी ६० कलाएं होती हैं। हमारे और उस देशके मध्यमें ४ अंशकी कलाओंका अन्तर पाया जाता है। अतः उन वर्षादिका फल तृतीय नक्षत्रके चतुर्थांश के साथ ६० कला मिलाकर, दो नक्षत्रोंको गणित द्वारा उपलब्ध ग्रह को भोग्य दशामें घटा देनेसे स्पष्ट हो जायेगा। इसी ही क्रमसे सर्वत्र विंशोत्तरी दशान्तरका निर्भयतापूर्वक फलित कहनेमें अवश्य सफलता प्राप्त होगी। यह मेरा सिद्धांत है।

मान लो, पंजाब प्रान्तके अन्तर्गत होशयारपुर जिलेमें हरियाणा नगरका अक्षांश कल्पित ३१।३० है। एवं यहाँ दो नक्षत्रोंको घटानेके अनन्तर यथाक्रम सूर्य दशाकेः-- २ व० २ मा० ३ दि० चन्द्रमाकी दशा के ३ व० ७ मा० १५ दि० भौमकी दशाके २ व० ६ मा० १४ दि० ३० क० राहुकी दशाके ६ व० १० मा० २० दि० बुधकी दशा के ६ व० २ मा० ० दि० १० क० केतु की दशाके २ व० ६ मा० १४ दि० ३० क० और शुक्रकी दशाके ७ व० ३ मा० ० दि० को भोग्य दशा कालमें घटा देनेसे स्पष्ट भोग्य दशा काल निकल आएगा। हां! यदि नक्षत्रके एक चरणकी २०० कलाओंसे सूर्यके १॥ वर्ष चन्द्रमाके २॥ वर्ष आदि उपलब्ध होते हैं, तो एक कलासे कितने दिन मिलेंगे? इस अनुपातसे दशाके दिनादि निकाल लेने चाहिएं। जैसे सूर्यकी दशामें १ कलाका फल २ दिन ४२ कला, चन्द्रमाकी दशामें ४ दि० ३० क० मंगलकी दशा में ३ दि० ६ क० राहुकी दशा में ८ दि० ६ क० बृहस्पतिकी दशामें ७ दि० १२ क० शनिकी दशामें ८ दि० ३० क० बुधकी दशामें ७ दि० २६ क० केतुकी दशामें ३ दि० ६ क० तथा शुक्रकी दशामें केवल ९ दिन प्राप्त होते हैं। एवम् अपने अपने इलाकेके अक्षांशमें कलाओंकी न्यूनाधिकता के द्वारा उक्त दशामें कलाफल जोड़ना अथवा घटा देना चाहिए। उदाहरणार्थ जैसे किसीका स्वाति नक्षत्रमें जन्म हुआ है। नक्षत्र की संख्या पंचदश १५ है। तो उसमें २६ अंश ४० कलाके दो नक्षत्रोंको घटानेसे १३ नक्षत्र शेष रहे। इनको पुनः ६ से तष्ट किया तो ४ अंक उपलब्ध हुए जिनसे राहुकी स्पष्ट दशाका भोग्य काल १५ व० ७ मा० ६ दि० मिले। सो एक चरणके ३० अंश तक ४॥ वर्ष उपलब्ध होते हैं। शेष ३१॥ अंश तक अर्थात् १॥ अंश (६० कलाओं) के २ व० ०० मा० ९ दि० मिले। जिनको उक्त ४½ वर्षमें मिलानेसे ६ व ६ मा० ६ दि० हुए। उक्त राहुकी भोग्य दशा १५ व० ७ मा० ४ दिन में से घटानेसे ६ व० ०० मा० १५ दि० शेष रहे। जो कि राहुकी स्पष्ट भोग्य दशा होगी। इसके पश्चात् शास्त्र निर्दिष्ट बृहस्पति आदि दशाएं अंकित कर दी जाएं। ऐसा करनेसे कथित दशा फल, भूत और वर्तमान काल के लिए हथेली पै सरसों जमानेका सा काम तथा भविष्यकालके लिए पत्थरकी लकीर बन दिखाएगा। अनुभव करके देखिये।

वर्तमान कालकी प्रातः सन्ध्या

सन्ध्या पाठ विहाय कै तज पुरुखन कौ नाम।
बाबू साहब प्रात उठ करन लगे यह काम॥
करन लगे यह काम हाथ लै रेजर साबुन।
क्षौर क्रिया कर लगे चाय बिस्कुट उड़ावन॥
पालिस बुरुश उठाय करें नित नूतन सन्ध्या॥
ऐसे पूतन जाय मातु क्यों भई न वन्ध्या।

— कुलशेखर



अनुभूत योग माला

[ले०—राजगुरु ज्यौतिषालंकार श्री पं० तारादत्तजी राजज्यौतिषी]

(गताङ्कसे आगे)

१. जिसके जन्म समयमें सप्तममें सूर्य शुक्र होते हैं। उसकी स्त्री विकलाङ्गी होती है।

२. जिसके जन्म समयमें नवममें सूर्य शुक्र होवें है उसकी स्त्री विकलाङ्गी होती है।

३. जिसके जन्म समयमें पंचममें सूर्य-शुक्र होते हैं। उसकी स्त्री विकलाङ्गी होती है।

द्यूनस्थयोर्नवमपंचमसंस्थयो र्वा ।
शुक्रार्कयोर्विकलदारमुशन्ति जातम्।
(बृहज्जातक)

उपपत्तिः—शुक्र स्त्री कारक ग्रह है। क्योंकि वह सप्तम भावका कारक है।

द्युमणिरमरमन्त्री भूसुतः सोमसौम्यौ,
गुरुरिन तनयारौ भार्गवः
(जातक पारिजात)

सप्तम-स्थान गृहिणी स्थान है। इसलिए सप्तम स्थान में शुक्र विशेष रूपसे गृहिणीका अधिष्ठाता होता है। पञ्चम स्थान पुत्र स्थान है, नवम स्थान पौत्र स्थान है, इसलिए नवम और पञ्चममें स्थित शुक्र विशेष रूपसे कुलोत्पादिनीका अधिष्ठाता होता है।

सूर्यके साथ उसके किरणोंसे लुप्त किरण होनेसे सभी ग्रह असमर्थ होते हैं।

सूर्य शुक्रका नैसर्गिक शत्रु है।

सौम्यार्कौ सुहृदौ समौ कुजगुरू शुक्रस्य शेषावरी।
(बृहज्जातक)

प्रथममें स्थित ग्रह तत्कालमें शत्रु होता है।

अन्योन्यस्य धनव्ययाय सहजव्यापार बन्धु-स्थिता
स्तत्काले सुहृदस्त्रिकोण भवने प्येकेऽरयस्त्वन्यथा॥
(बृहज्जातक)

इसलिए शुक्रसे युक्त सूर्य तत्कालमें भी शुक्रका शत्रु होता है। इस प्रकार शुक्रसे युक्त सूर्य शुक्रका अधिशत्रु सिद्ध होता है। इसलिए सूर्यसे युक्त शुक्र अत्यन्त असमर्थ सिद्ध होता है। अतएव सप्तम नवम या पंचममें सूर्य युक्त शुक्र होने पर गृहिणी विकलाङ्गी होती है।

सूर्य शुक्रका अंशात्मक योग होने पर या उनमें स्वल्प अंशोंका अन्तर होने पर इस योगका अधिक फल अनुभूत होता है।

स्वर्क्ष उच्च नीच आदिके अनुसार भी बलाबल करना चाहिए।

एक व्यक्तिका जन्मलग्न कर्क है नवम स्थानमें सूर्य युक्त शुक्र है, उसकी प्रथमा स्त्री विकलांगी थी। दूसरी स्त्री अच्छी है। प्रतीत होता है कि शुक्रके उच्चमें होनेसे दूसरी स्त्री पर इसका प्रभाव नहीं हुआ। इस लेखका सार रूप बृहज्जातक श्लोकार्धसे सहित स्वनिर्मित श्लोकार्ध—

द्यूने भृगुर्नवमपञ्चमगेऽयोश्च ।
प्राप्नोति यत् कुल वधूत्वभयं विशेषात्॥
द्यूनस्थयोर्नवमपञ्चमसंस्थयोर्वा ।
शुक्रार्कयोर्विकलदारमुशन्ति जातम्॥

मनमोहन

मन मोहनकी मृदु मूरति पै जन होत निछावर भोरन के।
नित डोलत ग्राहक संग लगे मग घेरत चारहु ओरन के।
पुनि पांयनमें परखात हहा 'कुलशेखर' रूप अकोरनके॥
सखि जो कहु होते लला ये लली कट जाते करेजे करोरनके॥

बाल शिक्षा और ज्योतिष

[ले०—श्री रघुनाथचन्द्रजी 'वाशिष्ठ' शास्त्री]

सभी शिक्षा शास्त्री इस तथ्य पर एक स्वर हैं कि "बालककी मानसिक प्रवृत्तिके अनुकूल शिक्षा मिलने पर ही वह शिक्षामें समुचित प्रगति कर सकता है और उसकी इच्छाके विरुद्ध दिशामें ले जाने पर उसकी मस्तिष्क शक्ति कुण्ठित हो जाती है। वह यथेष्ट प्रगति नहीं कर पाता।" बहुधा ऐसी परिस्थितिमें जीवनको भार समझने लगता है। इंग्लिश व्याकरणके अन्यतम आचार्य नेलसन भरसक प्रयत्न करने पर भी अपने पुत्रको आंग्ल व्याकरणका पण्डित न बना सके। उनकी अभिरुचि व्याकरण में होने पर भी उस बालककी अभिरुचि उधर न थी। नेलसनके सुदृढ़ संकल्पको नैराश्य सागरमें डूब ही जाना पड़ा। इस प्रकारके अनेकों उदाहरण मिलते हैं। बालकोंकी अभिरुचिके अनुकूल शिक्षा न देने पर या तो उनका जीवन व्यर्थ हो गया या बुद्धिका विकास ही भली भांति न हो सका, अथवा उन्होंने प्रतिकूल शिक्षा चट्टानों से भिड़कर कालान्तरमें बरबस अपना मार्ग बना लिया। परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि ऐसी प्रबल प्रवृत्ति सभी की नहीं होती जो एक विकट संघर्ष करके अपना मार्ग बना ही ले। इस प्रकार प्रायः बालकोंका जीवन अनुपयुक्त ही हो जाता है। जो कुछ एक अपना मार्ग निकाल भी पाते हैं उनकी शक्तिका भी संघर्षमें बहुत अपव्यय होता है। अतः बालककी शिक्षा आरम्भ करनेसे पूर्व उसका मानसिक झुकाव जान लेना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।

भारतकी वर्तमान शिक्षा पद्धतिमें एक प्रमुख दोष यह भी है कि बालकोंके बौद्धिक संस्कारोंका ध्यान न रखते हुए विविध विषय संकुलपथ पर हठात् हांका जाता है। फलतः उनके मस्तिष्कका बहुत सा अपव्यय उन विषयोंमें हो जाता है, जिनसे उनका सम्पर्क भावी जीवनमें नाम मात्रको भी नहीं होता—उनमें मौलिकता नहीं आती और वे प्रति लिपि मात्र करनेके क्लर्क बनकर कोल्हूके बैलकी भांति सीमित परिधिमें चक्कर काटकर ही रह जाते हैं।

पश्चिमी देश इस दिशामें सतर्क हैं। वे अपने राष्ट्रके नवांकुर को हठात् नहीं मसलते। वे शिशुओंकी मानसिक प्रवृत्तिका अध्ययन करते हैं और तदनुरूप उनकी भिन्न २ शिक्षाका प्रबन्ध करते हैं। भारतीय शास्त्रोंमें सर्वत्र कर्त्तव्या-कर्त्तव्य निर्णयमें देशकाल और व्यक्तिके भेदको बहुत महत्व दिया है। परन्तु आज हम अपने अमूल्य सिद्धांतोंको भूल गए हैं।

पश्चिमी देश सतर्क तो हैं, परन्तु बेचारे हैं साधन-हीन। उनकी राष्ट्रिय आधार शिला उनका साहित्य—इस दिशामें उन्हें कुछ साहाय्य प्रदान नहीं करती वे जो कुछ भी करते हैं अपने बौद्धिक परिश्रम एवं अपने अनुभव के आधार पर ही करते हैं। वे अपने बालकोंको एक स्थान पर उन्मुक्त छोड़ देते हैं। वहां पठन पाठन- शिल्प तथा अन्य विविध विषयोंके उपकरण रक्खे रहते हैं। कुछ समय तक इसी अभ्यासके द्वारा वे उनकी मानसिक प्रवृत्तियोंका निर्णय करके उनके लिए यथोचित शिक्षाका प्रबन्ध करते हैं। इस प्रक्रियाका नामकरण उन्होंने किया है 'पैडागाजी'। निःसन्देह विधि अच्छी है, परन्तु सर्वथा निर्भ्रान्त नहीं। कहते हैं कि एक पैडागाजीके विद्वान्ने अपने बालकके मानसिक परीक्षणके लिए अपने कमरेमें मेज पर रामायण की एक पोथी, मदिराकी एक बोतल और कुछ रुपयोंके नोट रख दिए। अब होनहार कुमार आये, इधर उधर झांका, नोट उठाकर जेब में डाले, पोथी बगलमें दाबी बोतल हाथमें ली और चल दिए। वे परीक्षक विद्वान् यह देख भौंचक रह गए। कुछ समझमें न आया। अपनी असफलता को हास्यरसमें बदलते हुए बोले—"यह तो आधुनिक नेता की प्रवृत्ति है, यह अवश्यही देशका सफल नेता बनेगा।"

वस्तुतः मानसिक सूक्ष्म संस्कारोंका अध्ययन किसी सूक्ष्म विद्या द्वारा ही किया जा सकता है। केवल तर्क यथार्थ निर्णय नहीं दे सकता। बालकोंके बहुतसे सूक्ष्मतम संस्कार उनके अन्दर ही छिपे रहते हैं। जो उनकी चेष्टाओं द्वारा प्रकट

नहीं होते और यथा समय अनुकूल परिस्थितियां पाकर सहसा विकसित हो उठते हैं। कुछ लोगोंके जीवनमें ऐसे ही आश्चर्य-जनक परिवर्तन देखने और सुननेमें आते हैं। हंसराज वायरलेसके बालसखा सहाध्यायी एवं शिक्षक लोग बतलाते हैं कि ये महानुभाव अपने शिक्षाकालमें योग्य छात्रोंमें से नहीं थे। भौतिक विज्ञानमें तो ये और भी शिथिल थे। इनकी बालकालिक चेष्टाओंसे तो क्या, शिक्षा कालकी स्थितिसे भी यह कल्पना नहीं की जा सकती थी कि ये भौतिक विज्ञानमें इस प्रकार प्रगति करेंगे। क्या महर्षि पाणिनि महाकवि कालिदासकी शैशव प्रवृत्तियाँ यह बता सकती थीं कि आप संस्कृत व्याकरणके प्रणेता बनेंगे और आप कविकुल गुरुकी उपाधिसे विभूषित होंगे?

अब प्रश्न यह उठता है कि इसके लिए अन्य सरल एवं अव्यभिचारी साधन क्या है? इसका समाधान केवल ज्योतिष शास्त्र ही कर सकता है। इसके प्रकाशमें बालककी सूक्ष्मसे सूक्ष्म प्रवृत्ति सुस्पष्ट दिखाई दे जाती है। पैंडागा जी की तरह अन्धकारमें टटोलनेकी बात नहीं। और यह भी बात नहीं कि अन्धेके हाथ बटेर लग जाय। ज्यौतिष शास्त्रका निर्णय तो क्षीर-नीर विवेक है। हमारे पूर्वज तो "ज्योतिषामयनं चक्षुः" मानव जीवनमें ज्यौतिषशास्त्र "नेत्र-तुल्य है" की घोषणा कर गए हैं। वे आंखें खोल कर सब व्यवहार करते थे। चर्मचक्षु ही नहीं ज्ञान—चक्षु भी और वह ज्ञान चक्षु था ज्योतिष शास्त्र, ज्यौतिष शास्त्रकी आत्मा है— विश्वका नेत्र सूर्य। फिर भला कौन-सा ऐसा पदार्थ है। जो इसके प्रकाशमें नहीं दिखाई दे। अतः इस दिशामें हमें ज्यौतिष शास्त्रका आश्रय लेकर चलना चाहिए। इससे आशातीत सफलता मिलेगी। अपने घरमें विपुल निधि होते हुए भी हम यदि अज्ञान वश दीन हीन बने रहें— उसका सदुपयोग न करें तो यह हमारा दुर्भाग्य ही होगा।

अब स्वतन्त्र भारतमें शारीरिक अथवा राजनीतिक स्वाधीनताके साथ-साथ सांस्कृतिक स्वाधीनता भी ग्रहण करनी चाहिए। दास मनोवृत्तिको छोड़कर अपनी भारतीय असाधारण विद्याओं पर स्वस्थ बुद्धि द्वारा विचार करना चाहिये और उन्हें अपनाकर उनसे यथेष्ट लाभ उठाना चाहिए। मैं आशा करता हूं कि मेरी इन थोड़ी सी पंक्तियों पर शिक्षा शास्त्री विद्वान् विचार कर इस दिशामें पग बढ़ाएंगे। निश्चय ही भविष्यमें राष्ट्रका स्वरूप फिर से यथापूर्व समुज्ज्वल होगा।

—

दुःस्थानमें पाप ग्रहोंका विलक्षण प्रभाव

[ले०—श्री पं० मदनगोपाल शर्मा ज्योतिषाचार्य]

जन्म कुण्डलीमें षष्ठ, अष्टम और द्वादश यह तीन भाव भी अपना एक विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। इन भावोंमें शुभ ग्रहों (गुरु, शुक्र, पाप रहित चन्द्र और बुध) और पाप ग्रहों (सू, मं, रा, रा, के) की स्थिति वशात् जातकको विशेष फल मिलता हैं। उसका दिग्दर्शन अधोलिखित प्रकारसे है।

ज्यौतिष शास्त्रके महान् आचार्य सत्याचार्यका कहना है कि जिस भावोंमें शुभग्रहोंकी स्थिति हो तो उत्पन्न मानवके लिये वे ग्रह शुभ फल प्रदान करने वाले होते हैं और जिस भावमें पापग्रह बैठे हों वह मानवके लिये भावोत्पन्न फलोंमें न्यूनता ला देते हैं, अशुभ फल देते हैं किन्तु उनका स्पष्ट कहना यह है कि ६, ८ और १२ भावोंमें ग्रह ठीक इसके विपरीत फल देते हैं। षष्ठ, अष्टम और द्वादश भावमें शुभग्रहोंकी स्थितिवशात् फलोंमें ह्रास होता ही देखा गया हैं।

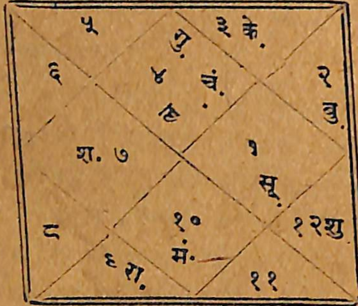
जैसे:—षष्ठ स्थानको रिपुस्थान कहा जाता है वहाँ शुभ ग्रहकी स्थिति ठीक नहीं, वह रिपुक्षयके बदले रिपु (शत्रु) बढानेमें ही सहायक होगा पुनः अष्टममें कोई शुभग्रह पड़ जाय तो जातककी आयुष्यमें वह शुभग्रह बन जा सकता है, परन्तु पापग्रह के रहते फलमें अवश्य ही भिन्नता आवेगी इसी तरह द्वादश भावमें शुभके रहते धनक्षय नहीं अपितु धनकी रक्षा होती है परन्तु यह वास्तविक सत्य नहीं। षष्ठ, अष्टम और द्वादश भावमें स्वग्रही शुभग्रह हों तो वास्तविक फल मिलेगा अन्यथा नहीं।

ग्रन्थान्तरोंसे बहुमतके द्वारा यह स्पष्ट निर्णय है, कि

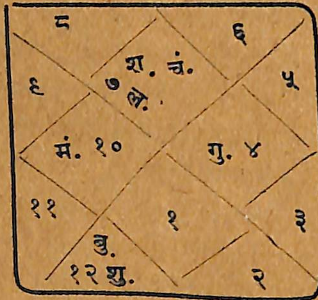
६, ८, १२ भावोंमें शुभग्रहोंके रहते उन भावोत्पन्न पदार्थोंके द्वारा (अपने घरके अतिरिक्त) फलोंमें अवश्य ही अनिष्टता आती है और पापग्रहोंके रहते अच्छा फल मिलता है।

प्रमाण पुष्टिमें दो कुण्डलियाँ उद्धृत की जाती हैं:—

१. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम (विजयी)



१. प्रतापी राक्षस राज रावण (पराजित)



भगवान् श्रीरामकी कुण्डलीमें षष्ठ राहु पर चतुर्थ स्थानमें स्थित पाप ग्रह शनिका पूर्ण दृष्टियोग है। इसके अतिरिक्त षष्ठ स्थान (शत्रु स्थान) पर किसी भी शुभग्रहका योग वा दृष्टि नहीं हैं। उपरोक्त योगके कारण श्रीरामका विजयी होना स्वतः सिद्ध हो जाता हैं।

कुण्डलीके महत्व पूर्ण योगोंका उल्लेख इस प्रकार है:—

(१) पांच ग्रहोंका परमोच्च योग प्रत्यक्ष सम्राट् योग और अपरमितायु योग प्रकट करता है।

(२) षष्ठेशके लग्नमें रहते शत्रुहन्तायोग।

(३) केशरी योग।

(४) मुद्राधिकार योग।

(५) पारिजात योग।

(६) श्रीनाथ योग "इनके अतिरिक्त "रिपुहन्ता सहस्रांशु शत्रुसोपचये यदि" उपचय स्थानमें बलवान् उच्चगतसूर्यके कारण शत्रु का नाश करने वाले रहें।

षष्ठस्थान पर उच्च शुक्र बुधके साथ बैठा है बुध यद्यपि शुभ ग्रह है परन्तु नीचमें है (नीचोच्च योग) और षष्ठस्थान पर उच्चगुरुका पूर्णदृष्टि योग पड़ता है पापग्रहोंका लेशमात्र भी सम्बन्ध न रह सका एतदर्थ रावणका पराजित होना सिद्ध हो जाता हैं।

कुण्डली यह भी योगोंसे परिपूर्ण है, जैसे।

(१) अधियोग

(२) अमल योग

(३) पारिजात योग

(४) केसरी योग

(५) अपर मितायु योग

दोनों पत्रिकाओं पर विचार करने पर श्रीरामकी पत्रिका राक्षसराजकी अपेक्षा सबल है और श्रीरामका षष्ठ राहु होनेके कारण रिपुओंका दमन करना प्रत्यक्ष योग करता है।

विशेष—षष्ठेश षष्ठमें अष्टमेश अष्टममें और व्ययेश व्ययमें सर्वदा शुभ फल देते हे चाहे वे शुभ हों या पाप, इसमें भिन्नता नहीं पड़ती।

मीरा

वारी थी तभीसे प्रभु-प्रेमकी पुजारी रही
　मूरत मुरारीकी हृदयमें उतारी थी।
　　तारी थी बजाती नाच गानसे रिझाती उन्हें
　　　जान सरवज्ञ निज देव बलिहारी थी॥

हारी थी न कर्मसे कभी भी 'कुलशेखर'री
　जू कोटिन कलेस काट मनमें सुखारी थी॥
　　खारी थी खलोंको औ भलोंको उपकारी थी
　　　वो मोहनके मोहनको मीरा मतवारी थी॥

गाय बजाय रिझावन नृत्यत छोड़त ना पलकों यदुवीरा।
आठहु याम सिंगार सुसज्जित होय मनोभव लज्जित वीरा॥
एक ते एक मलूक महा 'कुलशेखर' ज्यों सँग नीलम हीरा।
प्रान बसें इत मोहनमें उत मोहनको प्रिय प्रान ते मीरा॥

—कुलशेखर

एक बिल्कुल सत्य अद्भुत घटना—

अंग्रेज इंजीनियरको भगवान् श्रीरामलक्ष्मणके दर्शन

[ले०—भक्त श्री रामशरणदासजी]

अभी सन् १६५४ में ही पिलखुवा हमारे स्थान पर भारत प्रसिद्ध उदासीन संत श्री १०८ स्वामी श्री रामेश चन्द्र जी महाराज पधारे थे, जिनकी कथाकी बड़ी धूम मची थी। आपने अपनी कथाके बीचमें एक दिन एक अंग्रेज इंजीनियरके जीवनकी आश्चर्य जनक अद्भुत सत्य घटना सुनाई जिसे सुनकर सभी श्रोतागण प्रभु श्री रामलक्ष्मणके प्रेममें विभोर हो गये, गद्‌गद् हो गये। यह अंग्रेज़ इंजीनियर आपको विहारमें साधुवेषमें विचरता हुआ मिला था और उसने आपको देखते ही कहा था—my child please say sita ram मेरे बच्चे कृपाकर सीता राम कहो। आपको एक विदेशी और एक विधर्मी अंग्रेज़के मुखसे 'माई चाइल्ड प्लीज़ से सीताराम' सुनकर और उसे कोट, बूट, टोप, नकटाई सबको उतार फेंक कर उसकी जगह काषाय वस्त्र पहिने, परमवैष्णव, तिलक, कंठी, चोटी, धारण किये हिन्दू साधु के वेषमें देख कर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। अपने उस परम वैष्णव श्री सीताराम भक्त अंग्रेज़ संतको अपने पास बैठाकर पूछा कि कृपाकर बताओ कि आपके जीवनमें यह अद्भुत परिवर्तन एक दम कैसे हुआ? और अपने कोट,बूट, टोप, नकटाई, चाय, बिस्कुट, सिगार, सिगरेट मांस, मदिरा सब पर लात मारकर साधु वेष धारण कैसे किया और इस प्रकार श्री सीताराम जी महाराजके परम भक्त पर परम वैष्णव कैसे बने? तो उत्तरमें वह अंग्रेज़ इंजीनियर फूट फूट कर रोने लगा और एक लम्बी सांस लेकर रोकर बोला—हाय! मैंने भारतमें जन्म नहीं लिया, मेरा इतना समय व्यर्थ ही सांसारिक धन्दोंमें ही व्यतीत हो गया, मुझसे श्री सीताराम जी महाराजका भजन नहीं हुआ।

उसने फिर अपने जीवनकी आश्चर्यजनक सत्य घटना सुनाते हुए रोते हुए कहा—

मैं एक इंजीनियर था और इंग्लैण्डसे बिहारमें एक डैम (बांध) बनानेके लिये बुलाया हुआ आया था और मैं इंचार्ज था। वर्षा बड़ी भयंकर होनेसे बांधको टूटनेका खतरा पैदा हो गया और बांधमें दराड़ें पड़ गईं तो अब इस बातकी पूरी पूरी सम्भावना पैदा हो गई कि बांध अब नहीं बचेगा अवश्य ही टूट जायगा। मैं बांधके टूटने पर अपनी बदनामी के डरसे बहुत ही उदास और हताश हुआ। एक दिनकी बात है कि मैं उस दिन बड़ा ही चिन्तित था और इसी चिन्तामें निमग्न हुआ मैं बांध पर फिर रहा था कि इतनेमें मैंने बांध पर काम करने वाले कुछ पुरबियोंके मज़दूरोंके स्थान पर श्री भगवन्नाम कीर्तन होते हुए देखा। मैंने इससे पहिले कभी कीर्तन होते हुए इस प्रकार नहीं देखा था। इसलिए मैं यह जाननेके लिये कि यह सब क्या कर रहे हैं, उन पुरबियोंके मज़दूरोंके पासमें गया। उन मज़दूर पुरबियोंने उस स्थान पर भगवती श्री सीताजी महारानीका एक मंदिर बनाया हुआ था जो कि छोटा सा मंदिर था और बहुत ही सुन्दर था वह सब लोग उसी श्री सीता जीके मंदिरके सामने खड़े होकर और सब मिलकर एक साथ कीर्तन कर रहे थे। मैं इस रहस्यको बिलकुल ही नहीं समझ सका कारण कि मेरे जीवनकी यह सबसे पहली घटना थी। मैंने जब उन मज़दूर पुरबियोंसे इस प्रकार कीर्तन करने का कारण पूछा तो उत्तरमें उन मज़दूर पुरबियोंने मुझे बताया कि साहब यह हमारी पूज्या देवी श्री सीता जी महारानीका मंदिर है, हम उन्हीं श्री सीताजी महारानी का इस समय कीर्तन कर रहे हैं और जो भी कोई हमारे इस मंदिरमें श्री सीताजी महारानीके सामने खड़े होकर अपने सच्चे मनसे इनसे प्रार्थना करता है तो उसकी सब भावनायें पूरी हो जाती हैं और उसके सब कार्य श्री सीताजीकी कृपासे पूरे हो जाते हैं। मैंने यह सुन कर उन मज़दूर पुरबियोंसे कहा कि तुम अब मेरी ओरसे अपनी इन देवी श्री सीता जीसे यह मेरी प्रार्थना कर दो कि यदि आज मेरा यह बांधा बांध टूटनेसे बच जाय, टूटे नहीं तो मैं श्री सीता जीका एक बहुत ही बढ़िया सुन्दर मंदिर इसी जगह पर बनवा दूंगा और उस मंदिरके बनानेमें जो भी उसका सारा खर्चा होगा वह सबका सब खर्चा मैं

स्वयं दूंगा। उन मज़दूर पुरवियोंने मेरी ओरसे अपनी श्री सीता जीके सामने प्रार्थना कह दी और उन्होंने मुझसे कहा कि साहब जाओ विश्वास रक्खो कि अब तुम्हारा काम पूरा हो जायगा। मैं वापिस अपनी कोठी पर आगया। उसी शामको बड़ी जोरसे फिरसे वर्षा प्रारम्भ हो गई इससे मैं अब तो बहुत ही घबड़ाया और अब मैंने अपने मनमें यह पूरा पूरा निश्चय कर लिया कि अब वर्षा जोरसे होने लगी है इसलिये अब यह मेरा बांधा बांध किसी भी प्रकारसे बचेगा नहीं, अवश्य ही टूट जायगा और मेरे करे धरे पर सब पानी फिर जायगा। मेरे मनमें अब अपनी आत्म हत्या करनेका विचार पैदा हो गया इसलिये अब मैंने अपने ही हाथोंसे एक वसीयत लिख दी जिसमें मैंने यह लिखा कि मैं अब अपनी ही इच्छासे अपनी आत्महत्या कर रहा हूँ इसमें किसी भी दूसरे मनुष्यका कोई हाथ नहीं है और किसीका भी कोई दोष नहीं है। मैं यह लिखकर और उसे अपनी मेज़ पर रख कर डैमकी ओर चल पड़ा और मैंने अब यह निश्चय कर लिया कि मैं डैम पर, बाँध पर जाकरके उसके ऊपर खड़ा हो जाऊंगा और जब यह डैम टूटेगा तो बस डैमके साथ ही मेरी भी मृत्यु हो जायगी। मैं इस प्रकार विचार कर डैम पर गया तो उस समय भी बड़ी जोरकी वर्षा हो रही थी। जाकर अब उस डैम पर चढ़ गया तो मैंने उस समय वहां पर खड़े होकर क्या देखा कि बरसातमें दो नवयुवक जिनमें एक नवयुवकका रंग तो सांवला था और दूसरे नवयुवकका रंग गोरा था और वह दोनों ही नवयुवक डैमके नीचे खड़े हुये हैं और उनमेंसे गोरा नवयुवक अपने हाथोंसे जमीनसे मिट्टी उठा उठा कर बड़े साँवले नवयुवकको दे रहा है और वह साँवला नवयुवक गोरे नवयुवकके हाथोंसे मिट्टी ले लेकर बांधमें पड़े दराड़ोंको अपने हाथोंसे मिट्टीसे बंदकर रहा है। मैंने देखा कि दोनों गोरे और सांवले नवयुवकोंने अपने अपने माथों पर बड़े ही सुन्दर सुन्दर मुकुट बांध रक्खे हैं और उन दोनों हीके गलोंमें धनुषबाण हैं और दोनों ही बड़े सुन्दर हैं। यह देख कर मैंने उन मज़दूर पुरवियोंको बड़े जोर ज़ोरसे आवाज़ दे देकर उन्हें जल्दीसे अपने पासमें बुलाया और उनसे कहा कि जल्दीसे दौड़े हुये यहाँ पर भागे आओ और इन दोनों नवयुवकोंको एक दम इस बांध परसे परे हटाओ नहीं तो यह दोनों ही नवयुवक अब यह बांध गिरने वाला है दब करके मारे जायेंगे। मज़दूर दौड़े हुए, भागे हुए बांध पर मेरे पासमें आये और उन्होंने बांध पर आकरके देखा तो वह दोनों ही नवयुवक उनको दिखलाई नहीं दिये। उन पुरवियोंने मुझसे कहा कि साहब क्या करें हमें तो वह दोनों ही नवयुवक दिखलाई नहीं देते आपको ही वह दिखलाई देते हैं इसलिये आप हमको अब दोनों ही नवयुवकोंका हुलिया बतलाये कि उन नवयुवकोंका हुलिया कैसा है? इनका स्वरूप कैसा है? तो मैंने यह सुनकर उन पुरवियोंको उन दोनों नवयुवकोंके स्वरूपका वर्णन सुनाया और मैंने उन्हें बताया कि इनमेंसे एक बड़ा नवयुवक तो साँवला है और दूसरा नवयुवक गोरा है और यह दोनों ही नवयुवक अपने अपने माथों पर मुकुट बांधे हुए हैं और अपनी अपनी कमरमें धनुषबाण धारण किए हुए हैं दोनों ही नवयुवक बहुत सुन्दर हैं। तो मेरी यह बात सुन करके उन पुरवियोंने मुझसे कहा कि सुनिये साहब कि जिन्हें आप नवयुवक बतलाते हैं वह दोनों ही नवयुवक नहीं हैं, यह तो साक्षात् परमात्मा श्री राम लक्ष्मण जी हैं, आप तो बड़े ही भाग्यशाली हैं कि जो आज आपको साक्षात् श्री राम लक्ष्मण जीके दर्शन हो गये हैं, अब आपका यह डैम कदापि नहीं टूटेगा अब आप निश्चिन्त हो जाइये। आपने जिन श्री भगवती श्री सीता जी महारानी के सामने अपने बाँधकी रक्षाके निमित्त खड़े होकर प्रार्थना की थी उन्हीं हमारी श्री सीता जी महारानीके स्वामी स्वयं अपने हाथों से आपके इस डैमको बचानेकी कोशिश कर रहे हैं फिर भला यह डैम अब क्यों कर टूटेगा? इतना सुनने पर मैं एक दम मूर्छित हो गया उस समय मुझे बेहोशी की हालतमें ही वहाँसे उठाकरके मेरी कोठी पर पहुँचाया गया। कुछ देर पश्चात् मुझे होश आने पर जिस प्रभु श्रीरामलक्ष्मणने मेरे लिये अपने हाथोंसे बांध का काम किया इसलिए अब मैंने अपना सारा ही जीवन उन श्रीराम लक्ष्मणके लिये दे देने का निश्चय कर लिया। बांध बिल्कुल ही टूटनेसे बच गया और मैंने उसी समय अपना कोट, बूट, टोप, नकटाई, माल मताल सब पर लात मार करके संन्यास ले लिया और जंगलको चल दिया। अब मैं श्री सीतारामजी महाराजका भजन करता हूँ और

विचारणीय कुण्डली पर कुछ विचार

[ले०—श्री विनोदराय रत्तीलालजी अन्तानी]

[विद्वान् लेखकको ज्योतिर्विज्ञानमें विशेष अभिरुचि है। राजकीय कार्यकलापोंसे अवकाश न होते हुए भी थोड़ा-बहुत समय निकालकर आप इस शास्त्रका अनुशीलन करते रहते हैं। विगत ३ वर्ष तक आप सोलनमें प्रथम-श्रेणिके न्यायाधीश भी रह चुके हैं। स्थानीय जनतामें आपने सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त की थी। अब आप हिमाचलप्रदेशमें मण्डी-मण्डलके मण्डलाधीश (डिप्टी कमिश्नर) हैं। 'साढ़े-साती' शीर्षकसे आपका एक लेख 'श्रीस्वाध्याय'के ११ वें वर्षके 'नववर्षाङ्क' में हिन्दी भाषामें प्रथम बार प्रकाशित हुआ था। अंग्रेजीके इंग्लैंडरिटर्न विद्वान् और गुजराती भाषा-भाषी होते हुए भी आपको राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा 'श्रीस्वाध्याय' पत्रसे विशेष अनुराग है। प्रस्तुत विचार आपकी ज्योतिश्शास्त्रानुशीलनप्रवृत्ति और हिन्दी-प्रेमका परिचायक है। —सम्पादक]

'श्रीस्वाध्याय'के चैत्र २०११ वि० वर्ष १३के तीसरे वसन्तांकमें पृष्ठ ६४ पर "विचारणीय-कुण्डली" दी गई है, जिसके बारेमें मैं कुछ विचार प्रकट कर रहा हूँ।

सुविधाके लिए तारीख २७ मई १९४८ रात्रिके ६ बजके ४५ मिनटके ग्रह-स्पष्ट और लग्न-कुण्डली तथा नवांश नीचे दे रहा हूं। जन्मके समय विंशोत्तरी महादशामें सूर्यकी महादशाके २ वर्ष ३ मास और २३ दिन शेष हैं।

ग्रह स्पष्ट

ग्रह	ल.	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	रा.
राशि	८	१	६	४	२	८	२	३	०
अंश	१४	१३	४	६	३	५	१४	२५	१६
कला	१०	५०	०	२७	४८	२०	३०	२०	५

जन्म कुण्डली

१० च. | ८
११ | ९ गु. | ७ के.
१२ | ६
३
रा. १ | शु. बु. | ५ मं.
२ सू. | ४ श.

नवांश

रा ६. | ४
७ | ५ | ३ मं.
बु. ८ | २ गु. सू.
११
६ | शु. चं. श. | १
१० | १२ के.

कुंडली वास्तवमें विचारणीय है। कुंडलीमें कौन-सा ग्रह प्रभावशाली है, या प्रभावशाली नहीं है, यह कहना कठिन है। परन्तु निम्नलिखित कुछ बातें प्रधान हैं।

१. चन्द्र और शनिका एक दूसरेकी राशिमें होना, एक दूसरेकी पूर्ण दृष्टि होना और नवांशमें शनिकी राशिमें चन्द्र होना, यह शोचनीय बात है और इसका प्रभाव कुंडली पर बहुत बड़ा है।

जो भी कहीं पर भी कोई मुझे मिल जाता है तो मैं उससे यही प्रार्थना करता हूं—

My child please say Sita Ram.

श्रीसीतारामके कहनेसे मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। दुःख है तो मुझे इसी बातका है कि मैंने इस पुण्य-भूमि भारतमें पहिलेसे ही जन्म क्यों नहीं लिया? मेरा इतना समय बिना श्री सीतारामजीके भजनके व्यर्थ ही क्यों चला गया? अच्छा तो लो—

My child please say Sita Ram

पाठकों! देखा आपने, जिन श्रीसीतारामजीको और श्री रामायण, महाभारतको गांधीजी और कांग्रेस काल्पनिक बताते हैं और गांधीजी जिन्हें कहते थे कि राम कृष्ण कोई ऐतिहासिक पुरुष नहीं हुए हैं कवियोंकी कल्पना है, उन्हीं श्री सीतारामजीका अंग्रेजको दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ और अंतमें वह अंग्रेज उन्हींके प्रेममें पागल बन सन्यासी बन गया। साक्षात् परब्रह्म रामकृष्णको काल्पनिक बताना मानना क्या मूर्खताकी पराकाष्ठा नहीं है?

बोलो श्रीसीतारामजी महाराजकी जय

---

२. सूर्य छठे भावमें वर्गोत्तमी है।

३. शुक्र और बुध मिथुन के सप्तममें बहुत अच्छे हैं।

४. बृहस्पति लग्नका स्वामी लग्नमें है और उसका सम्बन्ध राहु बुध मंगलसे केन्द्र-त्रिकोण दृष्टिसे है।

५. इस कुंडली वाले व्यक्तिका दीर्घ जीवन होना ही चाहिए, परन्तु चन्द्रका मकरमें होना और शनिका कर्कमें होना बतलाता है कि जुकाम, खांसी, दमाकी पीड़ा इस बालकको जीवन भर कष्ट देगी।

६. सूर्य छठे भावमें होना पैरोंका दर्द बतलाता है। परन्तु सूर्य वर्गोत्तम है और नवांशमें गुरुके साथ है, इसलिए यह बिमारी थोड़े समयकी होनी चाहिए। मंगल, सिंहका नवें भावमें है इसलिए गर्मीका रोग भी इस व्यक्ति को कष्ट देगा। यह सब दुःखके वातावरण होते हुए भी धनुर्लग्न और गुरुका लग्नमें होना और नवांशमें सिंह राशिका लग्नमें होना प्रतीत करता है के यह सारे दुःख दब जाएँ और स्वास्थ्य अच्छा हो जाएगा। इस समय चन्द्रकी दशा है और उसमें शनिका अन्तर दिसम्बर १९५४ से जुलाई १९५६ तक है। यह दशा मारक बन सकती है। किन्तु, शनि जून १९५५ तक तुलामें रहेगा। इसलिए उस समय तक कोई अधिक कष्टकी सम्भावना नहीं है, यह समय निकल जाएगा तो २००१ तक जीवनको भय नहीं होगा। जून १९५५ से जुलाई १९५६ तकका समय जीवनको हानि कारक हो सकता है। परन्तु मेरा विश्वास है कि जीवनका अंत नहीं होगा।

७. चन्द्र द्वितीय भावमें है, शुक्र बुध सप्तममें है और मंगल नवमें है! इसलिए आर्थिक दशा अच्छी होगी अपितु धन धान्यका प्रभाव रहेगा, परन्तु कृपणता भी रहेगी। धन प्राप्तिका मार्ग भी गुप्त और कोई बात अनिश्चित होगी तथा कुटुम्बको सुख इस धनसे नहीं होगा। इस व्यक्तिका स्वभाव जरा विचित्र होगा। कई बार राजसी और विशाल हृदयका प्रतीत होगा तो कई बार बहुत कुटिल दिखाई पड़ेगा। धर्मकी ओर श्रद्धा भाव होगा। विवाहित जीवनमें मानसिक असाम्यताके कारण जीवन दुःखी रहेगा। एकसे अधिक स्त्रीका होना सम्भव है।

८. मेरा विचार है कि इस समय इस बच्चेकी दशा कैसी भी विकट हो जीवन दीर्घ होगा और यह व्यक्ति होनहार होगा, पिताके लिये यह व्यक्ति चिन्ताकारक और क्लेशमय रहेगा और माता को आठ वर्षकी आयु निकल जानेके बाद सुखदायक होगा।

९. मैं कोई ज्योतिषाचार्य नहीं हूं। ज्योतिषके अभ्यासका मुझे प्रेम है, परन्तु समयके अभावसे इसकी तरफ अधिक ध्यान नहीं दिया जा सकता। इस कुण्डलीके बारेमें भी मेरे विचार एक छोटी कक्षाके विद्यार्थीके तौरसे हैं और सम्भव है कि ज्योतिषके विद्वान् इन विचारोंको पढ़कर उपहास करेंगे।

विंशोत्तरी दशा - विवेचन

[ले०—ज्योतिभूषण श्रीबद्रीप्रसादजी गुप्त 'व्यानिया' गणकचूड़ामणि]

ज्योतिभूषण श्री पं० रामचन्द्रजी शर्मा गौड़ने 'श्री-स्वाध्याय'के गतांकमें बृहत्पाराशरहोरा आदिका आधार लेकर उदाहरणतया दो जन्म कुंडली देते हुए विंशोत्तरी दशा आर्द्रा कृत्तिकादि यथा समय साधनकर आर्द्रादिक्रमसे फल मिलनेका लेख देकर अन्य ज्योतिषियोंकी अनुभूत अनुमति चाही है ।

बृहत्पाराशर-होरा-शास्त्र (बम्बई प्रेस) पूर्वखंड अध्याय ३५ में आर्द्रादि विंशोत्तरी दशा लगानेका कोई मत नहीं है, उसमें स्पष्ट है कि कृष्णपक्षके जन्ममें सूर्य होरा और शुक्लपक्षके जन्ममें चंद्र होरा होने पर विंशोत्तरी दशा लगानेका आधार कृत्तिकादिसे है, कृत्तिकादिसे स्वनक्षत्र तक गिनकर ९ का भाग देकर क्रमशः सूर्यादि दशा लगाई जाती है, जैसा कि निम्न श्लोकोंसे स्पष्ट होगा —

आनयन प्रकारे च शृणुष्व द्विजपुंगव !
नामनक्षत्र पर्यन्तमाधारः कृत्तिकादितः ॥१॥
कृष्णे तु रविहोरायां चंद्रहोरागते सिते ।
दहनात्स्वर्क्ष पर्यन्तं गणयेन् नवभिर्हरेत् ॥२॥

इसके विपर्यय जन्ममें षोडशोत्तरी दशामें फलका विचार करना दिया है (बृ. पा. अध्याय ३५ श्लोक १८) और श्री पं० सीतारामजी मैथिलने भी जो एक प्राचीन हस्त लिखित बृहत्पाराशरीकी टीका मास्टर खेलाड़ी लाल ऐंड संसके प्रेससे निकाली है, उसमें स्पष्ट कृत्तिकादिसे दशा लगानेका श्लोक है ।

यह तो निर्विवाद है कि कलियुगमें विंशोत्तरीदशा ही मुख्य मानी है, और पाराशर ऋषिका भी बृहत्पाराशर (बनारस प्रेस) अध्याय ४६ श्लोक १४ में ये ही कथन है कि :—

विंशोत्तरशतं पूर्णमायुः पूर्वमुदाहृतम् ।
कलौ विंशोत्तरी तस्माद् दशा मुख्या द्विजोत्तम ! ॥१॥

कृत्तिकादि विंशोत्तरी दशामें ही प्रत्येक व्यक्तिके फल रामबाणकी भांति मिलते हैं । मैं १८ वर्षसे लगभग ६०० जन्म-कुंडलियों पर इसको तथा ऋषियोंके योगोंको पुष्ट कर चुका हूं, उसे छपवानेकी चेष्टामें हूं ।

अब प्रश्न यह रह जाता है कि उदाहरणीय दोनों कुंडलियोंमें कृत्तिकादि विंशोत्तरी दशा लगानेमें फल नहीं मिलते । यह भूल है, क्योंकि—

(१) श्री गंगवालजी इंदौरका जन्म कृत्तिकादि क्रम से बुध दशाका है और वय ३५ से ५२ तक चंद्र, मंगल की दशा रहती है । आपकी कुंडलीमें चंद्रमा, मंगल, गुरु और शुक्र ४ ग्रह नीच राशिके हैं, इसी कारण सम्भवतः 'श्रीगौडजी ने चंद्रमा, मंगलको योग कारक नहीं बतलाया, किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि ऋषि महर्षि तथा समस्त आचार्योंके कथनानानुसार जो भी योग जन्मकुंडलीसे देखे जाते हैं वे ही सब चंद्र-कुण्डलीसे भी देखने चाहिये, इसलिये चंद्र-कुंडलीमें चंद्रमा मंगल ही विशेष योग कारक होते हैं । क्योंकि ये भाग्येश लग्नेश होकर परस्पर पूर्णसम्बन्ध कर रहे हैं, इसलिये बृहत्पाराशर होरा अध्याय २८ श्लोक ४० के अनुसार प्रधानमंत्री पददायक तथा भाग्येश चंद्रमाका चंद्र-लग्न पर होना, 'भाग्येशे लग्नगे भूपकर्मकारी' के अनुसार राजाके कार्य कराने वाले हैं । और चन्द्रमा, मंगल, गुरु को नीचत्व होनेका दोष जैमिनि-सूत्र (चौखम्बा प्रेस) प्रथम अध्याय तृतीय पाद पृष्ठ १०८ श्लोक पंक्ति ३ के अनुसार नहीं है, अपितु अति उच्च फल दायक है । और शुक्र नीच राशिका होते हुए भी जातक पारिजात (चौखम्बा प्रेस) अध्याय ६ श्लोक ३९ के अनुसार शुभ फल कारक है । इस प्रकार चंद्रमामें मंगलका अंतर आपको विशेष राजयोग कारक हुआ और चंद्रमा तथा मंगलकी ही महा-दशा १७ वर्ष वय ३५ से ५२ तक शुभ फल कारक रही ।

(२) सर सेठ हुक्म चंदजी इंदौरकी दशा कृत्तिकादि से लगभग ३६।३७ वर्षकी वय पर २० वर्षको शुक्रकी प्रवेश करती है और आयभावस्थ शुक्र भाग्येशका कर्मेश बुध से दृश्य गणितानुसार मनुष्य-जातक अध्याय २ श्लोक १३ के अनुसार १२ अंशके भीतर युति करता है, इसलिये बृहत्पाराशर अध्याय २८ श्लोक ४१ के अनुसार शुक्र राज-

❀ त्रैमासिक शुभाशुभ योग ❀

[ले०—श्री पं० कृष्णदत्तजी शर्मा ज्योतिषरत्न]

कार्तिक मासकी संक्रांति १७ अक्तूबर को प्रातः ८।४२ पर तुला लग्न रवि वार आर्द्रा नक्षत्र और गर करणमें प्रवेश हो रही है। वार चतुर्थ है। नक्षत्र पांचवां, १५ मुहूर्त्ती है। अतः यह संक्रांति वस्तु मात्रमें तेजी कारक है। सावधान रहना चाहिए। लग्न बलहीन है, क्योंकि लग्नमें नीचका सूर्य है। साथमें अस्ताभिलाषी शनि बुध विराजमान है। अतः "बलेन हीने तनुभे महर्घम्" वित्तेश गुरु उच्चका होकर केन्द्रमें विराजमान है जो तेजीकारक है। "महर्घता वित्तपतौ बलाढ्ये" चतुर्थवार पञ्चम नक्षत्रके होने के कारण भी तेजी कारक है।

वारे चतुर्थे यदि पञ्चमे वा
धिष्ण्ये तृतीये यदि पञ्चमे वा।
पूर्वक्रमात् संक्रमते यदाऽर्क-
स्तदा च दुःखं नृपविड्वरं च।
पूर्वात्तृतीयश्चचन्द्र लघुभे यदि संक्रमः।
तदा भवेन्महल्लोके दुर्भिक्षं कष्टकारकम् ॥

संक्रान्तिका भक्ष्य पय का है अतः हर प्रकारके रसों में विशेषतया लवण-गुड़-तैलोंमें तेजी आवे। यथा—

पयः पानं प्रकुर्वीत रसाः सर्वे महर्घता।
लवणं गुड़-तैलं च गवां पीड़ा भवेद्ध्रुवम् ॥
गर करणे महर्घं स्यादल्पसौख्यं विधीयते।
पशूनामल्पवृद्धिः स्यात् संक्रान्तिश्च फलं लभेत् ॥

अतः वस्तु मात्रमें महर्घता—पशुओंके मूल्य में साधारण वृद्धि हो। १५ मुहूर्ती होनेके कारण धान्यों में और रसोंमें तेजी, किंचित् वर्षा, संसारमें कई प्रकारके उपद्रव होते हुए दृष्टिगोचर हों।

कुर्वन्ति युद्धोत्तरके च राज्ञां,
धान्यं महर्घं च जनेषु पीड़ा।
मन्दा च वृष्टिश्च रसा महर्घाः
संक्रान्तयः पंचदशे मुहर्त्ताः ॥

आर्द्रा भरणी कृत्तिका जो संक्रमसी भाण।
जग सगले प्रलय करे ज्योतिष एह प्रमाण ॥

और यह संक्रान्ति भूखी रविवारी १५ मुहूर्ती होने के कारण वस्तु मात्रमें तेजीकी सूचना दे रही है अतः पहले से ही सावधान हो जाना चाहिए। दीपावली मंगल-वार स्वाति नक्षत्र-युक्त है अतः संसारके राजनैतिक क्षेत्र में, आपसी दो विरोधी शक्तियोंका तनाव उग्र रूप धारण करे। पर्वतीय प्रदेशोंमें भूचाल (भूकम्प) से जन, धन को हानि, चतुष्पदों विशेषतया हाथी-घोड़ों के मूल्यकी वृद्धि और गर्भवतियों के गर्भपात हों। यथाः—

भवति यदि कदाचित्कार्तिके नष्टचन्द्रो
रवि शनि कुजवारे स्वाति युक्तेषु भेषु।
नृपयुगल विनाशो भूधरे पर्वभङ्गः
गजतुरगमहर्घं गुर्विणी गर्भपातः

कार्तिककी पूर्णिमा भरणी-नक्षत्र युक्त है। अतः दुर्भिक्ष कारक और सांसर्गिक सांक्रामक रोगोंको करने वाली है। यथा—

योग कारक तथा सम्पूर्ण सुखोंसे युक्त करने वाला है, इसलिये शुक्रकी दशाके २० वर्ष आपकी आयु लगभग ३६।३७ से ५५ वर्ष तक हर प्रकार वृद्धिकारक हुए, और शुक्र बुध सूर्य, मंगल तथा शनि नवांश कुंडलीमें मिथुन राशिके कर्मभावमें एकत्र होकर स्थित हैं इसलिये वहां पर भी शुक्र बुध भाग्येश कर्मेश होकर सूर्य, मंगल, तथा शनिके साथ मिथुन राशि में स्थित होनेके कारण बृहत् वाराही-संहिता अध्याय ४१ श्लोक ३ के अनुसार कपास, रुई आदिसे सम्बन्धित कारखाने खुलाने वाले हैं। शनि तो श्लोक शतक श्लोक १४।१५ के अनुसार श्रेष्ठ नहीं है।

इस कारण विंशोत्तरी दशाका साधन आर्द्रादि नहीं है, केवल कृत्तिकादि है। और 'आधार' शब्दको किसी भी प्राचीन आचार्योंने आर्द्रा नहीं कहा है और न किसी कोष में ही मिलता है।

—

अथवा भरणी सर्वा कार्तिक्यां भवति ध्रुवम्।
दुर्भिक्षं जायते घोर अभिरोगा भवंति च॥

कार्तिक सुदी पंचमी को मूल नक्षत्रका होना दुर्भिक्ष कारक है। कार्तिक मासमें बुधका उदय यव चावलोंकी तेजी-कारक है।

"यव व्रीहि विनाशाय कार्तिके च बुधोदयः॥"

इसमें एक योग मन्दीकारक भी लग रहा है, वह यह है कि कार्तिकका नवीन चन्द्रोदय गुरुवार ४५ मुहूर्त्ती विशाखा नक्षत्र वृश्चिक राशिमें है अतः सर्वसस्योत्पत्ति बहुत हो "चन्द्रोदय कुजक्षेत्रे तुषधान्य समृद्धये।"

परन्तु कार्तिक मासमें विशाखामें उदय सर्व धान्य पर अधिक तेजी कारक होता है किन्तु विशाखा नक्षत्र को शुक्रका दक्षिण वेध है जो मंदीकारक हैं।

जौ, चावल, गेहूँ, मूंग, राई, मसूर, मोठ आदिके लिए मन्दी की आगाही कर रहा है। यथा—

विशाखायां यवाः शालिगोधूमा मुद्गराजिका।
मसूरान्नमकुष्ठा च याम्यां चैवाष्टमासिका॥

अतः हर तेजीके उछालेमें बेचने वाले हर मन्दी में खरीदने वाले इस मासमें मोटा लाभ प्राप्त कर सकते हैं, सावधान हो जावें। मार्गशीर्ष मासकी तेजी वालों के लिए स्वर्ण अवसर तेजीका है। मार्गशीर्ष मासकी वृश्चिक संक्रान्ति भौमवारको ८।४६ पर वृश्चिक लग्न पुष्य नक्षत्रमें मु० ३० तृतीय नक्षत्र तृतीय वारमें यह संक्रान्ति भी सूखी लग रही है, जो तेजी कारक है। परन्तु यह वृश्चिक की संक्रान्ति मंगलवारी है, जो मन्देकी आगाही कर रही है, इस वर्षकी प्रथम मेष संक्रान्ति भी मंगलवारी थी जो अन्तिम प्रबल मंदी कारक सिद्ध हुई थी, अतः यह संक्रान्ति भी मन्दी कारक ही सिद्ध होगी। लग्नमें सूर्य मित्र क्षेत्री होकर विराजमान है— लग्नको गुरुकी पूर्ण दृष्टि है। चन्द्रकी आधी है अतः लग्नवीर्य युक्त है जो जो मंदीकारक है "विलग्नभे वीर्ययुतं समर्घम्" वित्तेश गुरु बलवान् है जो तेजीकारक है "महर्घता वित्तपतौ बलाढ्ये" तीसरा नक्षत्र भी मन्दा कारक है। तीसरा वार रसोंमें तेजीकारक है। यह संक्रान्ति अग्नि-मण्डल नक्षत्रमें भौमवारको लग रही है जो धातु मात्रमें तेजी कारक है, परन्तु मंगल लग्नेश होकर तृतीय भावमें उच्चका होकर विराजमान है जो प्रबल मन्देकी अगाही दे रहा है। यह मार्गशीर्ष मासके मंदेमें खरीद कर तीसरे मास माघ मासमें बेचनेसे श्रेष्ठ लाभ की सूचना दे रहा है। यथा—

कुजे परं धान्य रस प्रहाय
लाभस्तु तस्य त्रिगुणस्त्रिमासान्।"

हर प्रकार के अनाज और रसोंकी अन्तिम मार्गशीष में खरीद तीसरे मास विशेष लाभकारी सिद्ध होवे। गुरु या शुक्रका मार्गशीर्ष मासमें उदयास्त दुर्भिक्ष कारक होता है। यथा—

गुरु शुक्रोदयश्चास्तो यदा वै मार्गमासके।
देशान्तरं च गच्छन्ति तदा क्षुत्पीड़िता जनाः॥

ता० १७ नवम्बर को १५।४८ पर गुरु कर्क राशिमें वही हो रहा है जो कपास रुई सर्वधान्य, सर्व प्रकारके रसों (घृत, तेल, गुड़ादि) में तेजीकारक है। यथा—

कर्कराशि गतो जीवो यदा वक्री भवेत्तदा।
दुर्भिक्षं जायते घोरं राजानो युद्धतत्पराः॥
राष्ट्र भङ्गं विजानीयात वैरोपद्रव संकुलम्।
कार्पासादि वस्तुनि लाभं दद्युर्न संशयः॥
मार्गादिमासा सप्तैव सर्व धान्यं महर्घता।
रसादि सर्व संयोगो घृततैलादि खण्डकम्॥

मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशी रविवारी है। रुई कपास खरीदनी चाहिए, वैशाख तक अच्छा लाभ प्राप्त हो जावेगा।

यथा—

एकादश्यां तु मार्गस्य रविवारो भवेद्यदि
तदा कार्पासकं ग्राह्यं वैशाखे लाभमादिशेत॥

मार्गादि पञ्चमासों में शुक्लपक्षमें तिथिका क्षय हो रहा है, जो दुर्भिक्ष कारक हैः—

मार्गादि पञ्चमासेषु शुक्ल पक्षे तिथिक्षयः।
दुर्भिक्षं जायते घोरं वर्षाकाले विशेषतः॥

मार्गशीर्षकी द्वितीयाको शनिवार है उस दिन यदि दक्षिणकी वायु चले तो लोगोंको भयानक कष्ट होवे यथा—

मार्गशीर्षे सिते पक्षे द्वितीया शनि संयुता।
दक्षिणे वहते वायुर्लोकानां कष्ट दारुणम्॥

पौष मासकी कृष्णा पंचमी भौमवार युक्त है। उस दिन यदि वर्षा हो जावे तो पृथ्वी धान्योंसे परिपूर्ण हो जावे। अलसी, घृत मजीठका भाव तेज हो जावे। यथा—

पौषस्य पञ्चमी कृष्णा भौमवारेण संयुता।
तस्यां मेघाः प्रवर्षन्ति तदा धान्याकुला मही॥
अतसीघृतमंजिष्ठाः सर्वे यान्ति महर्घताम्॥

पौष माससें धनु संक्रान्ति बुधवार २३।४० पर सिंहलग्नमें प्रवेश मु० ३० हैं। लग्नमें चन्द्रमा सप्तमस्थ मंगल -सूर्य-राहु पञ्चम है वृहस्पति द्वादश अतः लग्न निर्बल है, "बलेन हीने तनुभे महर्घम्" वित्तेश बुध अस्त-है, हीन बली है। मंदीकारक है "समर्घता निर्बल वित्त-नाथे" सप्तममें मंगल है अतः धान्योंका नाशकारक है।

"सप्तमस्थो यदा पापो धान्यजातं विनाशयेत्"

बुधवार और ३० मुहूर्ती होनेके कारण बाजार भावोंमें समानता रहे।

पौष मासेऽर्क संक्रान्ति बुधभृग्वौ यदा भवेत्।
तदा वै सर्वधान्यानां समभावं प्रकल्पयेत्॥

पौषकी अमावस्या मूल नक्षत्र युक्त होनेके कारण मंदा कारक है।

"पौषस्य यद्यमावास्या मूलयुक्ताल्पमूलता"

पौष, भाद्रपद, माघ माससें शुक्ल पक्षकी तिथियों का क्षय है, अतः देश भंग दुर्भिक्ष राजनैतिक तनावको बढ़ाने वाले हैं। यथाः—

पौषे भाद्रपदे माघे शुक्लपक्षे तिथिक्षयः।
देश भङ्गोऽथ दुर्भिक्षं नृप युद्धं भवेत् क्रमात्॥

ता० २६ दिसम्बर रविवार पू० षा० नक्षत्रमें मु० ३० धनुराशिमें शृंगोन्नति उत्तरे पौष मासका नव चन्द्रोदय हो रहा है जो नमक धान्य सस्ता सुभिक्ष कारक। पू० षा०नक्षत्र को केतुका संमुख वेध है। संक्रान्ति कुंडलीसे केतु एका-दश है जो मंदीकारक है। यह सुरमा-तुष-धान्य-घृत-कंद-मूल तृण-चावलोंमें भी मंदीकी प्रतिक्रियाकी सूचना दे रहा है। यथा —

पूषायामंजन तुषधान्य घृत कंदमूलजर्णादि।
वेधं सशालि पश्चिम दिशि मासिकमशुभमन्यद्वा॥

ता० २६ दिसम्बरको प्रातः वृश्चिक राशिमें शुक्र आ रहा है जो मंदीकी प्रतिक्रिया की सूचना कर रहा है— यथा—

वृश्चिके च गते शुक्रे सर्वधान्य समर्घता।
लोकस्तु निर्भयस्तत्र सुख स्वस्थं प्रवर्तते॥

—



अनुभूत जनरल चांस



[ले०—ज्योतिषरत्न श्री पं० कृष्णदत्त शर्मा]

वस्तु मात्रके लिए विशेषतया खाद्यान्नों (ग्वार, मटर, उड़द, अरहर आदि) तिलहन, सरसों, तोरिया, अलसी, एरंडा, मूंगफली, गुड़के—

जनरल चांस

(१) ता० ५ अक्तूबर से १५ अक्तूबर तक तेजी।
(२) ता० १७ अक्तूबर से ३० अक्तूबर तक मन्दी।
(३) ता० ३० अक्तूबर से २४ नवम्बर तक तेजी।
(४) ता० २५ से ३० नवम्बर तक मन्दी का वातावरण।
(५) ता० ३० नवम्बरसे २५ दिसम्बर खुलते तक तेजी।
(६) ता० २५ दिसम्बरसे ३१ दिसम्बर तक मन्दा।
(७) ता० १ जनवरी से तेजी का वातावरण चालू।

ग्रह योगोंका सम्यक्तया विश्लेषण करनेसे ज्ञात होता है कि ५ अक्तूबरसे गुड़ वायदामें तेजी चालू हो जावे, ४-५ अक्तूबरको गुड़ फाल्गुनके निचले भाव मिलने चाहिए, वही निचले भावोंकी खरीद २४ नवम्बर तक अच्छा लाभ प्राप्त करा देगी ६) ७) प्रति मनकी तेजी गुड़ फाल्गुन वायदामें आजावे, फिर आगे मन्देका रीएक्शन ले लेवें और २५ दिसम्बर खुलते तक ऊंचे भाव मिले, वहां मालको सैटल कर देना चाहिए। मटर-ग्वारमें ता० ३० अक्तूबरकी खरीद २५ दिसम्बर खुलते तक २॥) तक का लाभ करा देगी।

तिलहन मात्रमें ता० ५ अक्तूबर की खरीद विशेष-

तथा सरसोंमें २५ दिसम्बर खुलते तक ६) ७) प्रतिमन की तेजी होने के योग पाये जाते हैं। ता० ५ अक्तूबरसे १६ अक्तूबर तक तेजी, १७ अक्तूबर से ३० अक्तूबर तक मन्दी, ३० अक्तूबर से २४ नवम्बर तक स्वर्ण अवसर तेजी का, २५ नवम्बर से ३० नवम्बर तक मन्दी का वातावरण, ३० नवम्बर से २५ दिसम्बर खुलते तक तेजी।

रुई, कपास, सोना, चांदी—

ता० ३० अक्तूबर की खरीद २५ दिसम्बर खुलते तक अच्छी लाभकारी है, रुई में ६०) ७०) प्रतिखण्डी, कपास में ४) ६) प्रतिमन, चांदी में १४) १८) सोनामें ७) ८) की तेजी दृष्टिगोचर हो रही है। हर मन्दी में खरीदने की राय है, हर मन्दी में खरीदने वाले अच्छा लाभ प्राप्त कर लेंगे, बाकी तो देखते ही रह जायेंगे।

मन्दा-तेजीके स्वर्ण दिन निम्न हैं—

ता० ४ अक्तूबरको दिनके दो बजेसे आशाजनक तेजी।
ता० ६ ,, को श्रेष्ठ तेजी।
ता० ७ ,, आज मन्दी का वातावरण।
ता० १४ ,, प्रथम मन्दा फिर तेजी।
ता० १७ ,, दिन के दो बजे से श्रेष्ठ तेजी।
ता० १६ ,, सरसों ।।।) गुड़ ।।=) ग्वार-मटर ।=) २४ घण्टे के अन्दर मन्दे।
ता० २२ ,, को मन्दा।
ता० २३ ,, को अच्छी मन्दी।
ता० २५ ,, को चांदी १।।) २) सोना ।।) ।।।) मंदा
ता० २८ ,, को श्रेष्ठ मन्दी।
ता० ३० ,, को तेजी चल पड़े सावधान!
ता० ३ नवम्बर को श्रेष्ठ तेजी।
ता० ४ ,, दिन के २।। बजे से श्रेष्ठ तेजी।
ता० ६ ,, खुलते समय तेजी बन्द समय मन्दा।
ता० ८ ,, श्रेष्ठ तेजी।
ता० ९ ,, तेजी आवे।
ता० ११ ,, आशाजनक तेजी।
ता० १२ ,, बाजार दोरफा रुख मन्दा।
ता० १३ ,, तेजी।
ता० १४ ,, विशेष तेजी।
ता० १६ ,, तेजी।
ता० १८ ,, आशाजनक तेजी।
ता० २० ,, श्रेष्ठ तेजी।
ता० २२ ,, अच्छी तेजी।
ता० २३ ,, श्रेष्ठ तेजी।
ता० २४ ,, आशाजनक तेजी।
ता० २५ ,, मन्दीकी प्रतिक्रिया होवे।
ता० ४-५-६ दिसम्बर बाजार भावों में तेजी।
ता० ८ दिसम्बर को तेजी श्रेष्ठ आवे।
ता० १३ दिसम्बर तेजी।
ता० १६ ,, श्रेष्ठ तेजी।
ता० १८ ,, मन्दा आवे।
ता० २०,२१,, तेजी।
ता० २३,२४,, श्रेष्ठ तेजी।

गुड़, सरसों, रुई, सोना, चांदी, गुवार, पर अनुभूत विचार

[ले०—श्री पं० हंसराजजी कपिल ज्योतिषाचार्य]

गुड़ भाव विचार

ता० ८ से २१ अक्टूबर तक मन्दा।
ता० २२ अक्टूबर से ५ नवम्बर तक तेज।
ता० ६ से ९ नवम्बर तक घटा बढ़ी रुख तेज।
ता० १० से १५ नवम्बर तक मन्दा रहेगा।
ता० १६ से २४ नवम्बर तक तेज।
ता० २५ से २८ नवम्बर तक घटाबढ़ी।
ता० २९ नवम्बर से ४ दिसम्बर तक तेज।
ता० ५ से १३ दिसम्बर तक घटाबढ़ी।
ता० १४ दिसम्बरको गुड़ ऊंची उड़ानेमें खेले।

ता० १५ से २३ दिसम्बर तक गुड़ मार्केटमें उतार चढ़ाव बड़े जोरों पर रहेंगे।

ता० २४ से ३० दिसम्बर तक तेज रहेगा।
ता० ३१ दिसम्बरसे ६ जनवरी तक घटाबढ़ी, रुख तेजी।

ता० ७ से १३ जनवरी तक गुड़ मार्केट मन्दा रहेगी ।

सरसों

ता० ८ से १७ अक्टूबर तक मन्दी ।

ता० १८ से २४ अक्टूबर तक तेज ।

ता० २५ अक्टूबर से १४ नवम्बर तक मन्दी ।

ता० १५ नवम्बर से २९ नवम्बर तक तेज ।

ता० ३० नवम्बर से २३ दिसम्बर तक मन्दी ।

ता० २४ दिसम्बर से १० जनवरी कत तेज ।

ता० ११ से १३ जनवरी तक मन्दी रहेगी ।

रुई

ता० ८ से १५ अक्टूबर तक मन्दी ।

ता० १६ से २६ अक्टूबर तक तेज ।

ता० २७ अक्टूबर से ४ नवम्बर तक तेज ।

ता० ५ से १० नवम्बर तक घटाबढ़ी रुख तेज ।

ता० ११ से २४ नवम्बर तक तेज ।

ता० २५ नवम्बर से ४ दिसम्बर तक मन्दी ।

ता० ५ से ९ दिसम्बर तक तेज ।

ता० १०-११ दिसम्बरको मन्दी १२ से १४ तक तेज रहेगी ।

ता० १५ से २० दिसम्बर तक तेज ।

ता० २१ दिसम्बर से १ जनवरी तक घटा बढ़ी ।

ता० २ से ६ जनवरी तक तेज ।

ता० ७ जनवरी से १३ जनवरी तक घटा बढ़ी रहेगी ।

सोना

ता० १० से २१ अक्टूबर तक मन्दा ।

जिसमें १४ तक मन्दा, पश्चात् घटाबढ़ी रहेगी ।

ता० २२ अक्टूबर से ४ नवम्बर तक मन्दा रहे ।

ता० ५ से १९ नवम्बर तक तेज ।

ता० २० से २४ नवम्बर तक मन्दा ।

ता० २५ नवम्बर से ४ दिसम्बर तक तेज ।

ता० ५ दिसम्बर से ९ तक मन्दा ।

ता० १० से १७ दिसम्बर तक तेज ।

ता० १८ से २६ दिसम्बर तक मन्दा ।

ता० २७ दिसम्बर से ३० दिसम्बर तक तेज ।

ता० ३१ दिसम्बर से ११ जनवरी तक घटा बढ़ी ।

चांदी

ता० १२ से १७ अक्टूबर तक तेज ।

ता० १८ से २४ अक्टूबर तक घटा बढ़ी ।

ता० २५ अक्टूबर से ५ नवम्बर तक तेज ।

ता० ६ से १४ नवम्बर तक मन्दी ।

ता० १५ से २९ नवम्बर तक तेज ।

ता० ३० नवम्बर से २३ दिसम्बर तक घटा बढ़ी ।

ता० २४ दिसम्बर से ३० दिसम्बर तक मन्दी ।

ता० ४ से १० जनवरी तक चान्दी तेज रहेगी ।

गुवारा

ता० ११ से १३ अक्टूबर तक मन्दा ।

ता० १४ से २१ अक्टूबर तक तेज ।

ता० २२ से २५ अक्टूबर तक घटाबढ़ी ।

ता० २६ से ३० अक्टूबर तक मन्दा ।

ता० ३१ अक्टूबर से ९ नवम्बर तक तेज ।

ता० १० नवम्बर से १४ नवम्बर तक मन्दा ।

ता० १५ से २० नवम्बर तक तेज ।

ता० २१ से २९ नवम्बर तक मन्दा ।

ता० ३० नवम्बर से ३ दिसम्बर तक तेज ।

ता० ४ से ९ दिसम्बर तक मन्दा ।

ता० १० से १६ दिसम्बर तक तेज ।

ता० १७ से २६ दिसम्बर तक मन्दा ।

ता० २७ दिसम्बर से ६ जनवरी तक तेज ।

ता० ७ से १२ जनवरी तक मन्दा रहेगा ।

तेजी-मन्दी लगा कर रुपया कमाने वाले व्यक्ति व्यापारियों के लिए—

सोना—कार्तिकमें २०) मन्दा होनेकी संभावना ।

गुवारा—कार्तिकके उत्तरार्धमें १॥ रु० मन्दा होगा ।

सरसों—ता० २ से १४ नवम्बर तक २) मन्दी ।

चाँदी—३१ अक्टूबर के बाद विशेष मन्दी होगी ।

रुई—कार्तिक में ५०) टके मन्दी होगी ।

गुड़—कार्तिक में ४) मन्दा रहेगा ।

ता. १७ नवम्बरके पश्चात् प्रत्येक वस्तुमें तेजीकी लहरें दौड़ पड़ेगी । जो कि कहीं कहीं रियेक्शन उठते हुए मन्देके नाक चने चबा देने वाली होंगी । पुनः पौष तक पारस्परिक संघर्ष ही चलता रहनेकी संभावना पाई जाती है ।